उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

संस्कृत साहित्य–348

पुस्तक–1

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

उच्चतर माध्यमिक स्तर

संस्कृत साहित्य-348

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपति,
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517502 (आन्ध्रप्रदेश)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वरः, कलिकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

डॉ. रामनाथ झा
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना, मण्डल-हुगली-712147 (प. बंगाल)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य, रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावडा-711202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

पाठ्यविषय निर्माण समिति

संपादक मण्डल

डॉ. वेंकटरमण भट्ट
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय,
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठ 1, 5, 6, 17-24)
श्री राहुल गाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकत्ता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठः 8)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)
श्री विष्णुपदपाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावड़ा-711202 (प.बंगाल)

(पाठः 16)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कलकत्ता-700035 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. योगेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, उस्नोता,
महेन्द्रगढ़, हरियाणा

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुर मठ
मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

मैसर्स शिवम ग्राफिक्स
431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

आप से दो बातें ...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत से शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की, परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दें, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' नामक से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। कला को छोड़कर विज्ञान से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता है बल्कि विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्य साधक और पुरुषार्थ साधक है, ऐसा मेरा मानना है। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठ लेखक, त्रुटि संशोधक और मुद्रणकर्ता ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता की है। उनके प्रति संस्थान की तरफ से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी। इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, जीवन में सफल हो, विद्वान बने, देशभक्त हो, और समाज सेवक हो, ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह अत्यधिक हर्ष का विषय है की जो गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखे हुये हैं। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि। भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्चतर माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है ऐसा जानना आवश्यक है।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए, विषय परिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

संस्कृत साहित्य की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थो के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

किं बाहुना विस्तरेण।

अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामिद्य

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्यशास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हों, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं। उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर यह पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्य सामग्री के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं मे हार्दिकी प्रार्थना
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी,
पाठयक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

संस्कृत साहित्य, उच्चतर माध्यमिक की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

कवि परिचय

1. कवि परिचय-1
2. कवि परिचय-2
3. कवि परिचय-3

काव्य अध्ययन-1

रघुवंश (प्रथम सर्ग 1-48 श्लोक)

4. रघुवंश - रघुवंशीय राजाओं का गुणवर्णन
5. रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-1
6. रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-2
7. रघुवंश - वशिष्ठाश्रम गमन

स्तोत्र साहित्य

8. मोहमुद्गर और राम गुणकीर्तन

गद्यकाव्य

9. शिवराजविजय - बटुसंवाद
10. शिवराजविजय - योगीराज संवाद
11. शिवराजविजय - यवन दुराचार

पुस्तक-2

उत्तररामचरित (प्रथम अंङ्क)

12. उत्तररामचरित - प्रस्तावना
13. उत्तररामचरित - अष्टावक्र संवाद
14. उत्तररामचरित - चित्रदर्शन-1
15. उत्तररामचरित - चित्रदर्शन-2

शुकनासोपदेश

16. शुकनासोपदेश - यौवन स्वभाव
17. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का चापल्य
18. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का दुष्प्रभाव-1
19. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का दुष्प्रभाव-2

पुस्तक-3

काव्यदर्पण

20. अलंकारिक परिचय-1
21. अलंकारिक परिचय-2
22. वृत्ति
23. छन्दों की मात्रा, गण, यति, भेद
24. छन्द
25. अलंकार-1
26. अलंकार-2
27. रस

संस्कृत साहित्य

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

पुस्तक-1

क्र.सं.	विषय-सूची	पृष्ठ संख्या
	कवि परिचय	
1.	कविपरिचय-1	1
2.	कविपरिचय-2	18
3.	कविपरिचय-3	33
	काव्य अध्ययन-1	
	रघुवंश (प्रथम सर्ग 1-48 श्लोक)	
4.	रघुवंश - रघुवंशीय राजाओं का गुणवर्णन	52
5.	रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-1	75
6.	रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-2	99
7.	रघुवंश - वसिष्ठाश्रम में गमन	119
	स्तोत्र साहित्य	
8.	मोहमुद्गर और रामगुण कीर्तन	145
	गद्यकाव्य	
9.	शिवराजविजय - बटु संवाद	164
10.	शिवराजविजय - योगीराज संवाद	184
11.	शिवराजविजय - यवन दुराचार	202

टिप्पणी

1

कवि परिचय-1

संस्कृत साहित्याकाश में वाल्मीकि और वेदव्यास आर्ष कवि के रूप में बहुत प्रसिद्धि है। काव्य कैसा होना चाहिए, इसे निर्धारित करने के लिए कवियों के द्वारा वाल्मीकि रचित रामायण को ही मानदण्ड के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसलिए ही वाल्मीकि आदिकवि एवं रामायण आदि काव्य माना गया है। रामायण न केवल काव्य ग्रन्थ है अपितु धर्म ग्रन्थ भी है। रामायण ही मानव जीवन का स्वरूप है। रामायण ही श्रेष्ठ मार्ग प्रदर्शक रूप ज्योति प्रकाश है।

महाभारत भी रामायण के समान हमारे राष्ट्र का इतिहास ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य एकमात्र कौरव पाण्डवों के युद्ध का वर्णन नहीं अपितु भारतीय धर्म का सम्पूर्णता के साथ सविस्तार चित्रण करना भी है। महाभारत के प्रणेता वेदव्यास हैं।

संस्कृत साहित्य में आज तक उपलब्ध नाटककारों में भास सबसे प्राचीन नाटककार हैं। संस्कृत साहित्य में भास के बहुत से ग्रन्थ विद्यमान हैं। महाकवि कालिदास आदि भी भास को ही श्रेष्ठ मानते हैं। आज प्रायः तेरह नाटक भास के नाम से विद्यमान हैं। इस पाठ में वाल्मीकि, वेदव्यास और भास के देश काल एवं कृतियों के विषय में चर्चा की गई है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- महाकवियों के विषय में संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वाल्मीकि, वेदव्यास एवं भास के देश, काल और कृतियों के विषय में जान पाने में;
- रामायण एवं महाभारत महाकाव्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाने में;
- रामायण एवं महाभारत की विषय वस्तु जानने में समर्थ हो पाने में;
- भास की रचनाओं को जान पाने में।

टिप्पणी

1.1 वाल्मीकि-रामायण

संस्कृत साहित्य में रामायण पद से वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण ही प्रसिद्ध है। भारतीयों के द्वारा रामायण को आदिकाव्य और उसके प्रणेता वाल्मीकि को आदिकवि कहा जाता है। रामायण से प्राचीन संस्कृत भाषा में निबद्ध काव्यलक्षणोपपन्न कोई भी ग्रन्थ नहीं दिखाई देता। रामायण में न केवल युद्ध ही वर्णित है, अपितु रूपक-उपमा आदि अलंकारों से युक्त भाषा में प्रकृति का भी वर्णन किया गया है। इसलिए रामायण को काव्य के रूप में स्वीकार करते हैं न कि वीरगाथा मात्र और न ही शुष्क इतिहास मात्र। संसार में कोई भी काव्य रामायण की समता करने में समर्थ नहीं है। इस महाकाव्य के प्रणेता वाल्मीकि हैं। ऐसे आदिकवि के देश, काल एवं कृति के विषय में चिंतन अत्यन्त कष्ट साध्य है। फिर भी अन्य ग्रन्थों को देख कर इनके देश एवं काल आदि का अनुमान लगाया जाता है।

1.1.1 काल-समय

वाल्मीकि की स्थिति काल के विषय में आज भी स्पष्ट रुप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता फिर भी यह अनुमान है कि वे महर्षि व्यास से भी प्राचीन थे। इसका प्रमाण है कि रामायण में महाभारत वर्णित किसी भी पात्र का नाम उपलब्ध नहीं है, अपितु महाभारत में राम कथा का वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत के सातवें पर्व में लंका काण्ड के दो पद्य प्राप्त होते हैं।

बौद्ध धर्म के उदय से पहले से ही वाल्मीकि थे। रामायणी रामकथा कुछ परिवर्तन के साथ दशरथजातक नाम से जातक ग्रन्थ के अंग भाव को प्राप्त है। वहां पालिभाषा में अनूदित पद्य भी प्राप्त हैं। शिकार करते समय दशरथ ने श्रवण कुमार को मार दिया था। यह राम कथा सामजातक में वर्णित है। बौद्ध साहित्य के विशेषज्ञ सिल्वॉलेवी का स्पष्ट मत है कि सद्धर्मस्मृत्युपस्थान नामक बौद्धग्रन्थ का मूल अवश्य ही रामायण का ही है। इसी प्रकार याकोवि महोदय ने भी भाषा-विज्ञान के द्वारा बौद्धकाल के पूर्व में रामायण को माना है।

इन सभी प्रमाणों से रामायण की बुद्धपूर्वकालिकता सिद्ध होती है। अतः यह ज्ञात होता है कि बौद्धकाल से पूर्व भी वाल्मीकि थे।

रामायण में कौशल राज्य की राजधानी अयोध्या कही गयी है। बौद्धजन, यवन और पतंजलि ने कौशल राज्य की राजधानी साकेत को माना है। इससे सिद्ध होता है कि अयोध्या के वर्तमान अभ्युदय में साकेत के नामकरण से पूर्व ही रामायण की रचना हो चुकी थी।

जैन कवि विमलसूरि ने प्राकृत भाषा में ''पउमचरिआ'' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसकी कथा रामचरित्र पर आधारित है। ''पउमचरिआ'' की रचना 62 ई0 में की गई। इससे ज्ञात होता है कि रामायण इससे प्राचीन है।

अजातशत्रु ने 500 ई0पू0 में पाटलिपुत्र की स्थापना की थी। इसी राजा ने शत्रुओं के आक्रमण से रक्षा के लिए गंगा एवं शोण नदी के संगम स्थल पर एक दुर्ग का निर्माण कराया था। रामायण में गंगा शोण के संगम से श्रीराम गमन का वर्णन है। किन्तु इस दुर्ग का उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि रामायण 500 ई0पू0 से पूर्व की रचना है।

रामायण में विशिला एवं मिथिला ये दो राज्य थे। बुद्ध के समय से दोनों नगरी वैशाली राज्य के अन्तर्गत वर्णित हैं। इससे ज्ञात होता है कि रामायण बुद्ध से प्राचीन थी।

रामायण में भारत के अनेक राजाओं द्वारा शासित अनेक छोटे राज्यों में विभक्त होने का वर्णन है। भारत की इस प्रकार की दशा बुद्ध के पूर्वकाल में थी। इससे भी ज्ञात होता है कि रामायण बुद्ध से प्राचीन थी।

इन सभी प्रमाणों से प्रतीत होता है कि रामायण की 500 ई0पू0 से पूर्व में रचना हो चुकी थी इसके बाद की रचना कदाचित् नहीं हो सकती। इसलिए वाल्मीकि भी 500 ई0पू0 से पूर्व में हुए थे।

1.1.2 कृति- (रचना)

वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। वाल्मीकि के कवित्व ज्ञान के लिए रामायण ही पर्याप्त है। वाल्मीकि के द्वारा अपनी काव्य कला के प्रतिपादन के लिए जिन पात्रों का आधार किया उसमें राम का चरित्र है। उन्हीं के समान जिस भी कवि ने उन्हें आधार बनाया वह कवि सफलता को प्राप्त हुआ। रामायण में 24 हजार श्लोक हैं। अतः इसे ''चतुर्विंशतिसाहस्रीसंहिता'' भी कहा जाता है। गायत्री मंत्र में जितने अक्षर हैं उतने हजार रामायण में श्लोक हैं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि रामायण के प्रत्येक हजारवें श्लोक के आदि अक्षर की शुरुआत गायत्री मंत्र के अक्षर से होती है। रामायण में 500 सर्ग हैं। इसमें 7 काण्ड हैं। बहुत से विद्वान उत्तरकाण्ड एवं बालकाण्ड के कुछ अंश प्रक्षिप्त मानते हैं। बालकाण्ड के प्रथम और तृतीय सर्ग में जो विषय सूची है वहां उत्तरोत्तरकाण्डवर्णित बालकाण्डगततदंशवर्णित विषय नहीं आते हैं। इस आधार पर वे प्रक्षिप्त कहे जाते हैं। याकोवि महोदय तो अयोध्याकाण्ड के आरम्भ से युद्धकाण्ड तक पांच काण्डों को ही वाल्मीकि कृत मानते हैं। लंकाकाण्ड के अन्त में ग्रन्थ की समाप्ति प्रतीत होती है। रामायण में सात खण्ड विद्यमान हैं। वहां बालाख्यकाण्ड के प्रथमखण्ड में राम के यौवन सुख का वर्णन है, और वहीं मुनि विश्वामित्र के साथ उसके आश्रम के प्रति गमन, यज्ञ के विघ्नकर्ता राक्षसों के हनन, जनक जापापाणिपीडन का वर्णन है। द्वितीयकाण्ड अयोध्याकाण्ड के शुरु में यौवराज्य पद के अभिषेक समारोह का उपक्रम, वहीं पर केकैयी द्वारा रचित चक्रव्यूह, राम का निर्वासन, रामविरह में दशरथ का प्राण त्याग आदि विषय वर्णित हैं। अरण्यकाण्ड नामक तृतीयकाण्ड में राम का दण्डकारण्य गमन, दण्डकारण्य में वातापिनामक राक्षस का हनन, रावण कृत मैथिली (सीता) हरण इत्यादि विषय सुशोभित हैं। किष्किन्धाकाण्ड नामक चतुर्थ काण्ड में राम की सुग्रीव के साथ मित्रता, बालि का वध तथा वानरों की सहायता से पवन पुत्र हनुमान द्वारा सीता की खोज आदि विषय वर्णित हैं। सुन्दरकाण्ड नामक पांचवे काण्ड में लंका द्वीप की सुन्दरता, रावण के महल का बलवत्‌चित्र का आकर्षक वर्णन, हनुमान

का सीता को सान्त्वना प्रदान करना, आदि विषय वर्णित हैं। युद्धकाण्ड नामक छठे अध्याय में राम का रावण को मारना लंका पर विजय आदि विषय विद्यमान है। उत्तरकाण्ड नामक सातवें काण्ड में नगर वासियों में सीता हरण के प्रसार से प्रजा द्वारा राम की निन्दा कथन, राम के आदेश से सीता को वनवास, सीता का शोक, वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश का जन्म, ग्रन्थ की परिसमाप्ति आदि का विस्तार से वर्णन है। इस प्रकार वाल्मीकि ने रामायण नामक ग्रन्थ में रामचरित की उपस्थापना से आदर्श मानव चरित्र का वर्णन किया है। वह ही रामायण ग्रन्थ सनातन धर्म का प्राणभूत है।

रामायण की कविता शैली

सर्वप्रथम रामायण काव्य है, उसके बाद धर्मग्रन्थ अथवा अन्य कुछ है। रामायण तो आदि संस्कृत काव्य है। उसके प्रणेता वाल्मीकि हैं। इसमें सरल संस्कृत उपलब्ध है। इस रामायण से ही संस्कृत काव्य का बालरूप निरुपण होता है। प्राय: आदिकवि वाल्मीकि ने अनुष्टुप छन्द से पद्यों की रचना की है। इसलिए कहा गया है- ''वाल्मीकेरुपज्ञा नूनमनुष्टुप छन्द:'' आरम्भ से अन्त तक सर्वत्र रामायण की भाषा विशुद्ध, परिष्कृत और कहीं-कहीं अलंकार मण्डित भी है। रामायण में उपमा-रुपक आदि अलंकारों का वर्णन है। कवि ने कभी भी कथावस्तु के तत्त्व को नहीं छोड़ा। इसलिए कवि ने सर्व कवित्व दर्शाने की इच्छा की है। जैसे हेमन्तवर्णन में काव्य छटा देखें -

''सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम्।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक् प्रकाशते।

प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम्।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरि:॥

रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारावष्टतमण्डल:।
निश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥''इति

रावण द्वारा बहुत अधिक प्रार्थना करती हुई सीता को जो कहा वह अति रमणीय काव्य का निर्देशन कराते हैं :

''नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा।
सिंहस्य खादतो मांसं मुखादादातुमिच्छसि॥

यो रामस्य प्रियां भार्यां बलात्त्वं हर्त्तुमिच्छसि।
त्वं क्षुरं जिह्वया लेक्षि सूच्या स्पृशसि लोचने।
यो रामस्य प्रियां भार्यां पापबुद्धया निरीक्षसे॥''इति

आदिकवि वाल्मीकि ने अशोक वाटिका में स्थित सीता के स्वरुप को उपमा आदि से प्रकाशित किया है :

अभूतेनापवादेन कीर्त्तिं निपतितामिव।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव।

सन्नामिव महाकीर्त्ति श्रद्धामिव विमानिताम्।
पूजामिव परीक्षीणामाशां प्रतिहतामिव॥ इति

कविता का उद्‌देश्य लोकहित हो यह बात वाल्मीकि कभी नहीं भूले। इसलिए चरित्र वर्णन में सभी जगह उच्च आदर्श व विचार प्रदर्शित किये हैं :

''कल्याणि बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥'' इति।

इस प्रकार के उपदेश काव्य के माहात्म्य को बढ़ाते हैं। वे इन सभी साहित्यिक गुणों से वाल्मीकि भारतीय काव्य धरा को हिमालय मानते हैं :

''कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥''इति।

रामायण में रस

काव्यों के आदर्शभूत रामायण है। कवियों के आदर्शभूत वाल्मीकि हैं ऐसा विद्वान कहते हैं। यदि ''वाल्मीकि नहीं होते तो कवि कैसे होते'' ऐसा निर्णय करना दुष्कर होता। कवि क्रान्तदर्शी होते हैं। वे जो मनोरम तत्व देखते हैं वैसे ही शब्द द्वारा लोक को उपदेश के लिए और मनोरंजन के लिए चित्रित करते हैं। स्वानुभूत वस्तु का शब्द चित्र के रुप में उपस्थापन ही काव्य है। रामायण से पूर्व उपनिषद् आदि में यद्यपि पद्य थे, परन्तु उनमें लौकिक छन्द नहीं थे, वाल्मीकि ही सर्वप्रथम लौकिक छन्दों के अवतारक थे। जब क्रौंचवध का करुण रस देखा, तब ही अकस्मात् इनके मुख से काव्य प्रवाह निकला था। वे इस काव्य में करुण रस को ही प्रधान तत्व मानते हैं। रस ही काव्य की आत्मा होती है। वाल्मीकि काव्य में करुण रस ही मानते हैं। रामायण में करुण रस है। स्वयं आदिकवि वाल्मीकि ने कहा है- जैसा कि ''श्लोकत्वमागत:''। भवभूति भी ''एको रस: करुण: एवं'' ऐसा कहकर काव्य में करुण रस की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। वाल्मीकि ने भी अपने काव्य में वैसा ही स्वीकार किया होगा इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। **रामचरित्र की आदर्शता** वाल्मीकि द्वारा अपनी काव्य कला के प्रदर्शन के लिए जिन पात्रों को आधार बनाया वह राम का चरित्र है और उसी को आधार बनाकर कवियों ने सफलता प्राप्त की है। जैसा कि सुना जाता है-

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥

रामचन्द्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श शासक और आदर्श मनुष्य थे। ऐसा सब जानते हैं। राम वन में जाकर भी भरत पर संदेह नहीं करते, लक्ष्मण पर आई विपत्ति में स्वयं के प्राणों को तिनके के समान मानना आदि आदर्श भ्रातृता को प्रकट करते हैं। सीता का परित्याग करके भी उसके अनुराग की अग्नि में स्वयं को जलाते हैं। यह राम का आदर्श पतित्व है। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राज्य का परित्याग किया, यह आदर्श पुत्रत्व को समझाते हैं। राम राज्य पद आज भी आदर्श राज्य का पर्याय है। यह राम को आदर्श शासक

बनाते हैं। व्यवहार से राम आदर्श मनुष्य थे। वाल्मीकि ने इस प्रकार के चरित्र से अपने काव्य की रचना की।

संसार में कोई भी काव्य रामायण की लोकप्रियता की समता करने में समर्थ नहीं हैं। इसलिए इस का प्रचार भी पूर्ण रुप से हुआ हैं। महाभारत के तृतीयपर्व में राम कथा रामायण से वर्णित हैं। अग्नि-विष्णु-गरुड़-भागवत और ब्रह्माण्ड पुराणों में रामायण के अनुसार ही राम का चरित्र वर्णित हैं। भास, कालिदास आदि महाकवियों ने भी रामायण का आश्रय लेकर काव्यों की रचना की। बौद्ध कवियों ने भी अपने काव्यों में रामायण का आश्रय लिया था।

रामायण आश्रित काव्य

1. रघुवंश महाकाव्यम् - कालिदास
2. जानकीहरणम् - कुमारदास
3. भट्टिकाव्यम् - महाकवि भट्टि
4. अभिषेकनाटकम् - भास
5. उत्तररामचरितम् - भवभूति
6. बालरामायणम् - राजशेखर
7. रामायणचम्पू - भोजराज
8. श्रीरामचरितमानस - तुलसीदास
9. अनर्घराघवम् - मुरारि
10. प्रतिमानाटकम् - भास

पाठगतप्रश्न - 1.1

1. आदि कवि कौन हैं ?
2. आदि काव्य कौन सा है?
3. वाल्मीकि मुनि का काल क्या है?
4. रामायण की रचना किसने की?
5. रामायण में कितने काण्ड हैं?
6. रामायण में कितने श्लोक हैं?
7. रामायण का मुख्य रस कौन सा है?

8. रामायण आश्रित एक नाटक का नाम लिखिए।

9. रामायण आश्रित एक चम्पू काव्य का नाम लिखिए।

10. रामायण में नायक कौन हैं?

11. रामायण में कितने सर्ग हैं?

1.2 द्वैपायन व्यास - महाभारत

महाभारत ही भारत वर्ष का द्वितीय राष्ट्रीय महाकाव्य है। महाभारत के प्रणेता कृष्णद्वैपायन व्यास हैं। संस्कृत साहित्य जगत में वाल्मीकि के बाद वेदव्यास अग्रगण्य कवि हैं। व्यासदेव ऋषि थे। अत: वे आर्ष कवि कहे जाते हैं। इस पुरातन कवि ने अपने ग्रन्थ में देशकाल आदि के विषय में कुछ भी नहीं लिखा था। इसलिए इस प्रकार के कवियों के देश-कालादि के विषय में अनुसन्धान यद्यपि कठिन है, किन्तु असंभव नहीं। अन्य ग्रन्थों को देखकर इस प्रकार के प्राचीन कवियों के बारे में देश कालादि का अनुमान किया जाता है।

1.2.1 काल

आज कल उपलब्ध महाभारत, मूल महाभारत के अनेक वर्षों के व्यतीत होने के बाद निर्मित किया गया। अत: मूल महाभारत के बाद 'जय' नाम का ग्रन्थ था जो वर्तमान महाभारत से पूर्वकालिक था। यहां वर्तमान महाभारत का रचना काल विचारणीय है।

11 वीं ई० में क्षेमेन्द्र ने भरतमंजरी नामक ग्रन्थ लिखा। क्षेमेन्द्र ने महाभारत के उदाहरण दिये हैं। अतएव वर्तमान महाभारत का 11वीं शताब्दी से पूर्वकाल सिद्ध होता है।

8वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न हुए, आदि शंकराचार्य ने स्त्रियों को धर्मज्ञान के लिए, महाभारत का उपदेश दिया है। अत: महाभारत का समय इनसे पूर्व का सिद्ध होता है।

8वीं शताब्दी में उत्पन्न कुमारीलभट्ट महाभारत के बहुत से पर्वों का स्मरण करते हैं।

7वीं शताब्दी में उत्पन्न बाण-सुबन्धु आदि कवियों ने महाभारत के अठारह पर्वो एवं हरिवंश का स्मरण किया हैं।

6ठी शताब्दी के आस-पास भारत के प्राचीन उपनिवेश कम्बोडिया में उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात होता है कि वहाँ स्थापित किसी मन्दिर में रामायण-महाभारत ग्रन्थों को भारत ने प्रदान किया तथा उस के कथा प्रबन्धन की व्यवस्था भी भारत ने की।

यवन, बालि आदि द्वीपों में 6वीं शताब्दी में महाभारत का अवतरण हुआ। उससे भी पूर्व तिब्बत भाषा में महाभारत का अनुवाद हुआ।

4वीं व 5वीं शताब्दी में लिखित दान पात्रों में महाभारत के कथनों का निर्देश हुआ है।

462 ई0 में उत्कीर्ण शिलालेख में पाराशर व्यास के एकलाखश्लोकात्मक महाभारत के प्रणेता रुप में उल्लिखित हैं।

ड्योन क्राइसोस्तोम (Dion Chrysostom) महोदय के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि 50 ई0 में एकलाखपद्यात्मक महाभारत का दक्षिणा पथ में प्रचार था।

इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध है कि प्रथम ई0 के आरम्भ में महाभारत अवश्य थी और पाणिनि, महाभारत को जानते थे ऐसा डल्हमैन महोदय के साक्ष्य से प्रतीत होता है।

5वीं ई0पू0 मे प्रणीत आश्वालयनगृह्यसूत्र में महाभारत का उल्लेख मिलता है।

400 ई0पू0 समय में निर्मित बौधायनधर्मसूत्र में महाभारत का उल्लेख है।

महाभारत के शान्तिपर्व में विष्णु के दशावतार गणना काल में बुद्ध का नाम नहीं आता है।

मेगास्थनीज प्रणीत भारत वर्णन में जिस कथा का वर्णन किया गया वह कथा महाभारत से स्वीकृत है।

महाभारत में ब्रह्मा को सबसे ज्येष्ठ देवता प्रतिपादित किया है। पालि भाषा साहित्य से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा का ज्येष्ठत्व 500 ई0पू0 से पहले तक प्रचारित हो चुका था।

कुछ विद्वान ज्योतिष प्रमाणों से यह कल्पना करते हैं कि वर्तमान महाभारत 500 ई0पू0 समय से पहले तक निर्मित हो चुका था, उसके बाद नहीं। अत: सभी समीक्षाओं से महाभारत 500 ई0पू समय के बाद में निर्मित नहीं हुआ, किन्तु कुछ पूर्व में निर्मित हुआ प्रतीत होता है। सम्पूर्ण महाभारत एक काल की कृति है। अत: व्यास 500 ई0पू समय से पूर्वकालिक थे।

1.2.2 कृति

व्यासदेव की पुराण और महाभारत ये दो कृतियाँ सुनी जाती हैं। पुराणों का धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्व है। व्यासदेव ने वेदविहित धर्मों का सरलता और सुबोध भाषा से वर्णन के लिए पुराणों की रचना की थी। जब वेदोक्त अर्थ लोगों की बुद्धि में प्रवृत नहीं होता था; तब वेदोक्त अर्थ का ज्ञान सुलभ करने के लिए पुराणों का आगमन हुआ। समाज के तात्कालिक स्वरुप का बोध कराने में भी पुराणों का महान योगदान है। पुराणों में प्राचीन भारत का इतिहास निहित है। इतिहास केवल राजाओं के वृतान्त का बोध कराता है। परन्तु पुराण राजाओं के वृत्तान्त के साथ ऋषियों का भी वृत्तान्त का बोध कराता है। पुराणों में भौगोलिक सामग्री को भी प्रस्तुत किया हैं। पुराणों की विषय वस्तु के सम्बन्ध में कथा सुनी जाती है कि व्यास ने ही वेदों को चार प्रकार से विभाजित करके अपने चारों शिष्यों को उनका उपदेश दिया। उसके बाद यह कथा, आख्यायिका, उपाख्यान, गीत, और लोकवाद के रूप से संग्रह करके पुराण नाम से ग्रन्थ विशेष में ग्रंथित हुई। इतिहास के साथ-साथ इस ग्रन्थ को अपने पांचवें शिष्य लोमर्हषण को पढ़ाया और उसके बाद उन्होंने महाभारत को निबद्ध किया। यह व्यासदेव की दूसरी सुप्रसिद्ध कृति महाभारत है। रामायण की तुलना में यद्यपि महाभारत का प्रचार कम हुआ फिर भी महत्त्व की दृष्टि से महाभारत कम नहीं है। इससे विश्व का कोई भी तत्व अछूता नहीं रहा। महाभारत उस

समय के भारतीय समाज नीति, राजनीति आदि जानने योग्य विषय का बोध कराता है। तथा भारतीय सभ्यता को प्रकाशित करता है। प्रमाणित ग्रंथ की दृष्टि से महाभारत को पंचम वेद की संज्ञा दी जाती है। प्राय: सभी विद्वान यह मानते हैं कि महाभारत प्रारम्भ में ''जय'' नाम से, उसके बाद ''भारत'' नाम से तत्पश्चात् महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जैसा कि कहा गया है।

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।। इति

मौलिक जय नाम से व्यवहृत महाभारत का अल्पपरिमाण वाले स्वरुप में ऐतिहासिक कथा की प्रधानता थी, न कि उपदेश की। 'जय' नाम का ग्रन्थ पाण्डव विजय मात्र के बोध कराने के लिए निर्माण किया था। इस जय नाम के ग्रन्थ को व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को पढ़ाया। वह महाभारत की प्रथम अवस्था थी। उसी का नाम जय था। वैशम्पायन ने गुरु व्यास से पढ़कर जय में स्वविरचित संवादों को जोड़कर नाग यज्ञ के अवसर में जनमेजय को सुनाया। तब उसमें चौबीस हजार श्लोकों के रुप में परिमित हुई। तब इसकी 'भारत' संज्ञा थी। यह इसकी द्वितीय अवस्था थी। इस चौबीस हजार श्लोकात्मक भारत ग्रन्थ को शौनक के लिए सौति ऋषि ने सुनाया। तब इसमें एक लाख श्लोक थे। इस तृतीय अवस्था को ही महाभारत की संज्ञा प्राप्त हुई। यही महाभारत की अन्तिम अवस्था थी।

1.2.3 विषय

महाभारत का शतसहस्री दूसरा नाम है। प्रस्तुत महाभारत पर्वों और अध्यायों में विभक्त था ऐसा अनुमान है। यह विभाजन क्रम वैशम्पायन द्वारा प्रदान किया। उस समय महाभारत उपशत पर्वो में विभाजित थी। सौति ने संख्या संकोच से अठारह पर्व किये। अब अठारह पर्वो के अतिरिक्त हरिवंश नामक पर्व भी है। आज महाभारत में एक लाख श्लोक हैं। यहा कुछ मुख्य पर्वो में निम्न विषय वर्णित है:-

आदिपर्व में धार्तराष्ट्रों और पाण्डवों के बाल्यकाल का वर्णन, द्रोपदी विवाह, यादववीर शौरियों व पाण्डवों का वर्णन है।

सभापर्व में इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों की समृद्धि, द्यूतक्रीडा में पाण्डवों का युधिष्ठिर द्वारा द्रोपदी सहित सब कुछ हारना, एक वर्ष के अज्ञातवास के साथ बारह वर्ष के वनवास के लिए पांडवों का निर्वासन। वनपर्व में काम्यकारण्य में पाण्डवों का बारह वर्ष का वनवास। विराट पर्व में पाण्डवों का गुप्तरुप से मत्स्यराज विराट के सेवक रुप में अज्ञातवास के तेरहवें वर्ष को व्यतीत करना।

उद्योगपर्व में धार्तराष्ट्र पाण्डवों को न्याय के दायभाग प्रदान करने की इच्छा नहीं करते।

इससे आगे के पांच पर्वो में वासुदेव व पाण्डवों को छोड़कर सब के विनाश का कारण भीषण युद्ध का विस्तार से वर्णन है।

ग्यारहवें पर्व में मृतदाह संस्कार करके बाहरवें और तेरहवें पर्व में युधिष्ठिर को भीष्म ने

राजधर्म का उपदेश दिया। चौदहवें पर्व में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक अश्वमेध नाम के यज्ञ का और पन्द्रवें पर्व में गान्धरी व धृतराष्ट्र का तपोवनगमन, सोलहवें पर्व में यादवों का परस्परकलह और सहसा कृष्ण का व्याधकृत वध, सत्तारहवें पर्व में अर्जुन के पौत्र परीक्षित को प्रजा पालन के कर्म में नियुक्त करने पाण्डवों का मेरु पर्वत के प्रति प्रस्थान अठारहवें पर्व में पाण्डवों का स्वर्गारोहण का वर्णन है।

महाभारत की कविता शैली

व्यास की इस कृति को 'इतिहास' भी कहते हैं क्योंकि इसमें वीरो की पुण्य गाथा वर्णित है। यह ग्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें लोक अपने कल्याण को खोजता है। महाभारत में ही गीता रुपी रत्न विद्यमान है। जो दुग्ध के समान पिया जाता है। गीता ग्रन्थ का आदर महाभारत की ही विशिष्टता को प्रमाणित करता है। इसमें शान्त मुख्य रस है। महाभारत में सरल संस्कृत भाषा में पद्य है यथा

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि ग्रह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

कतिपय कथा प्राचीन ग्रथों से संयुक्त है। पद्यों के बाहर ''कृष्ण उवाच'' भीष्म उवाच'' आदि वाक्य विद्यमान है। व्यास के मत में तो भारतीय संस्कृति का प्राणभूत धर्म है। इसलिए कहा गया है।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।

धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।

मनुष्य को सदा कर्मशील होना चाहिए। कर्म विमुख मनुष्य कभी भी मानव की पदवी के योग्य नहीं है। जैसा कहा गया है। प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः आधुनिक समाजशास्त्री कहते हैं- मनुष्य ही श्रेष्ठ जीव है। उनके ही कल्याण के लिए सभी नियम व्यवहार प्रवृत होते हैं। इस विषय में व्यास ने कहा है।

''गुह्यं ब्रह्मा तदिदं ब्रवीमि
न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्''।

महाभारत के उपजीव्य

महाभारत के बहुत से नीति वाक्य इस युग में अत्यन्त प्रयोजन पूर्ण हैं। व्यक्ति अनेक प्रकार से दिग्भ्रान्त होते हैं। मानवों को सन्मार्ग पर जाने के लिए महाभारत अन्यन्त उपयोगी है। महाभारत की जनप्रियता भी अत्यन्त है। बहुत से महाकवियों ने महाभारत का आश्रय लेकर बहुत से ग्रन्थों की रचना की।

महाभारताश्रित ग्रन्थों के नाम

1. शिशुपालवधम् – माघ (सभापर्व)
2. नैषधीयचरितम् – श्रीहर्ष (वनपर्व)
3. किरातार्जुनीयम् – भारवि (वनपर्व)
4. कर्णभारम् – महाकवि भास
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास
6. वेणीसंहारम् – भट्टनारायण
7. नलचम्पू – त्रिविक्रमभट्ट
8. भारतचम्पू – अनन्तभट्ट

पाठगत प्रश्न-1.2

12. व्यासदेव का काल क्या है?
13. महाभारत किस के द्वारा विरचित है?
14. महाभारत का दूसरा नाम क्या है?
15. महाभारत में कितने पर्व हैं?
16. महाभारत में कितने श्लोक हैं?
17. द्वितीयावस्थापन्न महाभारत का नाम क्या है?
18. प्रथमावस्थापन्न महाभारत का नाम क्या है?
19. महाभारत में मुख्य रस कौन सा है?
20. व्यास की महाभारत के अतिरिक्त कृति कौन सी है?
21. महाभारत आश्रित नाटक कौन सा है?
22. महाभारत आश्रित महाकाव्य कौन सा है?
23. महाभारत आश्रित चम्पूकाव्य कौन सा है?

1.3 भास

संस्कृत साहित्य जगत में नाटककार भास एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं। वर्तमान उपलब्ध नाटककारों में भास ही सबसे प्राचीन नाटककार है। कालिदास आदि कृतग्रन्थों में भास का नामोल्लेख

अनेक बार दिखाई देता है। भास ने अपनी कृतियों में स्वयं के विषय में कुछ भी नहीं लिखा। अतः भास के कालादि का निरुपण भी अन्य पुस्तकों की सहायता से होता है।

1.3.1 काल

भास का काल निर्णय प्राचीन कवियों एवं लेखकों के लेखों पर अवलम्बित है।

कालिदास ने 'प्रथितयशसां' भाससौमिल्लकविपुत्रदीनाम् कहकर भास की प्रचुर प्रसिद्धि कही है। अतः भास कालिदास से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थ 'अभिनवभारती' में भास को स्मरण करते हुए उनके नाटक के उदाहरण दिये हैं।

महाकवि भास ने भी अपने प्रबन्ध में कहा है।

त्रैतायुग तदिह हन्त न मैथिली सा,
रामस्य रागपदवी मृदु चास्य चेतः।

लब्ध जनस्तु यदि रावणरुप कायं,
प्रीत्कृत्य तन्न तिलशो न वितृप्तिगामी॥'' इति

बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास के विषय में 'सूत्रधारकृतारम्भैः' यह कहा है।

दण्डि ने भी सुविभक्तमुखाद्यंगैः'' कहकर भास को अवन्तिसुन्दरीकथा में स्मरण किया है।

प्रतिमानाटक में बृहस्पति के अर्थशास्त्र का स्मरण किया गया, चाणक्य के अर्थशास्त्र को नहीं। अतः चाणक्य से प्राचीनता सिद्ध होती है।

राजशेखर ने अपने कविविमर्श में लिखा है–

भासो रामिलसौमिलौ वररुचिः श्रीसाहसांकः कविमेण्ठो भारविकालिदासतरलास्कन्धः सुबन्धश्च यः। अतः भास राजशेखर से भी पूर्ववर्ती सिद्ध होते है।

भरत प्रवर्तित नाटक के नियमों को भास के द्वारा कदापि स्वीकार नहीं किया गया। जैसे स्थापना में कवि के नाम का निर्देश नहीं, अवतरण की स्थापन का निर्देश नहीं, प्रस्तावना का नाम नहीं। नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार का प्रवेश, भरतवाक्य के बिना ग्रन्थ की समाप्ति और रंगमंच पर मृत्यु निद्रा युद्धों का अवतरण करना। ये सभी भास की भरत से प्राचीनता सिद्ध करते हैं।

भास ने अपनी कृतियों को पाणिनि व्याकरण के अनुसार नहीं लिखा। कहीं-कहीं तो पाणिनि व्याकरण नहीं था। ये सभी प्रमाण भास को पाणिनि से प्राचीन बताते है।

रस परिपाक महिमा से, भाषा प्रवाह साम्य से भास को व्यास वाल्मीकि के समय के परवर्ती स्थापित करते है।

इन सभी कारणों से भास की प्राचीनता सिद्ध होती है। भास का समय कालिदास से प्राचीन 100 ई0पू का बोध होता है।

टिप्पणी

1.3.2 कृति-

महाकवि भास ने प्राय: तेरह नाटकों की रचना की।

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्	2. अविमारकम्
3. स्वप्नवासवदत्तम्	4. प्रतिमानाटकम्
5. अभिषेकनाटकम्	6. मध्यमव्यायोग:
7. पंचरात्रम्	8. दूतवाक्यम्
9. दूतघटोत्कचम्	10. कर्णभारम्
11. उरुभगम्	12. बालचरितम्
13. दरिद्रचारुदत्तम्	

कुछ विद्वानों के मत में भास ने यज्ञफलम् नामक रुपक भी लिखा था।

नीचे प्रत्येक नाटक का सामान्य परिचय दिया गया है।

1. **प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्** - प्रतिज्ञायौगन्धरायण भास की प्रथम कृति और स्वप्नवासवदत्तम् की पूर्व पीठिका है। इसमें वत्सराज उदयन का वासवदता हरण का वृतान्त वर्णित है। यह चार अंको में विभक्त है। इसका नायक यौगन्धरायण और कथावस्तु का स्वामी उदयन है। शत्रु वशीभूत उदयन को छुड़वाने के लिए यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है और इस प्रतिज्ञा की पूर्ति करना ही इस नाटक का नामकरण है।

2. **स्वप्नवासवदत्तम्** - छ: अंकों में विभक्त यह रुपक भास की सर्वोत्कृष्ट कृति है। आरुणि वत्सराज्य की भूमि को अपने अधीन कर लेता है। वत्सभूमि के उद्धार के लिए मन्त्री यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की। वासवदत्ता जल गई इस प्रकार के मिथ्या प्रचार से सभी को ठगकर उदयन का मगधराज पुत्री पद्मावती के साथ विवाह करवाता है उसके बाद मगधराज की सहायता से रूमण्वान् आरुणि को हराकर उदयन को राज्य में पुन: स्थापित करता है। कुछ समय बाद वासवदत्ता पुन: अपने आप को प्रकट करती है। दग्ध ऐसा मानकर वासवदता को उदयन स्वप्न में देखता है। इसी कथा के आधार पर इस ग्रन्थ का नाम ''स्वप्नवासवदत्तम्'' पड़ा। इस कथा का आश्रय लेकर श्रीहर्ष ने रत्नावली नाटिका की रचना की।

3. **अविमारकम्**– अविमारक रुपक में छ: अंक हैं। इसमें काशी युवराज सौवीर राज धर्म पुत्र अविमारक का कुन्तिभोज की राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रेमलीला का वर्णन है। इसमें वैसा चमत्कार प्रकट नहीं हुआ। सम्भावना है कि भास अपनी ही व्यथा को यहां प्रकट करते हैं। इस रचना के प्रणेता भास है इसमें भी आपत्ति नहीं है।

4. **चारुदत्तम्**- चारुदत्त नाटक चार अंको में विस्तारित है। इसमें उज्जयिनी के ब्राह्मण चारुदत्त का वसन्तसेना नाम की वेश्या के साथ प्रेम वर्णित है। यह रचना अपनी जाति में

प्रथम है क्योंकि इसमें राजा के अतिरिक्त किसी ब्राह्मण को नायक के रुप में कल्पित किया है। यह भास का अपूर्ण नाटक है। इसमें चारुदत्त के साथ वसन्तसेना का अभिसार निमित्त व्यवस्था पर्यन्त की कथा है। इसका अनुकरण करके शूद्रक कवि ने मृच्छकटिकम् नाटक की रचना की।

5. **प्रतिमानाटकम्–** इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें राम वनगमन तक की कथा का संक्षेप में वर्णन है।

6. **अभिषेक नाटकम्–** इस नाटक में छः अंक हैं छः अंकों वाला यह नाटक प्रतिमा नाटक का उत्तरार्ध है। इसमें रामायण की किष्किन्ध से सुन्दर युद्धकाण्ड आख्यान तक की कथा संक्षेप में वर्णित है। इसे ही बालि वध नाम से भी जाना जाता है।

7. **बालचरितम्–** बालचरितम् भागवत कथा आश्रित नाटक है। इसे 'कंसवध' नाम से भी जाना जाता है। इसमें कृष्ण जन्म के आरम्भ से कंस वध तक की कथा वर्णित है।

8. **ऊरुभंगम्–** यह रुपक एकांकात्मक है। इसमें दुर्योधन की ऊरुभंग तक की कथा वर्णित है। संभवतः यह ही संस्कृत साहित्य का प्रथम दुःखान्त नाटक है।

9. **दूतवाक्यम्–** इस नाटक में एक अंक विद्यमान है। यह नाटक श्रीकृष्ण का पाण्डव दूत कथा से सम्बद्ध है।

10. **पंचरात्रम्–** इसमें तीन अंक है। इसमें यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दक्षिणा रुप में पाण्डवों के लिए आधे राज्य को देने की प्रार्थना की, दुर्योधन ने भी पांच रात्रियों में पाण्डवों के आगमन की बात कही। द्रोण के प्रयास से पाण्डव वहाँ उपस्थित होते हैं। उसके बाद प्रतिज्ञा अनुसार दुर्योधन पाण्डवों को आधा राज्य देता है। यह कथा महाभारत की कथा के विरुद्ध है।

11. **दूतघटोत्कचम्–** इस नाटक में एक अंक है। इस नाटक में अभिमन्यु के वध के बाद श्री कृष्ण सन्धि प्रस्ताव के लिए घटोत्कच को दूत के रुप नियुक्त करते है। वह कौरवों के पास जाकर शान्ति का प्रस्ताव देता है, किन्तु घटोत्कच कौरवों से अपमानित हुआ। क्रुद्ध होकर प्रतिशोधर्थ युद्ध करने की इच्छा प्रकट करता है।

12. **कर्णभारम्–** इस नाटक में भी एक अंक है। कर्ण का ब्राह्मण रूपधरी इन्द्र के लिए कवच कुण्डल दान देने की कथा है।

13. **मध्यमव्यायोग–** इस व्यायोग में भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और भीम का हिडिम्बा के साथ पुनर्मिलन की कथा वर्णित है।

इन तेरह नाटकों के अतिरिक्त भास रचित सात अन्य नाटकों का भी स्मरण किया जाता है। जिनमें वीणावासदत्ता और यज्ञफलम् है। वर्तमान में ये नाटक उपलब्ध नहीं हैं। प्रतिमानाटकम् और अभिषेक की कथा रामायण से, मध्यम व्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभंग एवं दूतवाक्यम् महाभारत की कथा से, बालचरितम् भागवत कथा से और दरिद्रचारुदत्तम् एवं अविमारककविकल्पित कथा से संकलित हैं।

टिप्पणी

पाठगतप्रश्न–1.3

24. भास का समय क्या है?
25. भास रचित एक नाटक का नाम लिखिए।
26. भास के प्राय: कितने नाटक हैं?
27. भास की प्रथम कृति कौन-सी है?
28. स्वप्नवासवदत्तम् में कितने अंक हैं?
29. प्रतिमानाटकम् की कथा का आश्रय क्या है?
30. अभिषेक नाटक में कितने अंक हैं?
31. भास ने महाभारत आश्रित कौन सा नाटक लिखा?
32. कर्णभारम् में कितने अंक है?
33. चारुदत्त किस आश्रय से लिखा गया?
34. पंचरात्रम् नाटक में कितने अंक है?
35. भास ने बालचरितम् नाटक किस आशय से लिखा?

पाठसार

इस पाठ में आदिकवि वाल्मीकि, व्यासदेव और भास के विषय में कुछ संक्षिप्त रुप से समालोचना की गई। वाल्मीकि तो आदिकवि हैं। क्योंकि काव्य के दृष्टान्त रुप से रामायण को उपस्थापित किया। यह रामायण ही भारतीय संस्कृति का प्राणभूत है। प्राय: 500 ई0पू0 से पूर्व रामायण की रचना की गई। इसके बाद महाभारत हमारा राष्ट्रेतिहास है। इस ग्रन्थ के प्रणेता व्यासदेव है। महाभारत ग्रन्थ मानव जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए नयन पथ पर ले जाता है। इसलिए हम भारतीयों के लिए ग्रन्थ राज महाभारत ही धर्मशास्त्र का भी कार्य सिद्ध करता है। महाभारत में 18 सर्ग, एक लाख श्लोक है। इस ग्रन्थ में भारतीय धर्म का सुविस्तृत ज्ञान के लिए कौरव व पाण्डवों के युद्ध का वर्णन किया। इस ग्रन्थ का निर्माण 500 ई0पू0 के समय से पूर्व का है। प्राचीन नाटककारों में भास अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके द्वारा लिखित तेरह नाटक संस्कृत जगत में विद्यमान है। महाकवि भास का समय 100 ई0पू0 है। महाकवि भास ने रामायण आश्रित प्रतिमानाटक महाभारत आश्रित मध्यमव्यायोग, भागवत आश्रित बालचरितम् और कल्पितेतिवृत आश्रित चारुदत्त आदि रुपकों की रचना की।

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

- महाकवियों का संक्षिप्त परिचय।
- रामायण एवं महाकाव्य की विषय-वस्तु को जाना।
- भास एवं भास के नाटकों से परिचय।

पाठान्त प्रश्न

1. वाल्मीकि के देश काल कृति के विषय में लघु टिप्पणी की रचना कीजिए।
2. वाल्मीकि की कृतियों के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
3. रामायण आश्रित ग्रन्थों पर लघु टिप्पणी की रचना कीजिए।
4. रामायण की कविता शैली के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
5. रामायण के काल के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।
6. व्यास के देशकालकृति के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
7. महाभारत आश्रित ग्रन्थों पर लघु टिप्पणी कीजिए।
8. महाभारत की कविता शैली के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
9. महाभारत के काल के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।
10. भास के देशकालकृति के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
11. भास के कृतियों के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
12. भास के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. वाल्मीकि	2. रामायण
3. 500 ई0पू0	4. वाल्मीकि
5. सात काण्ड	6. चतुर्विशंतिः श्लोक
7. करुण रस	8. प्रतिमा नाटक
9. रामायण चम्पू	10. रामचन्द्र
11. 500 सर्ग	

1.2

12. 500 ई0पू0के समय से पहले	13. व्यास देव द्वारा
14. शतसहस्री	15. अष्टादश पूर्व (अठारह पर्व)
16. एक लाख श्लोक	17. भारत
18 जय	19. शान्त रस
20. पुराण	21. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
22. नैषधीयचरितम्	23. नलचम्पू

1.3

24. 100 ई0पू0	25. स्वप्नवासवदत्ताम्
26. तेरह	27. प्रतिज्ञायोगन्धरायण
28. छ:अंक	29. रामायण
30. छ:अंक	31. मध्यमव्यायोग
32. एक अंक	33. कल्पितेतिवृत
34. तीन अंक	35. बालचरितम्

2

कवि परिचय-2

संस्कृत साहित्य में महान कवि हैं उनका परिचय अत्यन्त आवश्यक है। हमें उनके देशकाल के विषय में भी जानना चाहिए, क्योंकि छात्रों द्वारा काव्य तो पढ़े जाते हैं। परन्तु काव्य के कर्त्ताओं के विषय में अपने ग्रन्थों में नहीं लिखते हैं। अतः अल्प प्रयास से उनका परिचय नहीं होता है। अतः 12वीं कक्षा के लिए यह पाठ व्यवस्थित किया है। सरल भाषा द्वारा विषय वर्णित किया है जिससे छात्रों को बोध हो जाये।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- कवियों के देशकालादि के विषय में जान पाने में;
- कवियों के ग्रन्थों को जान पाने में;
- साहित्य, कला को समस्त विकसित कर पाने में;
- प्राचीन और अर्वाचीन कवियों को जान पाने में;
- काव्य की शैली को समझ पाने में और;
- कवियों के महत्त्व को समझ पाने में।

2.1 कालिदास

संस्कृत साहित्य के अद्वितीय प्रतिभा के धनी कवि कालिदास हैं। संस्कृत जगत में ऐसा कोई

भी नहीं है। जिसके द्वारा प्रसिद्ध इन कालिदास का नाम नहीं सुना हो। कालिदास न केवल व्यक्ति के द्योतक हैं, अपितु प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर्ण युग के भी द्योतक हैं। उस संस्कृत युग के मूर्त प्रतीक स्वरुप महाकवि कालिदास हैं, परन्तु दु:ख का विषय है कि प्राचीन साहित्य के विषय में जितनी स्पष्टता है उतनी स्पष्टता कालिदास के देशकाल और कृति के विषय में नहीं है। कुछ भी स्पष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त होते। भारतवर्ष के किस नगरी में कालिदास का जन्म हुआ इस विषय में तो विवाद का अन्त ही नहीं है।

2.1.1 कालिदास

भारतीय कवियों का समय निर्धारण करना अतिकष्ट साध्य कार्य है। क्योंकि उनके द्वारा अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा। अन्य कृतियों में स्थित उल्लेखों के द्वारा अनुमान से प्राचीन कवियों का समय व्यवस्थित होता है। इस कारण से ही कालिदास के समय के सम्बन्ध में भी मत भेद है।

प्रथम मत-सर् विलियम जोन्स महोदय ने कालिदास का समय ई0पू0 प्रथम शताब्दी स्वीकार किया है, क्योंकि कालिदास विक्रमसंवत प्रवर्तक विक्रमादित्य राजा के सभापण्डित थे, ऐसा सुना जाता है अत: कालिदास का काल प्रथम शताब्दी है।

द्वितीय मत–बेवरलौसन्, याकोवि, मोनियर विलियम् इत्यादि महानुभावों के मतानुसार तो कालिदास द्वितीय शताब्दी के मध्य के हैं।

तृतीय मत–डा. भाऊदाजी महाशय ने कालिदास का समय छठी शताब्दी स्वीकार किया है। क्योंकि उज्जयिनी नरेश हर्षविक्रमगुप्त ने मातृगुप्त नामक व्यक्ति को काश्मीर का शासक नियुक्त किया था। यह मातृगुप्त ही कालिदास है ऐसा मानकर कालिदास का समय छठी शताब्दी मानते हैं।

चतुर्थ मत–वत्सभट्टि महोदय के एक शिलालेख से प्राप्त होता है। जहाँ 529 मालवा संवत्सर का उल्लेख है। उसे ही 476 ई0 कहा जाता है। उस शिलालेख की भाषा कालिदास की भाषा के समान दिखाई देती है। इसे आधार मान कर मैक्डोनल महोदय ने इनका समय पांचवीं शताब्दी कहा है।

पंचम मत–डॉ. हार्नले आदि विद्वानों ने कालिदास के काव्यों में गोप्ता, गोप्ते, कुमारगुप्त, स्कन्धआदि शब्दों से कालिदास का समय पञ्चमी व छठी शताब्दी के मध्य स्वीकार किया, क्योंकि इस प्रकार के शब्दों से गुप्तवंशीय राजाओं का स्मरण होता है।

षष्ठ मत–ए0सी0 चटर्जी तो कालिदास को मालवराज शोधधर्म के समकालीन मानकर उनका समय छठी शताब्दी मानते हैं।

सप्तम मत–रामचन्द्र विनायकपटवर्धन ने तो ''आषाढस्य प्रथम दिवसे, प्रत्यासन्ने नमसि'' इत्यादि श्लोकांश के आधर से कालिदास का समय 1800 वर्ष पूर्व कहा है क्योंकि ज्योतिष अनुसार गणना करके भी यही निर्णय होता है।

अष्टम मत–आर कृष्णमाचारियर् महाशय ने ''दिङ्नागाना पथि परिहरन्'' इस श्लोक के आधार से दिङ्नाग के समकालीन स्वीकार करते है। दिङ्नाग का समय छठी शताब्दी था। इस कारण कालिदास का भी समय छठी शताब्दी है।

नवम मत–म.म. रामावतारशर्मा ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन स्वीकार करके उनका समय छठी शताब्दी कहा है। किन्तु कुछ विचारक तो कालिदास ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी में हुए थे, ऐसा समर्थन करते हैं।

2.1.2 कालिदास का देश

कालिदास के जीवनवृति के विषय में अनेक लोकश्रुति और वाद हैं। कुछ इनको विक्रमादित्य की सभा में कवि मानते हैं और कुछ गुप्तकालीन राजा के आश्रित कहते हैं। धारानगर में राजा भोज की सभा में कविरत्न के पदवी से सुशोभित थे ऐसा कथाविद् कहते हैं। जनश्रुति के अनुसार ये बाल्यकाल से ही अतीव मूर्ख थे। विद्योत्मा के साथ इनका विवाह हुआ। पति मूर्ख है ऐसा जानकर विद्योत्मा कालिदास को कालीदेवी के मन्दिर में ले गई। 'जब तक आपको विद्या का उपदेश नहीं देती है तब तक आप को वहां से बाहर नहीं आना चाहिए'' ऐसा आदेश दिया। तब से पत्नी के आदेशानुसार वैसा ही आचरण कर कालिदास कालीदेवी के वरदान से विद्वान हो गये। यह कथा कालिदास की प्रतिभा और कविता चातुर्य को प्रकट करती है। परन्तु ऐसा विद्वान नहीं मानते। इस प्रकार की कालिदास के कविता चातुर्य को दिखाने वाली अनेक कथाएँ हैं।

प्रथम–उत्तररामचरित के कर्त्ताभवभूति ने स्वंय नाटक लिखकर कालिदास के अभिप्राय को पूछा था। वह नाटक के प्रथम अंक में विद्यमान है।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतेकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्॥

इस श्लोक में ''रात्रिरेवम्'' का ''रात्रिरेव'' कहकर सूक्त का परिष्कार किया। इस लिखित श्लोक में जैसा रसमयार्थ था वैसा ही परिष्कर किया। यहाँ कालिदास की काव्यप्रतिभा की सहृदयों ने प्रशंसा की, परन्तु भवभूति और कालिदास समकालीन थे यह इतिहासकारों द्वारा स्वीकार नहीं हैं।

द्वितीय मत– एक दूसरी कथा भी सुनी जाती है। किसी समय सरस्वती देवी ने कालिदास एवं भवभूति के कवितागुणतारतम्य की परीक्षा के लिए तुला में दो स्थालियों में दोनों को स्थापित किया। तब भवभूति की स्थाली का भार न्यून (कम) रहा। सरस्वती ने कुल्हारमुकुल मकरन्द को अपने कानों में लगाया जिससे दोनों स्थाली समान हो गई, ऐसा सुना जाता है। कालिदास के कविता चातुर्य को भोजप्रबन्ध कृति में अनेक परिश्लाघ्य उपाख्यानों से दिखाया है। परन्तु ये सभी प्रमाण स्वरूप नहीं कहे जा सकते।

तृतीय मत– विक्रमसंवत्सर संस्थापक विक्रमादित्य के आख्यान में वर्णित नवरत्नों में कालिदास अद्वितीय थे। यह दूसरा परम्परागत विश्वास है जैसा–

धन्वन्तरि क्षपणकामरसिहं शंकुवैतालभट्ट घटकर्परकालिदासाः।
ख्याती वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानिवै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

इस श्लोक में नवरत्नों के नाम निर्दिष्ट है। परन्तु ये सभी समकालीन नहीं है। कालिदास विक्रम के आख्यानों में थे, यह अंश स्वीकार किया जाये तो भी, यह श्लोक उनके काल को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार की प्रचलित किंवदन्ती अथवा ऐतिहासिक व्यक्तियों द्वारा उल्लेखित कथा भी कालिदास के चरित्र को बताने में समर्थ नहीं है। जो कथा रम्य हैं उनसे कालिदास की जनप्रियता जानने में समर्थ है। महाकवि ने कब और किस देश में जन्म ग्रहण किया इस विषय में सभी अनुसन्धानों का एक ही निष्कर्ष है। अद्यावधि इनके जीवन के विषय में बाह्य दन्तकथा और ऐतिहासिक कथाएँ है। मेघदूत व अन्य कृतियों में बार बार उज्जयिनी के सौन्दर्य का वर्णन किया, अतः वे वहाँ बहुत काल तक रहे होंगे। काश्मीर में प्रवर्धित केसर पुष्प का वर्णन किया, इससे ये काश्मीरी हैं। ऐसा कुछ विद्वानों का अभिप्राय है। उनके द्वारा मेघदूत में निर्दिष्ट रामगिरि और विदर्भ भी है। इस प्रकार के वर्णन से विदर्भीय थे यह निर्णय समीचीन नहीं लगते। मालवा का विस्तार से वर्णन किया इससे वे मालवीय है, ऐसा कुछ का अभिप्राय है। रघुवंशमहाकाव्य में वर्णित रघु की दिग्विजयों का सूक्ष्मता से परिशीलन करने पर पता लगता है कि उनका भारत में कोई भी प्रदेश अपरिचित नहीं है। जैसा असम प्रदेश का वर्णन किया, वैसी ही मनोहर शैली में केरल का भी वर्णन किया है। हिमालय के समान समुद्रतीर का सुन्दर वर्णन किया। अतः वे राष्ट्रकवि हैं, उज्जयिनी उनका स्थिर स्थान है, समग्र भारत उनका चरस्थान है, इसलिए समग्र भारत ही उनका प्रदेश है, ऐसा कह सकते है। इनके माता-पिता का नाम आज भी उपलब्ध नहीं है। इनके काव्य एवं नाटकों में समुद्र से भू स्थानों का वर्णन है। इनका देश काश्मीर है, बंगाल है, मालव है, या इनसे भिन्न है। ऐसा विद्वानों द्वारा वाद-मण्डित है। यद्यपि इन तीन समालोचक परम्पराओं से कालिदास जाने जाते हैं। संस्कृत साहित्य परिचितों के मन से कालिदास अन्यतम है। कालिदास के तीन काव्य और तीन नाटक जगत को मोहित करते हैं और पाश्चात्य् विद्वानों के मन को हठ से छोड़ते हैं।

2.1.3 कालिदास की कृतियाँ

कालिदास की कितनी कृतियाँ हैं इन विषय में भी मतभेद है। फिर भी बहुत से विद्वानों के मतानुसार कालिदास की सात कृतियाँ हैं। दो महाकाव्य-रघुवंशम् और कुमारसम्भव। दो खण्ड काव्य- ऋतुसंहार एवं मेघदूत। तीन नाटक- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, और विक्रमोर्वशीयम्। कुछ विद्वान् इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी पुष्पवाणविलास, शृंगाररसाष्टक, नलोदय आदि ग्रन्थ कालिदास के मानते हैं। परन्तु अन्य विद्वानों के मतानुसार इन ग्रन्थों के लेखक कालिदास नहीं है।

ऋतुसंहार

ऋतुसंहार कालिदास के खण्डकाव्य में एक अद्वितीय रचना है। ऋतुसंहार में छः सर्ग हैं। इस ग्रन्थ में एक सौ बावन (152) श्लोक हैं। ग्रीष्म ऋतु से वसन्तऋतु तक छः ऋतुओं का वर्णन प्राप्त होता है। समय के परिवर्तन से प्रकृति कैसे परिवर्तित होती है। उसका चित्रण इसमें प्राप्त

होता है। यहाँ विशेषतः प्रकृति के परिवर्तन से मनुष्यों का भोगोपकरण वर्णित हैं। इस काव्य में चित्रधर्मिता, गीतिधर्मिता रुप वैशिष्टय देखा जाता है, परन्तु ऋतुसंहार कालिदास का ही ग्रन्थ है इस विषय में भी मतभेद देखा जाता है। कवि के द्वारा ऋतुसंहार में विभिन्न ऋतुओं में युवक युवतियों के सम्भोग का वर्णन किया गया है। बहुत से लोग सरल रचनावश ऋतुसंहार को कालिदास की रचना ही नहीं मानते और कुछ लोग इसे कालिदास की युवा अवस्था की रचना कहते हैं।

मेघदूत

मेघदूत कालिदास के रचनासमूह के मध्य जनप्रिय काव्य है। यह ग्रन्थ मन्दाक्रान्ता छन्द में लिखित है। नायक धीरललित यक्ष एवं विशालाक्षी यक्षिणी नायिका है। इस ग्रन्थ में दो मेघ हैं पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। कर्त्तव्य के प्रमाद के कारण यक्ष कुबेर के आदेश से पत्नी को छोडकर रामगिरि पर्वत पर रहता है। वर्षाकाल में प्रिया के विरह में स्थित यक्ष की वियोग अवस्था का वर्णन है। मनुष्य काम पीड़ित होकर कैसे आचरण करते हैं, उसका वर्णन दिखाया गया है। यहाँ पर कवि ने पहली बार जड़ पदार्थ को स्वीकार करके दूत रुप से प्रदर्शित किया है। कवि द्वारा प्रिया विहीन व्यक्तियों की अवस्था का वर्णन किया गया है। यहाँ श्लोक पढने से ही प्रकृति का चित्र स्पष्ट प्रतिभाषित होता है।

रघुवंशम्

रघुवंश 19 सर्गात्मक महाकाव्य है। इसमें रघुवंश की कथा निबद्ध है। रघु अत्यन्त पराक्रमी और दानवीर था। इस काव्य में उसके वंश का गुणवर्णन है। इसी कारण कवि ने यह रघुवंश नामकरण किया। प्रधानतया इसमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, लव, अतिथि, इत्यादि श्रेष्ठ राजाओं का वर्णन है। दिलीप सत्यसिन्धु, रघु पराक्रमी और दानशील, अज कोमल हृदय और प्रेमी, श्रीराम सर्वोत्तम इस प्रकार ये चारों भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रतीक हैं। इस काव्य में रघु दिग्विजय, अजविलाप, सीतापरित्याग आदि भाग चित्ताकर्षक है। दसवें सर्ग में रामायण का सारसर्वस्व निरुपण किया गया। प्रत्येक सर्ग में कुछ अंश आकर्षक हैं। कथा भाग और वर्णन परस्पर मिलकर इस काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। रसों की परिपक्वता तन्मयता को पैदा करती है। नवरत्न विराजित मुक्ताहार के समान सर्वविध सौन्दर्य युक्त सत् सहृदयों की प्रीति पात्रता का आह्वान करती है। कालिदास द्वारा अन्य काव्यनाटकों की रचना की, फिर भी संस्कृत ग्रन्थकारों ने उनको रघुकवि कहकर प्रशंसा की। इसलिए इस काव्य की उत्कृष्टता समझी जाती है। दसवें सर्ग के आरम्भ से पन्द्रहवें सर्ग तक राम की कथा वर्णित है। इसके बाद रामवंशीय राजाओं के चरित को उपस्थापित किया। अन्तिम सर्ग गर्भान्ध अग्निवर्ण के अभिषेक से समाप्त होता है। कालिदास अग्निवर्ण के परवर्ती राजाओं का भी वर्णन करना चाहते थे, किन्तु वे कालकवलित हो गये। बहुत से लोग कहते हैं कि कालिदास के द्वारा रघुवंश के आगे के सर्ग भी लिखे गये थे, परन्तु वे आज प्राप्त नहीं होते। बहुत से लोग तो कालिदास और अग्निवर्ण की समकालिकता से ग्रन्थ की तत्पर्यन्ता का समर्थन करते हैं। रघुवंश में जिन राजाओं का वर्णन है उनका रामायण वर्णित राजाओं के साथ भेद मिलता है। परन्तु वायुपुराण वर्णित वंशावली के साथ रघुवंश वर्णित वंशावली बहुत अधिक सामंजस्य को धारण करती है। दसवें

सर्ग के आरम्भ से पन्द्रहवें सर्ग तक राम की कथा वर्णित है। उसके बाद रामवंशीय राजाओं का चरित को उपस्थापित किया। रामायण से रामकथा के आश्रय से महाकविकालिदास ने रघुवंश महाकाव्य की रचना की। संस्कृत साहित्य जगत में रघुवंश महाकाव्य अत्यधिक जनप्रिय रचना है।

कुमारसंभवम् महाकाव्य

कुमारसंभव दूसरा महाकाव्य है। शिव-पार्वती के प्रेम वर्णन के साथ देवसेनापति कुमारस्कन्ध के जन्मवर्णन से युक्त यह अद्वितीय महाकाव्य है। इसमें 17 सर्ग हैं। परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें पूर्व में 22 सर्ग रहे होंगे। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के वरदान से तारकासुर अत्यधिक बलवान होकर सम्पूर्ण देवों को पीडित करने लगा। इस कारण से ब्रह्मा की सूचना के अनुसार देवों ने शिव-पार्वती का विवाह करवाया। उनके पुत्र कुमार द्वारा तारकासुर मारा गया। यह कथा कवि द्वारा सुमधुर शैली में वर्णित है।

रामायण के नीचे लिखे पद्य को पढ़कर ही कालिदास ने अपने काव्य का नामकरण किया ऐसा कुछ विद्वानों का तर्क है।

एष ते राम गंगायाः विस्तारोऽभिहितो मया।
कुमारसंभवश्चैव धन्यःपुण्यस्तथैव च। बालकाण्ड 7/32

काव्य के आरम्भ में कवि ने नगाधिराज हिमालय पृथिवी के मानदण्ड के समान स्थित है इस प्रकार का मनोहर रुप से वर्णन किया। इस काव्य में रतिविलास, वसन्तवर्णन एवं पार्वती की तपस्या का अपूर्व वर्णन है। यह काव्य कवि की प्रतिमा की पराकाण्ठा है। काव्य की भाषा, काव्य चारुत्व उन्नत संस्कृति का परिसर सुन्दर उपमान निदर्शना आदि काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

कुमारसंभव काव्य में तपस्या में तत्पर हिमनगसुता पार्वती ने ब्रह्मचारी वेशधारी शिव के सम्भाषण को सुनकर वहां से जाने के लिए इच्छा की, तब अनल्पकल्पनामूर्ति कवि कालिदास ने सर्वथा नवीन और मर्मस्पर्शी उपमा प्रस्तुत की। यथा

शिलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।
मार्गाचलव्यतिकराऽऽकुलितेव सिन्धुः॥

यहां मार्गाचलव्यतिकर से आकुलिता नदी के समान शिलाधि तनया पार्वती से की है। पार्वती की उचित शारीरिक एवं मानसिक स्थिति इस पद्यांश से सम्यक् परिलक्षित होती है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक ने तो कालिदास के नाम को संस्कृत जगत में सबसे ऊपर स्थापित किया है। संस्कृत साहित्य में शाकुन्तल के समान नाटक नहीं है। प्रायः भारतवर्ष में सभी भाषाओं में इस नाटक का अनुवाद हुआ। सभी जगह इस नाटक का प्रदर्शन होता है। लोक श्रुति भी है कि ''नाटकेषु रम्यं शाकुन्तलम्''। शाकुन्तल नाटक में सात अंक है और भी शाकुन्तल के चतुर्थ अंक को एकान्त एवं मनोज्ञरुप से पठन किया जाये तो ज्ञात होता है कि तात्कालिक सामाजिक गौरव कितना था।

विक्रमोर्वशीयम्

इस नाटक में उर्वशी एवं पुरुरवा की प्रेमकथा वर्णित है। संस्कृतसाहित्य में यह कथा अति प्राचीन और जनप्रिय थी। ऋग्वेद के संवाद सूक्त में यह घटना प्राप्त होती है। इस घटना को आधार करके ही यह नाटक रचा गया। अभिशाप के कारण उर्वशी स्वर्ग से मृत्यु लोक आयी। मृत्यु लोक में आगमन से राजा पुरुरवा के साथ उसका मेल हुआ। उसके बाद दोनों का प्रणय आरम्भ हुआ। परन्तु अभिशाप के अन्त में उर्वशी पुरुरवा को त्यागकर स्वर्ग चली गई। विरह के कारण पुरुरवा उन्मत्त पागल सा हो गया। इन्द्र ने दोनों के प्रेम को देखकर उर्वशी को फिर पुरुरवा के साथ रहने की अनुमति दे दी।

मालविकाग्निमित्रम्

पाँच अंकों वाला यह नाटक विदिशा नरेश अग्निमित्र और मालविका की प्रेमकथा को आधार बनाकर लिखा गया था। यह नाटक अतीव रोमांचक है।

2.1.4 कालिदास की भाषाशैली

रस सिद्ध इस कवीश्वर की महिमा उसके काव्यों से ही ज्ञात होती है। कालिदास के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उनका वेदशास्त्र एवं पुराणों में अगाध पाण्डित्य था, ऐसा कल्पना चातुर्य, पदों का माधुर्य, पात्र संविधान निपुणता, रसोल्लास, ललित मनोहारी वचन आदि सभी गुणों से इस कवि के काव्य सर्वजन आदरणीय है। सुधिजनों द्वारा पुरस्कृत कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि है। सरस अन्तकरण सहृदयों द्वारा इनकी रचना चर्तुवर्ग पुरुषार्थो की प्रधान साधनस्वरुप स्वीकृत की गई। ये महाकवि वैदर्भी रीति के सम्राट, प्रसाद गुण परिपूर्ण, उपमा प्रयोग के गुरु, प्रकृति चित्रण के चित्रकार व्यंजना प्रयोग शैली, नवीन कल्पना में कुशल अद्वितीय काव्य शिल्पी के रुप में सुशोभित हैं। कवियों में सूर्य के समान कालिदास विराजमान है। कालिदास की भाषा दोष रहित सरल है। बिना प्रयास साहित्य की सरल भाषा से तत्वों का उपदेश देते हैं। इसी कारण से कालिदास के काव्य अतीव लोकप्रियता को प्राप्त हुए। कालिदास की रचना न केवल विद्वानों को अपितु बालकों को भी रुचिकर लगती है। जैसा कि रघुवंशम् में दिखाई देता है।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघविपर्ययः।
गुणागुणान्बन्धित्वात् तस्य सप्रसवाइवः॥

कालिदास की काव्यमाधुरी प्रसिद्ध है। समालोचकों की सम्मति में कलापक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष का चमत्कारी उपन्यास कालिदास के काव्यों में संभव हुआ है। वे श्रेष्ठ कवि हैं। अनुकूल हृदय पक्ष का चमत्कारी चित्रण कालिदास के काव्यों में सर्वत्र देखने को मिलता है। मानव जीवन के सर्वांग सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने के लिए इन्होंने रघुवंश की रचना की। प्रेम के श्रेष्ठ प्रकर्ष को प्रकाशित करने के लिए कुमार संभव का निर्माण किया।

अलंकारी योजना

''उपमा कालिदासस्य'' यद्यपि यह उक्ति संस्कृत जगत में सर्वत्र प्रचलित है। कालिदास ना केवल उपमा के प्रयोग में शूरवीर थे अपितु सभी अलंकारो का प्रयोग कालिदास ने किया है। उपमालंकार का प्रयोग बार-बार देखने को मिलता है। जैसा प्रयोग कालिदास ने किया वैसा अन्य कोई करने में समर्थ नहीं है।

पाठगत प्रश्न-2.1

1. कालिदास के कितने काव्य हैं?
2. कालिदास का समय क्या है?
3. कालिदास के कितने नाटक हैं?
4. कालिदास किस अलंकार के वर्णन में शूरवीर थे?
5. रघुवंश में कितने सर्ग हैं?
6. रघुवंश में किन राजाओं का वर्णन हैं?
7. कुमारसंभव में कितने सर्ग हैं?
8. कुमारसंभव में कुमार कौन हैं?
9. कुमारसंभव के नायक कौन हैं?
10. कालिदास के देश कहाँ-कहाँ हैं?

2.2 अश्वघोष

अश्वघोष संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध महाकवि है। साकेत नगर इनका जन्म स्थान है। साकेत नगर वर्तमान का अयोध्या नगर है। ये आर्यसुवर्णाक्षी के पुत्र थे। विद्वानों ने इनका समय ईसवीं प्रथम शताब्दी स्वीकार किया है। ये सम्राट कनिष्क के समकालीन थे। अश्वघोष कनिष्क के राजा के गुरु थे। जन्म से ब्राह्मण वेदशास्त्रों में निष्णात प्रतिवादि भयंकर महापण्डित थे। कुछ समय पश्चात् अश्वघोष बुद्ध के उपदेशों से आकृष्ट हुए और महायान शाखा में आसक्ति रखने वाले बुद्धसंघ के अध्यक्ष वसुमित्र से बौद्धदीक्षा प्राप्त करके बौद्धमत को स्वीकार किया। ये संगीत में पारंगत थे। इनके गायन के समय में अश्व भी गानमुग्ध होकर तृण आदि का सेवन नहीं करते थे। इसी कारण इनका नाम 'अश्वघोष' पड़ा।

अश्वघोष सुवर्णाक्षीपुत्र पार्श्व के शिष्य कहे जाते हैं। वे मगधराज आश्रित थे। उत्तरभारत के शासक कनिष्क ने मगधराज को आक्रमण से झुकाकर राज्य के बदले में दो वस्तुओं को देने का आदेश दिया। 1. बुद्ध के पात्र, 2. अश्वघोष। राजा मगधों के पात्र को देने के लिये तैयार

था किन्तु अश्वघोष नहीं देना चाहता था। मन्त्रिगण उसको देखकर चिन्ताग्रस्त हो गये। राजा ने मन्त्रियों को समझाने के लिए एक उपाय किया। वह अपनी घुड़साल में स्थित अश्वों के लिए एक दिन ग्रासदान का सेवन कराया। दिनान्तरे सभी घोड़ों के सामने ग्रास देकर अश्वघोष को अपना संगीत बजाने के लिए कहा। तब वे अश्वघोष के संगीत को सुनने के लिए इच्छित थे ग्रास खाने के लिए नहीं। तब कवि अश्वघोष के मूल्य को जाना। इसलिए ही उनका नाम अश्वघोष हुआ। इनका वास्तविक नाम लुप्त हो गया। अश्वघोष कनिष्ठ के साथ काश्मीर चले गये। वे उनको बहुत अधिक आदर देते थे। कनिष्क के समकालीन होने से अश्वघोष का समय ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी निर्णित होता है। अश्वघोष के काव्य का चीनी भाषा में 248-417 ई0 अनुवाद किया गया। इत्सिंग नाम के चीनी यात्री ने महा उपदेशक अश्वघोष को नागार्जुन से पूर्ववर्ती कहा था। अश्वघोष साकेत निवासी थे।

2.2.1 काल

अश्वघोष कालिदास कवि के पूर्व कवि है। यह सुना जाता है कि शताब्दी प्रथम शतक के राजा कनिष्क के समकालीन थे। अत: कनिष्क का काल ही अश्वघोष का काल माना जाता है। अत: अश्वघोष का काल ई0पू0 प्रथम शतक है।

2.2.2 देश

अश्वघोष महाराजा कनिष्क के सभापति थे। उनका देश मगध था और अश्वघोष का जन्म स्थान साकेत था।

2.2.3 कृतियाँ

महाकवि अश्वघोष दार्शनिक पण्डित और धर्म प्रवक्ता के रुप में प्रसिद्ध थे विभिन्न शास्त्रों में उनका पाण्डित्य था। यहाँ कवि अश्वघोष ने बुद्धचरितम्, सौन्दरनन्दम्, शारिपुत्रप्रकरणम्, गाण्डीस्तोत्रगाथा, वज्रसूची और सूत्रालंकार ग्रन्थों की रचना की।

बुद्धचरितम्- बुद्धचरितम् अश्वघोष का काव्य है। इस काव्य में 17 सर्ग उपलब्ध होते हैं। चीनी प्रो0 तककुसुमहाशय के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उस ग्रन्थ में तीन हजार श्लोक थे। किन्तु आज इस काव्य में केवल 1368 श्लोक प्राप्त होते हैं। सातवीं या आठवीं शताब्दी में इसके चीनी भाषा में अनुवादित बुद्धचरित में 28 सर्ग है। इससे प्रतीत होता है कि संस्कृत भाषा में बुद्धचरित का भाग मात्र ही प्राप्त होता है। राजा शुद्धोधन कपिलवस्तु नाम के नगर में राज्य करते थे। उनका पुत्र सिद्धार्थ युवराज था। समृद्ध राज्यवान प्रवृद्ध अधिकारवान्, सौन्दर्यवती और प्रिय पत्नी यशोधरा के साथ स्वर्गसमान सुखमय जीवन जीने वाले सिद्धार्थ को कैसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, इस कथा को बुद्धचरित में वर्णित किया गया है। इसमें महात्मा बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन की कथा निबद्ध है जैसे कि अभिनिष्क्रमण, तपोवन गमन, यशोधरा विलाप, मगध यात्रा वर्णन, सिद्धार्थ को बुद्धत्व की प्राप्ति, धर्मप्रचार शिक्षाप्रसार, इत्यादि विषयों का सरल व

भावपरिपूर्ण भाषा से वर्णित है। काव्य में बौद्धमत के पारिभाषित शब्दों की बहुलता विद्यमान है। बुद्धचरित से बोध होता है कि अश्वघोष बौद्धमत के महायान परम्परा के प्रवर्तक हैं।

कविता हृदयगत भावना की उद्बोधक होती है। कविता मानव हृदय को उत्तेजित व आकर्षित करती है। अत: प्राचीन काल से ही मानव धर्म एवं अपने उद्देश्य के प्रचार के लिए कविता का आश्रय ग्रहण किया जाता है। महाकवि अश्वघोष ने भी बौद्धधर्म के प्रचार के लिए काव्य की रचना की। सौन्दरनन्द के अन्त में कवि ने स्वयं कहा कि जैसे तिक्त औषधि को पीने के लिए मधु का मेल किया जाता है। वैसे ही मैंने धर्मप्रचार के लिए काव्य का आश्रय ग्रहण किया है।

अतएव अश्वघोष के काव्य बौद्धधर्म के दार्शनिक विचारों की प्रचारिका है। अश्वघोष प्रकाण्ड विद्वान थे इस में कोई संशय नहीं है। ये कवि बौद्ध दर्शन व बौद्ध सिद्धान्तों के आचार्य थे। इनके प्रामाणिक ग्रन्थ बुद्धचरितम्, सौन्दरनन्द और शारिपुत्रप्रकरण है। अन्य ग्रन्थ अन्त: और बाह्य प्रमाणों से इनके द्वारा रचित प्रतीत नहीं होते। काव्य में कुछ अंश सरस, काव्यकला की दृष्टि से उत्तम हैं। शेष नीरस ही हैं।

सौन्दर नन्द

इस काव्य में 18 सर्ग है। इसमें इक्ष्वाकु वंश के राजा नन्द की धर्मपत्नी सुन्दरी के साथ प्रणय कथा वर्णित है। इसमें जब सुन्दरी के विरह में नन्द मरणासन्न हो जाता है, तब गौतम बुद्ध ने उस नन्द को उपदेश दिया वह उपदेश बहुत तात्पर्यपूर्ण था। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से तो सौन्दरनन्द बुद्धचरित से श्रेष्ठ है। यहां कवि ने सम्पूर्ण कलाकौशल एवं काव्यवैभव को प्रदर्शित किया।

शारिपुत्र प्रकरण

शारिपुत्र प्रकरण को अश्वघोष का प्राचीन नाटक कहा जाता है। परन्तु इस विषय में मतभेद है। अधिकांश के मत में शारिपुत्रप्रकरण अश्वघोष की कृति नहीं है परन्तु रचना शैली की दृष्टि से कुछ लोग इसे अश्वघोष का मानते हैं। इस नाटक में 9 अंक है। इस का नायक धीरोदत्त स्वभाव का है।

सूत्रालंकार

बौद्धदर्शन शिक्षण पर आधारित इस ग्रन्थ का केवल तिब्बती भाषा में अनुवाद है। मूल स्वरुप में उपलब्ध नहीं है। इसमें नैतिक विचार को उन्नयन करने वाली कुछ कथाऐं संग्रहीत है।

वज्रसूची

यह ग्रन्थ बौद्धधर्म के आख्यानों पर आधरित है। इस में वर्ण व्यवस्था पद्धति को दिखाया गया है। कुछ लोग इस काव्य को धर्मकीर्ति का कहते है, न कि अश्वघोष का।

टिप्पणी

महायानश्रद्धोत्पादकशास्त्रम्-

इस शास्त्र में शून्यवाद का विवेचन है। इसका भी मौलिक रूप उपलब्ध नहीं होता, चीनी भाषा में इसका अनुवाद है।

2.2.4 अश्वघोष का पाण्डित्य

अश्वघोष का साहित्यिक पाण्डित्य व बौद्धदर्शन का ज्ञान अतीव गम्भीर था। वे दार्शनिक तथ्यों को सरल सरस शैली में उपस्थापित करते हैं। अश्वघोष शुरु में ब्राह्मण थे। अत: ब्राह्मण साहित्य का भी प्रगाढ़ ज्ञान था और नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और व्याकरण शास्त्र के विषय में भी सम्यक् ज्ञान था। ये योगाचार मत के संस्थापक थे।

पाठगतप्रश्न-2.2

11. अश्वघोष किस राजा के पास थे?
12. अश्वघोष के कितने काव्य हैं?
13. अश्वघोष रचित नाटक कौन सा है?
14. अश्वघोष का काल क्या है?
15. बुद्धचरित में कितने सर्ग हैं?
16. बुद्धचरित में नायक कौन है?
17. बुद्ध के पिता कौन थे?
18. सौन्दरनन्द काव्य किसकी कृति है?
19. सौन्दरनन्द में कितने सर्ग हैं?
20. वज्रसूची किसकी कृति है?
21. शारिपुत्रप्रकरण किसकी रचना है?

2.3 भारवि

2.3.1 भूमिका

भारवि शैवमतावलम्बी, प्रकाण्ड पण्डित, राजनीतिज्ञ, वीररस वर्णन कुशल, अलंकृत शैली के प्रवर्तक थे। भारवि के द्वारा अपने परिवार, निवास स्थान, पिता, पितामह, अथवा गुरु के विषय

में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया। भारवि दण्डि विरचित अवन्तिसुन्दरीकथा के अनुसार कुशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे। वे आनंदपुर में निवास करते थे। उसके बाद उन्होंने वरार प्रान्त के अचनपुर एलिपुर में आकर निवास किया। इस वंश में नारायण स्वामी हुए। इनके पुत्र दामोदर थे। ये दामोदर ही भारवि के नाम से प्रख्यात हो गये। वहां भारवि के विषय में यह श्लोक प्राप्त होता है-

स मेधवी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवां गिराम्।
अनुरुधयाकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने॥

इस प्रकार भारवि दण्डि के प्रपितामह थे। उनका स्थितिकाल 600 ई0 के समीप माना जाता है। इनका ''किरातार्जुनीयम्'' नामक एक ही महाकाव्य प्राप्त होता है जो बृहत्रयी में प्रथम स्थान पर परिगणित है। संस्कृत विद्वत्समाज में 'भारवेरर्थगौरवम्', 'नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवे:' ''स्पुटता न पदैरपाकृतां'' इस प्रकार के आख्यान सुप्रसिद्ध हैं। महाकवि भारवि कृत किरातार्जुनीय महाकाव्य में वर्णित भौगोलिक वर्णन के अनुसार उनके देशकाल के विषय में ज्ञान करना चाहिए।

2.3.2 देश एवं काल

भारवि के देश काल के विषय में विविध मत नीचे उपस्थित हैं।

प्रथम- दक्षिण भारत में होलग्राम में 634 ई0 में जैन कवि रवि कीर्ति द्वारा लिखित शिलालेख में ''स विजयतां रविकीर्ति: कविताश्रित कालिदास भारविकीर्ति:'' इस उल्लेखित पंक्ति से ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारवि सुविख्यात कवि थे।

द्वितीय- काव्य कला के उत्तरोत्तर प्रभाव की दृष्टि से कालिदास भारवि के पूर्ववर्ती तथा महाकवि माघ उत्तरवर्ती थे। माघ का काल 700 ई- माना जाता है। अत: भारवि का स्थिति काल 6 वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध होना चाहिए।

तृतीय-काशिका में भारवि का (किरात 3/14) यह उदाहरण प्राप्त होता है। अत: भारवि का समय वामनजयादित्य (7 वीं शताब्दी पूर्व) के बाद 6वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध होना चाहिए।

चतुर्थ-अवन्तिसुन्दरीकथा के अनुसार दण्डी के पितामह दामोदर एवं भारवि विष्णुवर्धन के (615ई.) सभापण्डित थे। अत: उनका काल 6 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना चाहिए। निष्कर्ष रूप से प्रतीत होता है कि भारवि का स्थितिकाल 6 वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध सप्तम शताब्दी पूर्व (550-600ई.) होना चाहिए।

2.3.3 कृति-किरातार्जुनीयम् -

महाकवि भारवि ने महाभारत कथा का आश्रय लेकर अलंकृत कलापक्ष प्रधान शैली से 18 सर्गो वाले वीररस प्रधान किरातार्जुनीय महाकाव्य की रचना की। अर्थगाम्भीर्य से युक्त किरातार्जुनीय बृहत्रयी में प्रथम परिगणित है। इस ग्रन्थ का शुभारम्भ श्री शब्द से तथा सर्गान्त लक्ष्मी शब्द

से होता है। इस में अर्जुन का किरातवेशधारी शिव के साथ युद्ध का वर्णन है। अतएव ग्रन्थ का नामकरण किरातार्जुनीयम् किया। "किराताश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ (द्वन्द्व) किरातार्जुनौ अधिकृत्य कृतं काव्यं किरातार्जुनीयम्" किरातार्जुन+छ (ईय आदेश:) होकर किरातार्जुनीयम्। अर्जुन के लिए दिव्यास्त्रों की प्राप्ति ही महाकाव्य का फल है। इस ग्रन्थ का नायक अर्जुन और नायिका द्रौपदी है। अर्थगौरव, स्पष्टता, पुनरूक्तेरभाव और अलंकृतशब्द योजना इस महाकाव्य का वैशिष्ट्य है। भारवि के द्वारा एकाक्षर, द्वयक्षर वाले श्लोकों की भी रचना की। जैसे "न नोनन्नुनो नाना नानानता ननु" (किरात. 15/14)। इस ग्रन्थ में ऋतु वर्णन, हिमालय वर्णन, सन्ध्यावर्णन, चन्द्रवर्णन एवं प्रभात आदि का रोचक एवं रमणीय चित्रण विद्यमान है। इसी प्रकार 15 वें सर्ग में चित्रकाव्य का वर्णन देखने योग्य है। प्रथम सर्ग में द्रोपदी के कथन में वचन चातुर्य विद्यमान है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। किरातार्जुनीय के कथानक का मूलाधार महाभारत ही है। महाभारत के 18 वें सर्ग व वनपर्व में किरातार्जुनीय की कथा है। यहाँ किरात वेशधरी शिव है। महाभारत से संक्षिप्त कथानक लेकर भारवि ने अपनी कल्पनाकाव्य प्रतिभा से कथानक में मौलिकता उत्पन्न की। महाभारत की शैली सरल है, किन्तु किरातार्जुनीय की शैली क्लिष्ट व अलंकृत है। महाकाव्य के लक्षणानुरोध से भारवि ने ऋतु, पर्वत, नदी, वन, प्रात:, सन्ध्या आदि का भी सुन्दर वर्णन किया है। 'भारवेरर्थगौरवम्' इस उक्ति के अनुसार किरातार्जुनीय का अर्थगौरव अतीव प्रसिद्ध है।

पाठगत प्रश्न-2.3

22. भारवि का देश कौन सा है?
23. भारवि के काव्य का नाम क्या है?
24. भारवि का काल क्या है?
25. किरात कौन थे?
26. किरातार्जुनीय में कितने सर्ग हैं?

पाठसार

इस पाठ में कालिदास, अश्वघोष और भारवि के देश काल एवं कृतियाँ का वर्णन है। कालिदास का गौरव भी वर्णित है। कवियों के देशकाल के विषय में मतभेद भी प्रदर्शित किये हैं। कवियों के पाण्डित्य, भाषा शैली के विषय में भी वर्णन किया है। इससे ज्ञात हुआ कि कालिदास का देश उज्जयिनी है। अश्वघोष का देश कनिष्क की राजधानी था। अश्वघोष का समय ई-पू-प्रथम शताब्दी है। अश्वघोष के विवाद रहित दो काव्य है। बुद्धचरितम एवं सौन्दरनन्द। भारवि का काल 6वीं व 7वीं शताब्दी है। भारवि दक्षिण भारत के थे यह ज्ञात होता है। भारवि का एक ही महाकाव्य किरातार्जुनीयम् है।।

आपने क्या सीखा

- कवियों के देशकालादि के विषय में जानकारी।
- कवियों के ग्रन्थों को जाना।
- प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों के बारे में जाना।
- काव्य शैलली तथा काव्य के महत्त्व को जाना।

पाठान्तप्रश्न

1. कालिदास की कृतियों का परिचय दीजिए।
2. कालिदास की भाषा शैली को लिखिए।
3. किरातार्जुनीयम् के आधार पर निबन्ध लिखिए।
4. अश्वघोष के देशकाल के विषय में टिप्पणी कीजिए।
5. अश्वघोष की कृतियों के बारे में परिचय दीजिए।
6. भारवि के देशकाल के विषय में लघु निबन्ध लिखिए।
7. भारवि का पाण्डित्य प्रस्तुत कीजिए।
8. कालिदास की भाषा शैली के विषय में निबन्ध लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. कालिदास के दो काव्य हैं।
2. कालिदास का काल ई.पू. प्रथम द्वितीय शताब्दी है।
3. कालिदास के तीन नाटक है।
4. कालिदास उपमा अलंकार के प्रयोग में शूरवीर थे।
5. रघुवंश में 19 सर्ग हैं।
6. रघुवंश में सूर्यवंशीय राजाओं का वर्णन है
7. कुमारसंभव में 17 सर्ग हैं।
8. कुमारसंभव में कुमार कार्तिक है।

टिप्पणी

9. कुमारसंभव में नायक कार्तिक है।
10. कालिदास का देश उज्जयिनी है।

2.2

11. अश्वघोष सम्राट कनिष्क के सभा में थे।
12. अश्वघोष के दो काव्य हैं।
13. अश्वघोष का एक नाटक शारिपुत्रप्रकरण है।
14. अश्वघोष का काल ई- प्रथम शतक है।
15. बौद्धचरित में 17 सर्ग हैं।
16. बुद्धचरित का नायक गौतम बुद्ध है।
17. बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोधन है।
18. सौन्दरनन्द अश्वघोष की कृति है।
19. सौन्दरनन्द में 18 सर्ग हैं।
20. वज्रसूची अश्वघोष की कृति है।
21. शारिपुत्रप्रकरण अश्वघोष की रचना है।

2.3

22. भारवि का देश कांचीपुरम् है।
23. भारवि का काव्य किरातार्जुनीयम् है।
24. भारवि का काल छठी शताब्दी था।
25. किरात भगवान शिव हैं।
26. किरातार्जुनीयम् में 18 सर्ग हैं।

3

कवि परिचय-3

संस्कृत साहित्य में अनेक कवि हैं जिसकी कृतियाँ सुशोभित हो रही हैं। उनकी जो कृतियां हैं वे पुस्तक रुप में हमारे सामने आती हैं। किन्तु उन कवियों के विषय में हमारा ज्ञान नहीं होता है। अत: उन कवियों के देश और काल का ज्ञान अनिवार्य है। क्योंकि कवियों के काव्य प्राय: देश और काल से प्रभावित होते हैं। इस प्रकरण में माघ, श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, कल्हण और भट्टिस्वामी के विषय में आलोचनात्मक अध्ययन है। उनके चरित, काव्य के विशिष्ट गुण, रीति इत्यादि विषय यहां सम्यक् रुप से संग्रहित हैं। इस परिच्छेद में उनको हम ध्यान से पढ़ते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- माघ, श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, कल्हण, और भट्टिस्वामी आदि इन कवियों के देश काल और कृतियों को जान पाने में;
- उनकी काव्य रचना शैली को समझ पाने में;
- शिशुपालवध काव्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर पाने में और;
- 'माघे सन्ति त्रयो गुणा:' इस उक्ति का तात्पर्य समझ पाने में।

3.1 माघ

3.1.1 सामान्य परिचय

माघ कवि ने अपनी कृति शिशुपालवध काव्य के अन्त में स्वयं का परिचय दिया है। उस से ज्ञात होता है कि दत्तक नाम के माघ के पिता थे। उनके पितामह सुप्रभदेव ने वर्मलात नामक राजा के अमात्य पद को अलंकृत किया।

3.1.2 माघ का देश

मीनमल्लपुर नामक एक नगर था वह विद्या की पीठ के रुप में प्रसिद्ध था। यह एक राजधानी भी थी। माघ का जन्म प्रसिद्ध मीनमल्ल नामक नगर में हुआ था। मेरुतुंगाचार्य के मत में श्रीमालनगर माघ का निवास स्थल था। इस समय गुर्जर प्रदेश में भिन्नमाल नामक ग्राम है वह ही कवि का स्थल था ऐसा अनेक विद्वान मानते हैं। भोजप्रबन्ध में इन्हे गुर्जर निवासी वर्णित किया गया है।

3.1.3 माघ का समय

वामनकृत काव्यालंकार ग्रन्थ, आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक, और मुकुलभट्ट रचित अभिधावृतिमातृका आदि ग्रन्थों में माघ के पद्यों को उद्धरण के रुप प्रस्तुत किया है। अतः माघ इन कवियों से पूर्व कालिक सिद्ध होते हैं। महान् विद्वानों के महान् अनुशीलन से ज्ञात हुआ कि माघ का समय सातवीं शताब्दी के अन्त से आठवी शताब्दी पर्यन्त है।

3.1.4 माघ की रचनाएं

माघ का शिशुपालवध नामक एक काव्य प्राप्त होता है। इस काव्य में 20 सर्ग हैं। 1625 श्लोक हैं। इसमें युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध किया जाता है। महाभारत में कही गयी यह कथा, वर्णन के महत्त्व से चमत्कारी हुई। इसमें नायक श्रीकृष्ण और प्रतिनायक शिशुपाल है।

पाठगतप्रश्न-3.1

1. माघ के पिता कौन थे?
2. माघ के पितामह कौन थे?
3. माघ के पितामह किस राजा की सभा में थे?

4. माघ का जन्म किस नगर में हुआ?

5. माघ का निवास स्थल क्या था?

6. आनन्दवर्धन के ग्रन्थ नाम क्या है?

7. वामनकृत ग्रन्थ नाम क्या है?

8. माघ आनन्दवर्धन के पूर्वकालिक कैसे हुए?

9. माघ का समय क्या है?

10. माघ की रचना कौन सी है?

11. शिशुपालवध का मुख्य विषय क्या है?

12. शिशुपालवध काव्य का उपजीव्य ग्रन्थ कौन है?

13. शिशुपालवध का नायक कौन है?

14. शिशुपालवध का प्रतिनायक कौन है?

3.2 शिशुपालवध काव्य

इसमें महाभारत की अपेक्षा महाकाव्य उपयोगी अनेक विषय वर्णित हैं। तृतीय सर्ग से तेरह सर्ग तक भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य, जलक्रीडा, रैवतक पर्वत, सन्ध्या प्रात: प्रकृति आदि के वर्णन के बाद महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के आगमन का वर्णन है।

महाकवि माघ द्वारा प्रणीत शिशुपालवध महाकाव्य 20 सर्गो में पूर्ण हुआ। उसका ऐतिहासिक वृत्त अधोलिखित है-

पाण्डवों ने वनवास की अवधि पूर्ण करके इन्द्रप्रस्थ नगरी को अधिकृत किया। भगवत श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन, भीम, नकुल व सहदेव के पराक्रम से धर्मराज युधिष्ठिर ने समग्र जम्बूद्वीप को जीतकर विपुल धन सम्पत्ति को एकत्र किया। इस प्रकार अतुल साम्राज्य और विपुल वैभव को प्राप्त करके युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ को करने की इच्छा की। प्राय: समग्र जम्बूद्वीप (एशिया) को, भगवान श्रीकृष्ण को, अनुयायियों और विरोधियों को राजसूय यज्ञ में आमंत्रित किया। इस यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण सर्वकर्मद्रष्टा थे। सभी राजाओं ने अपनी योग्यतानुसार यज्ञ के कार्यो में भाग ग्रहण किया। यह ऐतिहासिक यज्ञ था। अतीव महान सुन्दरता से यज्ञ सम्पन्न हुआ। याज्ञिक ब्राह्मण का दान दक्षिणा से सत्कार किया।

इनके बाद सदस्य पूजा का अवसर उपस्थित हुआ। शास्त्रों के अनुसार यज्ञ की समाप्ति पर गुणवानों को अर्घ्य प्रदान करने का नियम है। किसको कितनी प्रतिष्ठा देनी चाहिए इस विषय में युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा। शास्त्रों के अनुसार षड्गवेद, वेद अध्ययन, अध्यापन रत, ब्राह्मण, स्नातक, गुरु, बन्धु, जामाता, राजा और ऋत्विक याज्ञिक ये छ: सदस्य पूजा के योग्य होते है। यदि कोई सर्वगुणसम्पन्न हो तो वह भी पूजा के योग्य होता है। भीष्म ने इस

प्रतिष्ठा के लिए भगवान श्रीकृष्ण ही महान हैं ऐसी उद्घोषणा की। युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण की ही पूजा करें।

शिशुपाल भगवान श्रीकृष्ण के इस सम्मान को देखने के लिए सहमत नहीं थे। वह क्रोध से आविष्ट होकर नेत्रों को लाल करता हुआ उच्च आह भरने लगा। धर्मराज युधिष्ठिर की निन्दा करके भगवान श्रीकृष्ण के ऊपर अनेक प्रकार के आक्षेप करने को प्रवृत हुआ। भगवान श्रीकृष्ण मौन को धारण करते हुए मन में शिशुपाल के अपराधों की गणना कर रहे थे। भीष्म शिशुपाल की इस धृष्टता को सहन करने में असमर्थ हो गये और उसके मुख से भगवान श्रीकृष्ण की निन्दा को सुनकर वे क्षुब्ध हो गये। उन्होंने कहा ''अब मैं कहता हूँ जिसको भगवान श्रीकृष्ण की पूजा अच्छी नहीं लग रही वह धनुष को धारण करे''। भीष्म की इस उक्ति पर शिशुपाल समर्थक राजा यज्ञ मण्डल से बाहर जाने के लिए उद्यत हुए। शिशुपाल फिर कठोर वचन बोला, वह उस स्थान से निकलकर भगवान श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकार कर सेना सज्जा करना आरम्भ किया। पाण्डव और उनके पक्ष वाले राजा शान्त थे। सेना सज्जा को धारण कर के शिशुपाल ने राजसभा में अपना दूत भेजा। उस दूत ने कठोर शब्दों से श्रीकृष्ण की निन्दा की। भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सात्यकि ने आक्षेपों का उचित उत्तर दिया। फिर भी वह अनेक निन्दा रूप वाक्यों को कह रहा था। उससे श्रीकृष्ण और उनके समर्थक राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। अन्त में युद्ध शुरू हुआ। शिशुपाल की सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गई। सेना के विनष्ट होने पर वह स्वयं श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगा। युद्ध करता हुआ वह थककर कठोर वचनों को बोलने लगा। उसके बाद सौ अपराध पूर्ण होने पर उसके वध में अधिक विलम्ब को अनुचित मानकर श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल के सिर को काट दिया। उसी समय उसके शरीर से एक तेज समूह निकलकर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश कर गया। सभी इस घटना से विस्मित हो गये।

पाठगतप्रश्न-3.2

15. महाराज युधिष्ठिर ने कौन सा यज्ञ सम्पादित किया?
16. शिशुपालवध काव्य में कितने सर्ग है?
17. पाण्डवों ने वनवास की अवधि को पूर्ण करके किस नगर में निवास किया?
18. राजसूययज्ञ में किनको बुलाया?
19. इस यज्ञ में कौन सर्वकर्मद्रष्टा था?
20. शास्त्रानुसार यज्ञ समाप्ति पर किसे अर्घ्य प्रदान करने का नियम है?
21. शास्त्रानुसार कौन पूजा के योग्य होते है?
22. श्रीकृष्ण ही महान है यह घोषणा किसने की?
23. शिशुपाल ने किसकी निन्दा की?

24. ''अब मैं कहता हूँ भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा जिसको अच्छी नहीं लगती है वह धनुष को धारण करें'' यह उक्ति किसने कही?
25. शिशुपाल द्वारा भेजे गये दूत ने कैसे श्रीकृष्ण की निन्दा की?
26. सात्यकि ने क्या किया?
27. कब श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का सिर काटा?
28. श्रीकृष्ण ने किस अस्त्र से शिशुपाल का सिर काटा?
29. शिशुपाल के शरीर से तेज समूह निकल कर कहां प्रवेश कर गया?
30. शिशुपाल के सिर काटने के बाद किस घटना से सभी विस्मित हुए?

3.3 महाकाव्य के गुण

माघ बहुशास्त्रविद् कवि थे। उसके काव्य में वेद, पुराण, दर्शन, अलंकार, संगीत, समरशास्त्र, छन्द और ज्योतिष इन सभी शास्त्रों का स्पर्श विद्यमान है। चमत्कार पूर्ण श्रमसाध्य इस काव्य में कवि की शक्तिमत्ता स्फुटित हुई। व्याकरण के अनेक नियमों के प्रयोग यहां प्राय: देखे जाते हैं। इस काव्य में स्पष्टता, मधुरता और उर्जस्वलता सभी जगह प्रकट होती हैं। नीचे स्थित पद्य को पढ़कर जान सकते हैं कि चमत्कृति कैसे इस काव्य में प्रकाशित हुई।

क्रूरारिकारी कोरेक कारकः कारिकाकारः।
कोरकाकारकरकः करीरः कर्करोहर्करुक्॥

कृष्ण अजेय शत्रुओं का विनाशक, जगदधिपति, दुष्टों का पीड़क, पदममुकुल के समान जिसके चरण हैं, उसके शरीर बल से हाथी भी पराजित होते हैं, शत्रुओं के सामने भयंकर है।

कुछ लोग कहते हैं कि काव्य गौरव में निष्णात भारवि विरचित किरातार्जुनीय को समझने के लिए ही शिशुपालवध काव्य की रचना करने के लिए कवि उद्यत हुए। इस काव्य में पर्वतों, ऋतुओं, वनविहार, जलक्रीडा, सन्ध्या और प्रभात का मनोहारी वर्णन है। अलंकार प्रयोग में निपुण इस कवि ने अस्ताचलगमन उन्मुख सूर्य का तथा उदयाचल आरुढ़ चन्द्रमा का वर्णन हाथी के कान से बन्धे घण्टों के साथ करने के कारण ''घण्टामाघ'' के रुप में प्रसिद्ध हो गये। जैसे-

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जाहिमरूचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा द्वयपरिवारितवारणेन्द्र लीलाम्॥

श्रीकृष्ण के सारथी दारुक ने कहा- रज्जु के समान किरण फैलते हुए सूर्य के उदय को तथा अस्ताचल को जाते समय चन्द्रमा का एक समय रैवतक पर्वत कानों से बन्धे घण्टों वाले हाथी के समान सुशोभित हो रहे हैं।

उन्नीसवे सर्ग में कवि ने शब्दालंकार के प्रयोग में महती कुशलता का प्रदर्शन किया। वहां चित्रबंध काव्य का एक सुन्दर प्रयोग दिखाई देता है। कहीं पर एक वर्ण से और कहीं दो वर्णो से श्लोक की रचना की।

दाददो दद्ददुददादी दाददो दूददीदरोः।
दुददादं दददे दुद्दे ददाददददोखददः।।19/114

राजराजी रुरोजाजेरजिरेखजोखजरोखरजाः।
रेजारिजूरजोर्जार्जी रराजर्जुरजर्जरः।।19/102

कवि ने कहा शब्द और अर्थ का सार्थक समन्वय ही कवि की सृष्टि का प्रमाण होता है।

पाठगतप्रश्न-3.3

31. बहुशास्त्रविद् कवि माघ है, यह कैसे ज्ञात होता है?
32. माघ के काव्य में किन शास्त्रों का स्पर्श विद्यमान है?
33. किरातार्जुनीयम् किसकी रचना है?
34. किस ग्रन्थ को समझने के लिए माघ ने शिशुपालवध काव्य की रचना की?
35. शिशुपालवधकाव्य में किन-किन वस्तुओं का वर्णन दिखाई देता है?
36. माघ कैसे ''घण्टामाघ'' में रूप में प्रसिद्ध हुए?
37. महाकवि के सूर्यास्तपूर्वक चन्द्रोदय वर्णन परक श्लोक लिखिए।
38. शिशुपालवधकाव्य में चित्रबध से विहित श्लोक का उदाहरण दीजिए?

3.4 श्रीहर्ष

3.4.1 सामान्य परिचय

श्रीहर्ष नैषधीयचरित तथा खण्डनखण्डखाद्य ग्रन्थों के कर्तारूप में प्रसिद्ध है। श्रीहर्ष 12वीं शताब्दी में कान्यकुब्ज नगर में हुए थे। उनके पिता का नाम श्रीहीर एवं माता मामल्लदेवी था। पिता श्रीहीर वाराणसी के राजा जयचन्द्र के सभा में थे। वहां पर मिथिला से आये हुए नैयायिक उदयनाचार्य से पराजित होकर क्षुब्ध हुए। श्रीहीर ने मरणासन्न अवस्था में अपने पुत्र श्रीहर्ष को उसकी उस मर्यादा को पुनरुद्धार करने का अनुरोध किया। श्रीहर्ष चिन्तामणिमन्त्र के जप का विधन करके देवी त्रिपुरा के अनुग्रह से महती प्रतिभा को प्राप्त करके कान्यकुब्ज राजा की सभा में पुन आये। वहीं पर ही उसके अनुग्रह से नैषधीयचरित की रचना की। वही पर ही खण्डनखण्डखाद्य काव्य से उदयनाचार्य का खण्डन किया। इस प्रधान कवि के विषय में व्यक्तव्य है कि देवभाषा साहित्य के अपकर्षक काल के अन्धकार युग में प्रादुर्भूत इस महाकवि ने उस प्रकार का आलोक दिया कि सभी दिशाएं, चाकचिक्य पूर्ण हो गयी।

3.4.2 श्रीहर्ष का देश

कान्यकुब्ज राजा की सभा में सभापण्डित था इस प्रकार श्रीहर्ष कान्यकुब्ज के निवासी हुए। ऐसा ज्ञात होता है।

3.4.3 श्रीहर्ष का समय

कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्र की सभा में थे। राजा ने 1163 ई0 से 1194 ई0 तक राज्यशासन किया। अत: इनका भी यही समय रहा है। न्यूहलार का मत है कि 1163 ई0 से 1194 ई0 के बीच में नैषधीयचरित की रचना की गई।

3.4.4 श्रीहर्ष की कृतियां

श्रीहर्ष के नौ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। उनमें से नैषधीयचरित एवं खण्डनखण्डखाद्य ही प्रसिद्ध हैं। नैषधीयचरित के अन्तिम सर्ग में श्रीहर्ष ने स्वयं अन्य कृतियों के विषय में कहा है। वे काव्य हैं -

स्थैर्यविचारप्रकरणम्- नाम से ही प्रतीत होता है कि यह दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमें क्षणभंगवाद का खण्डन किया है।

विजयप्रशस्ति- यह जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र की प्रशंसापरक काव्य है।

खण्डनखण्डखाद्यम्- यह स्वनाम ख्यात अनिवर्चनीयतासर्वस्वभूत वेदांग का ग्रन्थ है।

गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति- इसमें बंगदेश के किसी राजा की प्रशस्ति का वर्णन है।

अर्णववर्णनम्- इसमें समुद्र का वर्णन है।

छिन्दप्रशस्ति- इसमें छिन्द नाम के किसी राजा की प्रशस्ति का वर्णन है।

शिवशक्तिसिद्धि- इसमें शिव और शक्ति की सिद्धि का वर्णन किया गया है।

नवसाहसांकचरितचम्पू- राजा भोज के पिता 'नवसाहसांक' के चरित का वर्णन है।

नैषधीयचरितम्- इस काव्य में निषध राजा नल के चरित्र को प्रस्तुत किया है इस ग्रन्थ में 22 सर्ग एवं 2830 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में नल के चरित के एक पक्ष का ही वर्णन है। इसमें नल और दमयन्ती के परिणय अवधि का वृतान्त, और नल के सम्भोग का चित्रण, धर्मप्राणता का वर्णनमयी पद्धति से वर्णन किया गया है। राजा नल में दमयन्ती की आसक्ति से दमयन्ती की चिन्ता में दुखित उद्यान में भ्रमण करते हुए राजा द्वारा हंस का पकडा जाना एवं दया के कारण छोडना, हंस प्रत्युपकार भावना से नल की स्तुति दमयन्ती के सामने करता है। दमयन्ती को पूर्व अनुराग का उदय होता है। दमयन्ती के पिता विदर्भराज स्वयंवर का आयोजन करते

हैं। दमयन्ती के सौन्दर्य के कारण देवता भी वहां आते हैं। चार देवता इन्द्र, यम, वायु, और कुबेर ने नल का रूप धारण कर लिया। चार नलरूपधरी देव एवं पांचवे नल सभी की समरुपता से दमयन्ती विचित्र दशा को प्राप्त होती है। सभा के वर्णन के लिए आयी सरस्वती भी श्लेष वर्णन से दमयन्ती को विमोहित करती है। अन्त में दमयन्ती के पतिव्रत और दृढ अनुराग से देवता अपने विशिष्ट चिह्नों को प्रकट करते हैं। जिससे नल का पता चल जाता है। इस प्रकार नल और दमयन्ती के सुखपूर्वक संगम से ग्रन्थ समाप्त हो जाता है।

पाठगतप्रश्न-3.4

39. श्रीहर्ष के दो ग्रन्थों के नाम लिखिए।
40. श्रीहर्ष किस नगर में हुए?
41. श्रीहर्ष के पिता का नाम क्या है?
42. श्रीहर्ष की माता का नाम क्या है?
43. श्रीहर्ष के पिता किस राजा की सभा में थे?
44. श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर किस पण्डित से पराजित हुए?
45. श्रीहर्ष ने किस मन्त्र का जप किया?
46. श्रीहर्ष ने किस देवी की उपासना की?
47. श्रीहर्ष ने किस काव्य से उदयनाचार्य को खण्डित किया?
48. श्रीहर्ष का समय?
49. श्रीहर्ष ने कब नैषधीयचरित की रचना की?

3.5 श्रीहर्ष के काव्य का वैशिष्ट्य

नैषधीयचरित की सरस वर्णन पद्धति और शृंगार प्रकर्ष पूर्ण कथा सहृदय के हृदय को आकृष्ट करती है। जैसे श्रीहर्ष का खण्डनखण्डखाद्य काव्य अद्वितीय है वैसे ही नैषधीयचरित भी अपने क्षेत्र में अनुपम है। श्रीहर्ष जैसे दार्शनिक कवि है वैसे ही योगी भी है।

श्रीहर्ष अपने शास्त्र ज्ञान का परिचय प्रत्येक सर्ग में देते है। परन्तु 17 वें सर्ग में उन्होंने अपनी नास्तिक आस्तिक सकल दर्शन की प्रवीणता और व्याकरण में निष्णातता को प्रकट किया है। वेदान्ती श्रीहर्ष ने नैयायिक और वैशेषिको का कविता में उपहास किया–

‘‘मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गौतम तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः॥

ध्वान्तस्य वामोरु विचारणायां वैशेषिकं चारुमतं मे।
औलुकमाहु: खलु दर्शनं तत् क्षमं तमस्तत्त्व निरुपणाय॥

श्रीहर्ष की कविता में नारी रुप का वर्णन भी अतीव सजीव है। चौथे सर्ग में विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन अतीव रमणीय है। जैसे–

मयांग पृष्ट: कुलभामनी भवानमू विमुच्यैव किमन्यदुक्तवान्।
पुपासुता शान्तिमुपैति वारिजा न जातु दुग्धन्मधुनोऽधिकादपि॥

यहां काव्य में बहुत से शास्त्र सम्मत तर्कों का जहां जहां समावेशित करने का प्रयास किया वहां सहृदयों के मन को रंजित करते हैं। उत्प्रेक्षाओं के चमत्कार में नितान्त हृदयग्राही हैं। जैसे–

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रज: स्पुतप्रतापानलधूममंजिम।
तदेव गत्वा पतितं तधाति पंकीभवंकतां विधै॥

यद्यपि नैषधकाव्य को सौम सम्बद्धता के अभाव से एक शब्द का शब्दान्तर अवर्णन होने से माघ ने किरातार्जुनीय की अपेक्षा इस मर्यादा का न्यून प्रयोग किया है। फिर भी नैषधकाव्य की स्थिति रसोल्लास वर्णन में सर्वातिशय है इसलिए कहा गया है कि–

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि:॥

3.6 क्षेमेन्द्र

3.6.1 सामान्य परिचय

क्षेमेन्द्र 11 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। क्षेमेन्द्र सिन्धु के पौत्र व प्रकाशेन्द्र के पुत्र थे। क्षेमेन्द्र के पिता प्रकाशेन्द्र ब्राह्मणों के संरक्षक थे। क्षेमेन्द्र कश्मीर राज अनन्त के सभापण्डित थे। अनन्त का शासक काल 1027 ई0 से 1064 ई0 तक था।

3.6.2 क्षेमेन्द्र का देश

क्षेमेन्द्र कश्मीरवासी थे। वहीं पर ये राजा अनन्त के सभापण्डित भी थे। कश्मीर देश वरपुत्रों का देश है। ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। उस वरपुत्रों के देश कश्मीर में क्षेमेन्द्र ने जन्म प्राप्त किया।

3.6.3 क्षेमेन्द्र का समय

क्षेमेन्द्र कश्मीर राज अनन्त के सभापण्डित थे। उस अनन्त का शासन काल 1027 ई0 से 1064 ई0 तक था। अत: क्षेमेन्द्र का समय 11 वीं शताब्दी है। यह निश्चित होता है।

3.6.4 क्षेमेन्द्र की कृतियाँ

क्षेमेन्द्र की बहुत सी कृतियाँ प्राप्त होती है। शशिवंशमहाकाव्य, अमृतरंगकाव्य, अवसरसार, मुक्तावली, लावण्यवती, देशोपदेश, पवनपंचाशिका, पद्मकादम्बरी, अवदानकल्पलता, नीतिकल्पतरु, लोकप्रकाशकोश, सेव्यसेवकोपदेश, विनयवल्ली, दर्पदलनम्, कविकण्ठाभरणम्, रामायणमंजरी, भारत मंजरी, वृहत्कथामंजरी, समयमातृका और दशावतारचरितम्।

3.6.5 क्षेमेन्द्र के काव्य के गुण

क्षेमेन्द्र की अवदानकल्पलता को 150 वर्षो के भीतर ही तिब्बत भाषा में अनुवाद का अवसर प्राप्त हुआ। यह क्षेमेन्द्र की धार्मिक उदारता एवं सुन्दर काव्य शैली का प्रबल प्रमाण है।

दशावतारचरित नामक महाकाव्य क्षेमेन्द्र की अन्तिम और मधुरतम कृति है। इसमें स्वतन्त्र और महाप्रौढ महाकाव्य में विष्णु के दश अवतारों का रोचक शैली में वर्णन किया। क्षेमेन्द्र की भाषा मधुर, सरस एवं सुबोध है। जैसे-

दयितजनवियोगोद्वेगरोगातुराणां विभवविरहदैन्यम्लायमानाननानाम्।
शमयतिशितशल्यं हन्त नैराश्यनश्यद्भवपरिभवतान्तिः शान्तिरन्ते वनान्ते॥

पाठगतप्रश्न-3.5

50. क्षेमेन्द्र किस राजा के सभा पण्डित थे?

51. किस देश में क्षेमेन्द्र का जन्म हुआ?

52. क्षेमेन्द्र का समय क्या है?

53. क्षेमेन्द्र की कोई कृति का नाम बताइए?

54. क्षेमेन्द्र की मधुरतम कृति का नाम लिखों?

3.7 कल्हण

3.7.1 सामान्य परिचय

कल्हण ऐतिहासिक कवियों में अद्वितीय हैं। संस्कृत भाषा में इतिहास लेखन के लिए जितने विद्वानों ने प्रयास किया उनमें से कल्हण प्रमुख है। कल्हण ने स्वयं ही स्वयं के जीवनवृत का निर्देश किया है। कल्हण के पिता चणपक थे। चणपक तत्कालीन कश्मीर के राजा हर्षदेव के प्रधान अमात्य थे। कल्हण के चाचा कणक भी राजा हर्ष के आश्रय में थे। हर्ष शत्रु द्वारा

कपट से मारे जाने पर चणपक राजाश्रय विहीन हो गये। बाद में कल्हण ने अलकदत्त नामक किसी सत्पुरुष की छत्र छाया में आश्रय लिया। कल्हण ने रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों को सम्यक रुप से पढ़ा। साथ ही ज्योतिषशास्त्र में भी उनका पाण्डित्य था।

3.7.2 कल्हण का स्थान

कल्हण कश्मीर देश में आढ्य ब्राह्मण वंश में पैदा हुए। उनका कश्मीर वासी होने में कोई सन्देह नहीं है।

3.7.3 कल्हण का समय

राजा सुस्सल के पुत्र जयसिंह के राज में कल्हण ने राजतरंगिणी काव्य की रचना की। जयसिंह का शासनकाल 1127ई0 से 1159ई0 तक था। अतः कल्हण का समय बारहवीं ईसवी निश्चित होता है।

3.7.4 कल्हण की कृति

इस ऐतिहासिक कवि का राजतरंगिणी एकमात्र ऐतिहासिक काव्य प्राप्त होता है। सभी का कहना है कि इतिहास ग्रन्थों का निरीक्षण करके निपुणता पूर्वक राजतरङ्गिणी/राजतरंगिणी की रचना की। कल्हण ने 1148 ई0 से प्रारम्भ करके राजतरंगिणी को 1150 ई0 में समाप्त किया। इस काव्य में जितने भी अंश हैं उनमें ऐतिहासिकता उपलब्ध है।

3.7.5 राजतरंगिणी ग्रन्थ

यह विशालकाय ग्रन्थ आठ तरंगों में विभक्त है। यहां कल्हण ने प्राचीन काल से प्रारम्भ करके अपने समय तक के कश्मीर देश के शासकों का इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। इस ग्रन्थ में विक्रम संवत के प्रारम्भ से बारहवी शताब्दी के पूर्व में हुए किसी गोनन्द नाम के राजा तक का इतिहास क्रमशः वर्णित है। इस ग्रन्थ के प्रथमतरंग में राजाओं का उल्लेख कालरहित निर्देश किया है। वहां पर पौराणिक कथा एवं जनश्रुति के आधार पर इतिहास निर्मित है। उसके बाद राजाओं के इतिहास में काल का निर्देश प्राप्त होता है। सर्वप्रथम 813-814 ई0 तिथि का निर्देश किया है। इसके बाद की घटनाएं, प्रमाणिक रूप एवं वैज्ञानिक पद्धति से निबद्ध किया है आठवें तरंग की घटनाओं का साक्षात्कार करके निबद्ध किया है। अतः उनकी सत्यता में सन्देह ही नहीं है।

3.7.6 कल्हण के काव्य की विशिष्टता

सामान्यतः प्रायः सभी ऐतिहासिक कवि अपने देश की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए अपने देश

टिप्पणी

में विद्यमानगुणों का वर्णन करने में संकोच नहीं करते हैं। किन्तु कल्हण उनके समान नहीं थे। उन्होंने नितान्त निष्पक्षता से इतिहास की रचना की वे स्वयं लिखते हैं–

''श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती॥

राजतरंगिणी ग्रन्थ में तत्कालीन राजाओं के गुण व दोषों, राजसेवकों के कृतघ्नता स्वामिभक्ति आदि सभी का यथार्थ वर्णन किया है। इस काव्य में निन्दा व स्तुति दोनों निष्पक्षता से लिखे गये। इस ग्रन्थ में इतिहास के समान काव्यत्व भी विद्यमान है।

जैसे–

''राज्याच्च्युतस्य बहूशः परिवाररामा, कोशादि तस्य रिपवो व्रजतोऽपजहनुः।
उर्वीरुहोविगलितस्य नगेन्द्रश्रृंगा द्वल्लीफलादि रभसादिव गण्डशैलाः॥

पाठगन्तप्रश्न–3.6

55. कल्हण किस देश में पैदा हुए?

56. कल्हण की कृति का नाम क्या है?

57. राजतरंगिणी कैसा ग्रन्थ है?

58. राजतरंगिणी में कितने तरंग है?

59. कल्हण के पिता और चाचा का नाम लिखिए?

3.8 भट्टिस्वामी

3.8.1 सामान्य परिचय

भट्टिकाव्य के प्रणेता भट्टिस्वामी थे इनके पिता का नाम श्रीधरस्वामी था। भट्टिस्वामी के जीवन चरित के विषय में कोई भी प्रामाणिक मत नहीं है। उनके जीवन के विषय में कथा सुनी जाती है। भट्टिस्वामी के जन्म के बाद ही माता का वियोग हो गया। उनके पिता श्रीधर स्वामी भी नवजात अपने पुत्र को त्यागकर सन्यासी हो गये। वहां श्रीधरसेन नाम का कोई राजा था उसने भट्टिस्वामी का पालन–पोषण किया।

इनका व्याकरणशास्त्र में प्रगाढ़ पाण्डित्य था। इस विषय में इनका काव्य ही प्रमाण है। साथ ही अलंकारादि शास्त्रों में उनका पाण्डित्य था।

3.8.2 भट्टिस्वामी का स्थान

ये सौराष्ट्र जनपद के अन्तर्गत वलभी नगर में जन्में थे ऐसा प्रसिद्ध है।

3.8.3 भट्टिस्वामी का स्थान

भट्टिस्वामी ने अपने काव्य में लिखा है कि वे राजा श्रीधरसेन के आश्रय में थे। श्रीधरसेन नाम के चार राजा प्रसिद्ध है। वे 500-650 ई0 तक हुए थे। इनमें से किस श्रीधर के समय थे यह निश्चित नहीं है। श्रीधरसेन द्वितीय का एक शिलालेख प्राप्त होता है। वहां भट्टिनाम के विद्वान को राजाकृत भूमिदान की वार्ता मिलती है। यदि ये भट्टि भट्टिकाव्य के प्रणेता है तो भट्टि का समय 610 ई0 मान सकते हैं। अन्य भट्टि की कल्पना से भी सातवीं शताब्दी से पूर्व नहीं हो सकते। अतः भट्टिस्वामी सातवीं ईसवी शताब्दी में हुए थे, ऐसा कह सकते है।

3.8.4 भट्टिस्वामी की कृति

भट्टिस्वामी का एक मात्र काव्य भट्टि काव्य प्राप्त होता है। शास्त्रकाव्यों में भट्टि काव्य प्रसिद्धतर है। इस काव्य के निर्माण का उद्देश्य मनोविनोद के साथ व्याकरण का ज्ञान देना था। व्याकरण शास्त्र का प्रयोग इस काव्य में सम्यक्ता से देखा जाता है। भट्टिस्वामी स्वयं लिखते है। जैसे-

> **''दीपतुल्यः प्रबन्धेऽयशब्दलक्षणचक्षुषाम्।**
> **हस्तादर्श इवान्धनां भवेदव्याकरणादृते''।।**

अर्थात् व्याकरण को जानने वालों के लिए यह काव्य दीपक के समान है। किन्तु व्याकरण ज्ञान रहित जनों के लिए अन्धे के हाथ में दर्पण के समान है। इस काव्य की रचना भट्टिस्वामी ने की इसलिए इसे भट्टिकाव्य कहा जाता है। यह काव्य रावणवध नाम से भी प्रसिद्ध है।

यह काव्य वाल्मीकि के रामायण आश्रित है। इसमें रामायण की कथा वर्णित है। इसमें 12 सर्ग है।

3.8.5 भट्टिस्वामी के काव्य की विशिष्टता

इस काव्य का प्रधान वैशिष्ट्य यह है कि व्यवहार में व्याकरण के जो रूप प्राप्त होते हैं। उनके साथ अप्रचलित व्याकरण के सभी प्रयोग यहां प्राप्त होते हैं। मल्लिनाथ के अनुसार भट्टिकाव्य ही उदाहरण काव्य है। अन्य टीकाकार भी कहते हैं कि प्रयोग के द्वारा व्याकरण की शिक्षा प्रदान करने के लिए कवि ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। भट्टिकाव्य के मुख्यरूप से चार भेद है। प्रकीर्णकाण्ड, अधिकारकाण्ड, प्रसन्नकाण्ड, और तिङन्तकाण्ड। उनमें प्रारम्भ से पांचवे सर्ग तक प्रकीर्णकाण्ड है वहां व्याकरण के विविध नियम, प्रयोग द्वारा

उद्धृत किये हैं। पांचवे सर्ग से नौवें सर्ग तक अधिकारकाण्ड है। इसमें प्रत्ययों का व्यवहार, आत्मनेपद परस्मैपद विधन, णत्वविधन और णत्वविधन को प्रयोगों से प्रदर्शित किया है। दसवें सर्ग से तेरहवें सर्ग तक प्रसन्नकाण्ड है। इसमें अलंकारों का प्रयोग दिखाई देता है। अठाहरवें सर्ग से अन्तिम सर्ग तक तिङन्त काण्ड है। यहां दस लकारों का प्रयोग प्राप्त होता है। भट्टिकाव्य न केवल व्याकरण लक्षण के प्रयोग ज्ञान के लिए निर्मित है, अपितु अलंकार, रस, छन्द, काव्यगुण, व्यंजना और चित्रकाव्य आदि भी प्राप्त होते हैं। काव्य के दसवें सर्ग में शब्दार्थालंकारों के निवेश से ग्यारहवें सर्ग में माधुर्यगुण के समावेश से इसका गौरव बढता है।

यमकालंकार का एक उदाहण द्रष्टव्य–

''अवसितं हसितं प्रसितं मुदा विलसितं ह्यसितं स्मरभासितम्।
न समदाः प्रमदा हतस्मदाः पुरोहितं विहितं न समीहितम्।।

लुड–लंकार का प्रयोग जैसे–

माज्ञासीस्त्वं सुखी रामो यदकार्षीत् स रक्षसाम्।
उदतारीदुदन्वन्तः पुरं न परितोऽरुधत्।।

इस काव्य का शरद्वर्णन नितान्त हृदयस्पर्शी है–

तरंगसंगाचचपलैः पलाशैर्ज्वालाश्रियं सातिशयं दधन्ति।
सधुमदीप्ताग्निरुचीनि रोजुस्ताम्रोत्पलान्याकुलषट्पदानि।।

इस प्रकार सूर्य वर्णन में भी

''दुरुत्तरे पंक इवान्धकारे मग्नं जगत्सन्ततरश्मिरज्जुः।
प्रणवष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन् समुज्जहारेव ततो विवस्वान्।।

भट्टिकाव्य के निम्नलिखित श्लोक तो एकावली नामक अलंकार का प्रसिद्ध उदाहरण है–

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजं न पकंजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुंज यः कलं न गुंजितं तन्त जहार यन्मनः।।

इस काव्य में महाकाव्य की विशिष्टता भी है इस हेतु से भट्टिकाव्य महाकाव्य है।

पाठगतप्रश्न–3.7

60. भट्टिस्वामी के पिता का नाम लिखें?
61. भट्टिस्वामी किस राजा के आश्रित थे?
62. भट्टिस्वामी किस देश में पैदा हुए?
63. भट्टिस्वामी का समय क्या है?
64. भट्टिकाव्य किस प्रकार का है?

65. भट्टिस्वामी की रचना लिखों?

66. ''दीपतुल्य: प्रबन्धेऽयम् - किसके विषय में कहा गया है?

67. भट्टिकाव्य किस पर आश्रित है?

68. एकावली नामक अलंकार का प्रसिद्ध उदाहरण भट्टिकाव्य से दीजिए?

पाठसार

माघ- इस पाठ में हम ने माघ कवि के जीवन चरित्र, उसके स्थान, काल, कृति, काव्य का वैशिष्ट्य, आदि विषयों को पढ़ा। माघ के पिता दत्तक विद्वान और दानप्रिय थे। मीनमल्लाख्या नगर में जन्म ग्रहण किया। इस गुर्जरनिवासी कवि ने श्रीमालनगर में निवास किया। विद्वान् सातवीं शताब्दी के अन्त से आठवी शताब्दी तक माघ का समय मानते हैं। शिशुपालवध नामक एकमात्र काव्य से महाकवि माघ यशस्वी हुए।

महाभारत उपजीव्य इस महाकाव्य में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा वर्णित है। निष्प्राण इस महाभारतोक्त कथा को माघ ने वर्णन माहात्म्य से चमत्कारी बनाया।

श्रीहर्ष-इस पाठ में श्रीहर्ष के जीवन वृतान्त, देश, काल और कृतियां का वर्णन है। श्रीहर्ष कान्यकुब्ज निवासी थे। श्रीहीर उनके पिता तथा मामल्लदेवी इनकी माता का नाम था। उदयनाचार्य से परास्त हुए, अपने पिता श्रीहीर के सम्मानरक्षार्थ नैषधीयचरित की रचना की। राजा जयन्तचन्द का समय ही इनका समय रहा है। अत: से बारहवीं शताब्दी में हुए थे। श्रीहर्ष के नौ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। उनके नैषधीयचरित और खण्डनखण्ड खाद्य काव्य ही अधिक प्रसिद्ध हुए। इनको छोड़कर अन्य ग्रन्थ स्थैर्यविचारप्रकरण, विजयप्रशस्ति, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, अर्णववर्णन, छिन्दप्रशस्ति, शिवशक्तिसिद्धि, तथा नवसाहसांकचरितचम्पू हैं।

नैषधीयचरित में 22 सर्ग एवं 2830 श्लोक है। नलदमयन्ती के प्रणय कथा का वर्णन किया गया है। दमयन्ती के विषय में चिन्तनशील राजा नल का राजहंस के परित्याग का वर्णन प्रसिद्ध है। नल का देवताओं के साथ उपमा का वर्णन भी प्रसिद्ध है। नल और दमयन्ती के सुखपूर्वक संगम से ग्रन्थ की समाप्ति की गई है।

क्षेमेन्द्र- कश्मीरदेशीय क्षेमेन्द्र ग्यारहवीं शताब्दी में हुए थे। उसकी सभी कृतियां लोक प्रसिद्ध और काव्यगुण सम्पन्न हैं। सभी कृतियों में दशावतारचरित काव्य अतिशय प्रसिद्ध है।

कल्हण- ऐतिहासिक कवियों में कल्हण अद्वितीय है। बारहवीं शताब्दी में कश्मीर देश में इनका जन्म हुआ। उनके पिता चपणक राजा हर्ष के प्रधान आमात्य थे अलकदत्ता नामक किसी सज्जन पुरुष ने कल्हण का पालन-पोषण किया। इनकी रचना का नाम राजतरंगिणी है। इसमें आठ तरंग है। राजा जयसिंह के राज्य में कल्हण ने राजतरंगिणी को निर्मित किया। इस काव्य में गोनन्द नामक राजा से आरम्भ करके तत्कालपर्यन्त कश्मीर देश के राजाओं का इतिहास वर्णित है।

भट्टिस्वामी- भट्टिस्वामी सौराष्ट्रजनपद के अन्तर्गत वलभीनगर में सातवीं शताब्दी में हुए थे। भट्टिस्वामी के पिता श्रीधरस्वामी थे। पिता के द्वारा संन्यासी हो जाने पर श्रीधरसेन नामक राजा ने इनका पालन-पोषण किया। इनकी रचना का नाम भट्टिकाव्य है। जिसका दूसरा नाम रावणवध भी है। शास्त्रकाव्यों में भट्टिकाव्य प्रसिद्ध है। यह काव्य महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण आश्रित है। इसमें 12 सर्ग है। यहां व्याकरणशास्त्र का सम्यक्, प्रयोग दिखाई देता है।

आपने क्या सीखा

- माघ, श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, कल्हण और भट्टिस्वामी के देशकाल एवं कृतियों को जाना।
- कवियों की काव्य रचना शैली को जाना।
- शिशुपालवध महाकाव्य के विषय में जानकारी प्राप्त की।
- माघे सन्ति त्रयो गुणाः उक्ति का तात्पर्य जाना।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. माघ के पिता का नाम दत्तक था।
2. माघ के पितामह सुप्रभदेव थे।
3. माघ के पितामह राजा वर्मलात की सभा में थे।
4. माघ का जन्म मीनमल्लाख्य नगर में हुआ।
5. माघ का निवासस्थल श्रीमालनगर था।
6. आनन्दवर्धन कृत ग्रन्थ का नाम ध्वन्यालोक है।
7. वामनकृत ग्रन्थ का नाम काव्यालंकार है।
8. आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक में माघ के पद्यों को उद्घृत करने से माघ आनन्दवर्धन के पूर्वकालिक है ऐसा ज्ञात होता है।
9. माघ का समय 7वीं शताब्दी के अन्त से आठवीं शताब्दी तक है।
10. माघ की रचना शिशुपालवध है।
11. युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया। यह इसका मुख्य विषय भी है।
12. शिशुपाल का उपजीव्य व्यासरचित महाभारत है।

13. शिशुपालवध का नायक श्रीकृष्ण है।

14. शिशुपालवध का प्रतिनायक शिशुपाल है।

3.2

15. युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का सम्पादन किया।

16. शिशुपालवध में 22 सर्ग है।

17. पाण्डवों ने वनवास की अवधि पूर्ण करके इन्द्रप्रस्थ नगर में वास किया।

18. राजसूय यज्ञ में जम्बूद्वीप के सभी राजाओं को बुलाया था।

19. यज्ञ में श्रीकृष्ण सर्वकर्मदृष्टा थे।

20. शास्त्रानुसार यज्ञ की समाप्ति पर गुणवान को अर्घ्यप्रदान करने का नियम है।

21. शास्त्रानुसार षड्ङ्गवेद अध्ययन अध्यापनरत ब्राह्मणस्नातक, गुरु, बन्धु, जामाता, राजा, ऋत्विक याज्ञिक ये छह सदस्य पूजा के योग्य होते हैं।

22. श्रीकृष्ण ही महान है यह भीष्म ने उद्घोष किया।

23. शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की निन्दा की।

24. "अब मैं कहता हूँ जिसको भगवान श्रीकृष्ण की पूजा अच्छी नहीं लग रही वह धनुष को धारण करे"। यह उक्ति भीष्म ने कही।

25. शिशुपाल द्वारा प्रेषित दूत ने श्लिष्ट शब्दों से श्रीकृष्ण की निन्दा की।

26. सात्यकि ने शिशुपाल के आक्षेपों का उचित उत्तर दिया।

27. सौ अपराधों के पूर्ण होने पर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का सिर काटा।

28. श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिरच्छेदन किया।

29. शिशुपाल के शरीर से एक तेज निकलकर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश किया।

30. एक तेज के श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करने की घटना से सभी विस्मित हुए।

3.3

31. माघ के काव्य में वेद, पुराण, दर्शन, अलंकार संगीत, समरशास्त्र, छन्द, ज्योतिष आदि सभी शास्त्रों का स्पर्श विद्यमान है अतः माघ बहुशास्त्रविद् कवि माने जाते हैं।

32. वेद, पुराण, दर्शन, अलंकार, संगीत, समरशास्त्र छन्द ज्योतिष आदि सभी शास्त्रों का स्पर्श विद्यमान है।

33. किरातार्जुनीय भारवि की रचना है।

टिप्पणी

34. किरातार्जुनीय ग्रन्थ को समझने के लिए माघ ने शिशुपालवध की रचना की।

35. शिशुपालवध काव्य में पर्वत, ऋतु, वनविहार, जलक्रीडा, सन्ध्या और प्रभात आदि वर्णन दिखाई देता है।

36. अस्ताचल जाते सूर्य और उदयाचल जाते चन्द का वर्णन हाथी के कान में लटके घण्टों के साथ उपमा के कारण 'घण्टामाघ' के रुप में प्रसिद्ध हुए।

37. माघ कवि का सूर्यास्त व चन्दोदय वर्णन निम्न श्लोक मे है-

उदयति वितोर्ध्वरश्मिरज्जवहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बितघण्टा द्वयपरिवारितवारणेन्द्र लीलाम्॥

38. शिशुपालवध में चित्रबन्ध से विहित श्लोक-

दाददो दद्ददुददादी दादादो दूददीदरोः।
दुददादंददवे दुद्दे ददाददददोखददः।

3.4

39. श्रीहर्ष के दो ग्रन्थ नैषधीयचरितम् और खण्डनखण्डखाद्य हैं।

40. श्रीहर्ष कान्यकुब्ज नगर में हुआ।

41. श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर था।

42. श्रीहर्ष के माता का नाम मामल्लदेवी था।

43. श्रीहर्ष के पिता जयचन्द्र राजा की सभा में थे।

44. श्रीहर्ष के पिता उदयनाचार्य से पराजित हुए।

45. श्रीहर्ष ने चिन्तामणि मन्त्र का जप किया।

46. श्रीहर्ष ने त्रिपुरा देवी की उपासना की।

47. श्रीहर्ष खण्डनखण्डखाद्य ग्रन्थ से उदयनाचार्य को खण्डित किया।

48. श्रीहर्ष का काल बारहवीं शताब्दी ईसवी था।

49. श्रीहर्ष 1163 से 1174 ई0 के बीच नैषधीयचरितम् की रचना की।

3.5

50. क्षेमेन्द्र राजा अनन्त की सभा पण्डित थे।

51. क्षेमेन्द्र कश्मीर देश में पैदा हुए।

52. क्षेमेन्द्र ग्यारहवीं शताब्दी में हुए।

53. क्षेमेन्द्र की रचनाए - शशिवंशमहाकाव्य, अमृतरंगकाव्य, अवसरसार, मुक्तावली, लावण्यवती, देशोपदेश, पवनपंचाशिका, दशावतारचरित,

54. क्षेमेन्द्र ने मधुरता के लिए दशावतारचरित की रचना की।

3.6

55. कल्हण कश्मीर देश में हुए।

56. कल्हण की रचना राजतरंगिणी है।

57. राजतरंगिणी एक ऐतिहासिक काव्य है।

58. राजतरंगिणी में आठ तरंग हैं।

59. कल्हण के पिता का नाम चणपक और चाचा का नाम कणक था।

3.7

60. भट्टिस्वामी के पिता का नाम श्रीधर स्वामी है।

61. भट्टिस्वामी राजा श्रीधरसेन के आश्रय में थे।

62. भट्टिस्वामी सौराष्ट्र जनपद के अन्तर्गत वलभीनगर में हुए।

63. भट्टिस्वामी सातवीं शताब्दी में पैदा हुए।

64. भट्टिकाव्य एक शास्त्र काव्य है।

65. भट्टिस्वामी की कृति नाम भट्टिकाव्य है।

66. दीपतुल्यः प्रबन्धेयम् भट्टिकाव्य को कहा गया है।

67. भट्टिकाव्य रामायण कथाश्रित काव्य है।

68. एकावली नामक अलंकार का प्रसिद्ध उदाहरण-

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजं न पकंजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोखसौ न जुगुंज यः कलं न गुंजितं तन्त जहार यन्मनः॥

टिप्पणी

4

रघुवंश-रघुवंशीय राजाओं के गुणों का वर्णन

आप सभी ने महाकवि कालिदास का नाम सुना है। वे न केवल भारतवर्ष में अपितु सम्पूर्ण विश्व के प्रसिद्ध कवियों में अद्वितीय हैं। उन्होंने सात काव्य लिखे हैं। रघुवंशम् और कुमारसंभवम् ये दो महाकाव्य, मेघदूत और ऋतुसंहार ये दो खण्ड काव्य और अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्रम्, ये तीन नाटक हैं। सभी कृतियों में रघुवंशम् प्रथम स्थान पर है। रघुवंश 19 सर्गात्मक एक लालित्यपूर्ण महाकाव्य है। इसमें रघुवंशीय राजाओं की कथा निबद्ध है। भगवान श्रीराम ही इस महाकाव्य के नायक है। 10वें सर्ग से लेकर 15वें सर्ग तक राम की कथा वर्णित है। यह महाकाव्य राजा अग्निवर्ण के राज्याभिषेक से समाप्त होता है। रघुवंश में जिन राजाओं का वर्णन किया गया है। उसका रामायण वर्णित राजाओं के वर्णन से भेद है। किन्तु वायुपुराण में वर्णित राजाओं के साथ समानता लिए है।

यहाँ हम रघुवंश के प्रथम सर्ग को पढ़ेंगे। इस सर्ग में कवि रघुवंशीय महाराज दिलीप का वर्णन करते है। उसके बाद सन्तान अभाव के कारण पत्नी सुदक्षिणा के साथ वशिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। गुरु वशिष्ठ ने बताया कि कामधेनु की अवज्ञा ही सन्तान लाभ में बाधा है। अत: दोनों कामधेनु की पुत्री सुरभि की सेवा में तत्पर हो गये। यह पाठ का सार है।

इस पाठ में रघुवंशम् के शुरू के दस श्लोकों को पढ़ेंगे। यहाँ काव्य के विषयवस्तु का वर्णन शुरू नहीं होता है। इस भाग में सर्वप्रथम कवि महाकाव्य का मंगलाचरण करते हैं। उसके बाद ग्रन्थ लेखन में स्वयं का असमर्थ्य प्रकट करके विनय प्रदर्शन करते हैं। असामर्थ्य होते हुए भी रघुवंश लेखन में कैसे प्रवृत हुए यह भी प्रकट करते हैं। उसके बाद कालिदास साध ारणतया सभी रघुवंश के राजाओं का वर्णन करते हैं। अन्त में रघुवंश काव्य पढ़ने का अधि कारी कौन है, यह कहते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- कालिदास की विनम्रता को समझ पाने में;

- रघुवंश के राजाओं के विषय में जान पाने में;
- कालिदास की काव्य शैली को समझ पाने में;
- श्लोकों के अन्वय एवं प्रतिपद का अर्थ समझ पाने में;
- उपमा आदि अलंकारों को समझ पाने में और;
- दीर्घ पदों का विग्रह वाक्य और समास को जान पाने में।

4.1 मूलपाठ

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥1॥

क्व सूर्यप्रभवो वेशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥2॥

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥3॥

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥4॥

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्॥5॥

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्॥6॥

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥7॥

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥8॥

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः॥9॥

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा॥10॥

4.2 मूलपाठ की व्याख्या

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥1॥

टिप्पणी

अन्वय- वागर्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वागर्थप्रतिपत्तये वन्दे।

अन्वयार्थ- वागर्थाविव शब्दार्थाविव सम्पृक्तौ सम्पर्कयुक्तौ जगतः विश्वस्य पितरै मातापितरौ पार्वतीपमेश्वरौ उमामहेश्वरौ वागर्थप्रतिपत्तये शब्दार्थपरिज्ञानाय वन्दे अभिववादये।

सरलार्थ- शब्द और अर्थ के समान नित्य संयुक्त समस्त लोक के माता पिता पार्वती परमेश्वर को शब्दार्थ राशि को ठीक प्रकार से ज्ञान के लिए प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्यार्थ- यह रघुवंश का मंगल श्लोक हैं। प्रत्येक कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए कार्य के आरम्भ में मंगल अर्चना करते हैं। इस प्रकार कवि किसी काव्य के निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए काव्य के आदि में मंगलाचरण करते हैं।। इसलिए महाकवि कालिदास भी अपने रघुवंश महाकाव्य के मंगल को इस श्लोक द्वारा धारण करते हैं।। इस श्लोक में कवि पार्वती परमेश्वर की स्तुति द्वारा काव्य के मंगल को सम्पादित करते हैं।। यहाँ विद्यमान दोनों देव समस्त संसार के माता-पिता हैं।। अतः समग्र विश्व ही इनके पुत्र के समान हैं। जैसे माता-पिता का प्रसाद सदा सन्तान में रहता हैं। उसी प्रकार उमा-महेश्वर का प्रसाद भी पुत्र लक्षण से कवि पर है, ऐसा कह सकते हैं। यहाँ ''पार्वती परमेश्वरौ वागर्थौ इव सम्पृक्तौ'' यह उपमान दिया गया। सम्पृक्तौ पद का अर्थ सम्पर्क युक्त हैं। अर्थात् शब्द और अर्थ का सम्पर्क जैसे नित्य हैं, उसी प्रकार उमा-महेश्वर की वन्दना का फल शब्दार्थ का सुस्पष्ट ज्ञान हैं। शब्द और अर्थ उत्कृष्ट हो तो काव्य भी उत्कृष्ट होता हैं। काव्य की उत्कृष्टता ही कवि की सफलता हैं। अतः कवि पार्वती-परमेश्वर की स्तुति से रघुवंश काव्य की सफलता के लिए प्रार्थना करते हैं। अतः कवि की प्रार्थना समुचित हैं।

व्याकरण विमर्श

- वागर्थाविव - वाक् च अर्थः च वागर्थौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। वागर्थौ इव इति वागर्थाविव।
- सम्पृक्तौ - (सम्+पृच+क्त) सम् - इति उपसर्गपूर्वकात् पृच् - धतोः क्तप्रत्यये सम्पृक्त इति प्रातिपदिकं निष्पद्यते। तस्य प्रथमाद्विवचने सम्पृक्तौ इति रूपम्।
- वागर्थप्रतिपळाये - वागर्थयोः प्रतिपत्तिः वागर्थप्रतिपत्ति इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तस्यै वागर्थप्रतिपत्तये। एतत् चतुर्थ्येकवचनस्य रूपम्।
- पितरौ - माता च पिता च पितरौ इति एकशेषः।
- पार्वतीपरमेश्वरौ - परमः च असौ ईश्वरः च इति परमेश्वर इति कर्मधारायसमासः। पार्वती च परमेश्वरः च पार्वतीपरमेश्वरौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः।
- अव्ययपरिचय - अत्र इव इति अव्ययपदम् अस्ति। एतत् च सादृश्यवाचकम् अव्ययं वर्तते।
- प्रयोगपरिवर्तनम्- (मया) वागथौं इव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वाबर्थप्रतिपत्तये वन्द्येते।

अलंकारालोचना

उपमा एक अलंकार हैं। उपमालंकार के प्रयोग में चार विषय आवश्यक हैं - उपमेय, उपमान,

उपमावाचक एवं सदृश धर्म (साधारण धर्म) प्रस्तुत श्लोक में पार्वती परमेश्वर उपमेय हैं, वागर्थौ उपमान है, उपमानवाचक शब्द 'इव' है जैसे वागर्थौ संयुक्त होता है वैसे ही पार्वती परमेश्वरो भी संयुक्त है यह दोनों का सादृश्य धर्म है अतः यहां उपमालंकार हैं।

पाठगतप्रश्न-4.1

1. कवि किस लिए पार्वती परमेश्वर की वन्दना करते हैं।?
2. पार्वती-परमेश्वर किस के समान संयुक्त हैं।?
3. पितरौ इस शब्द का विग्रह एवं समास का नाम लिखो?
4. प्रस्तुत श्लोक में कौन सा अलंकार हैं।?
5. इनमें से कालिदास रचित नहीं हैं।?

   (क) कुमारसंभव (ख) उत्तररामचरित (ग) मालविकाग्निमित्र (घ) ऋतुसंहार
6. इस श्लोक मे कौन सा अलंकार हैं। ?

   (क) उत्प्रेक्षालंकार (ख) रुपकालंकार (ग) उपमालंकार (घ) दृष्टान्तालंकार
7. उपमालंकार में क्या आवश्यक नहीं?

   (क) उपमेय (ख) उपमान (ग) उपमेय विशेषणम् (घ) सादृशधर्म
8. रघुवंश में कितने सर्ग हैं।?

   (क) 19 (ख) 18 (ग) 20 (घ) 17
9. 'वागर्थौ यहां कौन सा समास हैं।?

   (क) तत्पुरुष (ख) अव्ययीभाव (ग) बहुव्रीहि (घ) द्वन्द्व
10. रघुवंश का अन्तिम राजा कौन हैं।?

    (क) अग्निवर्ण (ख) अग्निवर्मा (ग) अग्निशर्मा (घ) अग्निवर्मण:

4.3 मूलपाठ की व्याख्या

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥2॥

अन्वय- सूर्यप्रभवः वंश क्व। अल्पविषया मतिश्च क्व। मोहाद् दुस्तरं सागरम् उड्डुपेन तितीर्षुः अस्मि।

अन्वयार्थ- सूर्यप्रभवः भास्करोत्पन्नः वंशः कुलं क्व कुत्र अल्पविषया अल्पज्ञानवती मतिश्च बुद्धिश्च क्व कुत्र मोहाद् लोभाद् दुस्तरं तरीतुम् अशक्यं सागरं समुद्रं तितीर्षुः तरीतुम् इच्छुः अस्मि भवामि।

टिप्पणी

सरलार्थ- महान् सूर्य कुल कहां और मेरी अल्पज्ञान वाली बुद्धि कहां। अर्थात् क्षुद्रमति युक्त मेरे द्वारा सूर्यकुल का वर्णन नहीं किया जा सकता हैं। फिर भी वह करने के लिए उद्यत मैं लघु नौका से भीषण समुद्र को पार करने की इच्छा करता हूँ।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक में कवि रघुवंश काव्य रचना में स्वयं का असामर्थ्य कहकर विनय को प्रकट करता हैं। लघु नौका से सुविशाल भयंकर समुद्र को पार करना असंभव होता हैं। कवि कहता है, क्योंकि उसके द्वारा रघुवंश रचना करना भी उसी प्रकार दुष्कर हैं। मनु, दिलीप, रघु आदि महान् राजा थे। अतः उनका चरित्र का वर्णन सामान्य मानव करने के लिए समर्थ नहीं हैं। उनका चरित्र वर्णन करने के लिए बुद्धिमान ही समर्थ हैं। किन्तु कालिदास अपने आप को बुद्धिमान नहीं मानते। अतः वह रघुवंश काव्य के निर्माण में असमर्थ है। लोक में जो शिष्ट होते हैं। वे सर्वप्रथम कार्य में उनका असामर्थ्य ही प्रकट करते हैं। उसके बाद उस कार्य को सम्पादित करते हैं। महाकवि कालिदास भी रघुवंश महाकाव्य की रचना के पूर्व वैसा की आचरण किया। अतः वे भी शिष्ट हैं।

व्याकरण विमर्श

- सूर्यप्रभवः - प्रभवति अस्मात् इति प्रभवः उत्पक्षिस्थानम्। सूर्यः प्रभवः यस्य सः सूर्यप्रभवः इति बहुव्रीहिसमासः।
- अल्पविषया - अल्पः विषयः यस्याः सा अल्पविषया बहुव्रीहिसमासः। एषः शब्दः मतिशब्दस्य विशेषणम्। अतः स्त्रीलिंगेवर्तते।
- तितीर्षुः - तरीतुम् इच्छुः इत्यर्थे तृधातोः सन्प्रत्यये उप्रत्यये च तितीर्षुः इति रूपम्।
- दुस्तरम् - दुःखेन तरीतुं शक्यमिति दुष्करम्।

सन्धिकार्यम्

- सूर्यप्रभवो वंशः - सूर्यप्रभवः+वंशः - विसर्ग सन्धि
- चाल्पविषया - च+अल्पविषया - दीर्घसन्धि
- तितीर्षुर्दुस्तरम् - तितीर्षुः+दुस्तरम् - विसर्गसन्धि
- मोहादुडुपेनास्मि - मोहाद्+उडुपेन+अस्मि - दीर्घसन्धि
- अव्ययपरिचयः - क्व इति ,कम् अव्ययपदम्। कुत्र इति तस्य अर्थः।
- प्रयोगपरिवर्तनम् - सूर्यप्रभवेन वंशेन क्व (भूयते) अल्पविषया मत्या च क्व (भूयते)। (मया) मोहात् दुस्तरं सागरं उडुपेन तितीर्षुणा (भूयते)।

अलंकारालोचना

यहां सूर्यवंश दुस्तर समुद्र के समान स्वमति लघु नौका के समान इन दोनों में उपमा अलंकार का प्रयोग किया हैं। अतः सूर्यवंश, और स्वमति उपमेयवाचक दो पद हैं। दुस्तर समुद्र और लघु नौका ये दो उपमान वाचक पद है। जैसे लघु नौका से दुस्तर समुद्र को पार करना

असंभव है, वैसे की कवि की मति के द्वारा रघुवंश के राजाओं का चरित्रवर्णन करना यह सादृश्य है अत: उपमालंकार है।

पाठगत प्रश्न 4.2

11. कवि ने स्वमति की उपमा किस के साथ की है, रघु राजाओं के चरित्र की उपमा कवि ने किस को दी है?
12. 'मोहादुडुपेनास्मि' का सन्धि विच्छेद कीजिए।
13. तितीर्षु: इसका क्या अर्थ है?
14. प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार सिद्ध कीजिए।
15. प्रभव: नाम किसका है?

(क) विनाश स्थान (ख) प्राप्ति स्थान (ग) उत्पति स्थान (घ) प्रथम स्थान

4.4 मूलपाठ की व्याख्या

मन्द: कवियश: प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामन:॥3॥

अन्वय- मन्द: कवियश: प्रार्थी (अहम्) प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहु: वामन: इव उपहास्यतां गमिष्यामि।

अन्वार्थ- मन्द: मूढ: कवियश:प्रार्थी कविकीर्त्र्यभिलाषी प्रांशुलाभ्ये उन्नतेन प्राप्ये फले फलविषये लोभात् मोहात् उद्बाहु: उन्नतभुज: वामन: इव खर्व इव उपहास्यतां गमिष्यामि उपहास्यो भविष्यामि।

सरलार्थ- मैं मन्द भी महाकवि यश को प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ। अत: उन्नत व्यक्ति से फल प्राप्त करने में लगे हुए बौना पुरुष जैसे उपहास का पात्र होता है उसी प्रकार मैं भी उपहास का पात्र हो जाऊँगा।

तात्पर्यार्थ- महाकवि कालिदास ने पूर्व श्लोक में अपना असामर्थ्य प्रकट किया, किन्तु उससे उसकी तृप्ति नहीं हुई। अत: इस श्लोक में पुन: अपने असामर्थ्य को प्रकाशित कर विनय प्रकट करते हैं। ऊपर स्थित जो कुछ भी वस्तु को उन्नत (लम्बे) व्यक्ति ही प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। कोई बौना उस फल को प्राप्त करने की इच्छा करता है तो उसके द्वारा अपने दोनों भुजा, ऊपर करके प्राप्त किया जा सकता है किन्तु ऐसा करने से वह सभी के द्वारा उपहास का पात्र होता है। कालिदास भी महाकवि की कीर्ति को प्राप्त करने की आकांक्षा करते हैं। किन्तु वह कीर्ति सामान्य मानव प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते है। विशिष्ट बुद्धि वाले ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। फिर भी कालिदास उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

टिप्पणी

वे कहते है कि उनका महाकवित्व इच्छा सामर्थ्य से उत्पन्न नहीं हुआ अपितु लोभ से उत्पन्न हुआ। लोभ के कारण प्रवृत हुए वे सभी के द्वारा उपहासित ही होंगे। लोक में जो महात्मा होते हैं। वे अपने असामर्थ्य के कहने पर लज्जित नहीं होते, महात्माओं का यह लक्षण कालिदास में भी हैं। वस्तुत इस श्लोक द्वारा कालिदास का विनय ही प्रकट होता हैं।

व्याकरण विमर्श

- **कवियश:प्रार्थी**- कवे: यश: कवियश: इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:। कवियश: प्रार्थयते इति अर्थे णिनिप्रत्यये कवियश:प्रार्थी इति रूपम्।
- प्रांशुलभ्ये- प्रांशुना लभ्यं प्रांशुलभ्यमिति तृतीयातत्पुरुषसमास:, तस्मिन् प्रांशुलभ्ये। एतत् रूपं सप्तम्येकवचने भवति।
- उद्‌बाहु:- उन्नत: बाहु: यस्य स उद्‌बाहु: इति बहुव्रीहिसमास:।
- उपहास्यताम् - उपहसितुं योग्य इत्यर्थे उपपूर्वकात् हस्धतो: ण्यत्प्रत्यये उपहास्य इति रूपम्। उपहास्यस्य भव इत्यर्थे उपहास्यशब्दात् तल्प्रत्यये उपहास्यता, ताम् उपहास्यताम्। एतत् रूपं द्वितीयैकवचने भवति।

सन्धिकार्यम्

- गमिष्याम्युपहास्यताम् - गमिष्यामि+उपहास्यताम्।
- लोभादुद्वाहुरिव - लोभात्+उद्‌बाहु:+इव।

प्रयोगपरिवर्तनम्

मन्देन कवियश: प्रार्थिना (मया) प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्वाहुना वामनेन इव उपहास्यता गमिष्यते।

अलंकारयोजना

यहाँ कवि को यश लभ्य व्यक्ति द्वारा लभ्य फल के समान है कवि उस फल की प्राप्ति के लिए इच्छुक बौने पुरुष के समान है। कवि स्वयं यहां उपमेय है। दोनो में उपमा वाचक शब्द हैं। अत: यहाँ उपमा अलंकार हैं।

पाठगत प्रश्न-4.3

16. कवि ने अपने को किस के समान उपमा दी?

17. ऊपर स्थित फल को कौन प्राप्त कर सकता है?

18. इव अव्यय पद का क्या अर्थ है?

19. प्रांशुलभ्य इस पद का विग्रह एवं समास लिखें?

20. ऊपर स्थित वस्तु को कौन प्राप्त नहीं कर सकता?

    (क) पीन (ख) वामन (ग) उन्नत (घ) कृश

4.5 मूलपाठ की व्याख्या

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥4॥

अन्वय - अथवा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्ति।

अन्वयार्थ- अथवा अन्यस्मिन् पक्षे पूर्वसूरिभिः प्राचीनकविभिः कृतवाग्द्वारे कृतकाव्यप्रवेशद्वारे अस्मिन् अत्र वशे कुले वज्रसमुत्कीर्णे वज्रविद्धे मणौ रत्ने सूत्रस्य इव तन्तोः इव मे मम गतिः सञ्चारः अस्ति वर्तते।

सरलार्थ- वाल्मीकि आदि प्राचीन कवियों ने काव्य के माध्यम से इस वंश मे प्रवेश किया। जैसे वज्रविद्ध रत्न मे सूर्य की गति बाधा रहित होती है उसी प्रकार रघुवंश में मेरा प्रवेश निर्बाध है।

तात्पर्यार्थ- पूर्व में कहकर महाकवि कालिदास ने रघुवंश काव्य के लेखन में अपना सामर्थ्य प्रकट किया। इस श्लोक में वर्णन किया है, कि असामर्थ्य के होने पर भी कवि काव्य लेखन में कैसे प्रवृत हुआ। कवि कहता कि उसके लिए रघुवंश काव्य की रचना करना सरल ही हैं। क्योंकि वह रघुवंश का वर्णन करने वाला प्रथम व्यक्ति नहीं है। पूर्व में वाल्मीकि आदि महान कवियों ने भी रामायण आदि ग्रन्थों की रचना की हैं। वहाँ रघुवंश के राजाओं का जीवन सम्यक् रूप से वर्णित किया है। इस कारण कवि का कार्य सुकर ही है। इस समर्थन में कवि दृष्टान्त भी देता है कि वज्र या मणिबेधक सूची से मणि में छेद किया जाता हैं। जैसे रघुवंश काव्य रचना में कवियों की गति निर्बाध होती हैं। क्योंकि वाल्मीकि आदि विद्वानों में अपने काव्य द्वारा उसमें प्रवेश द्वार का निर्माण कर दिया। उसी प्रकार रघुवंश काव्य के निर्माण में कवि अपनी प्रतिमा को बाध रहित करता है, और व्यास वाल्मीकि आदि प्राचीन कवियों में अपनी श्रद्धा को प्रकट करते हैं।

व्याकरण विमर्श

- पूर्वसूरिभिः - पूर्वं च ते सूरयः पूर्वसूरयः, तैः इति कर्मधरायसमासः।
- कृतवाग्द्वारे - कृतं वाक् एव द्वारं यस्य सः कृतवाग्द्वारः, तस्मिन् इति बहुव्रीहिसमासः।
- वज्रसमुत्कीर्णे- वज्रेण समुत्कीर्णः वज्रसुत्कीर्णः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः। वज्रं नाम मणिभेदकः सूचीविशेषः।

सन्धिकार्यम्

- वंशेऽस्मिन् - वंशे + अस्मिन्।
- सूत्रस्येवास्ति - सूत्रस्य+इव+अस्ति
- अव्ययपरिचय: - अथवा इति विकल्पार्थकम् एकम् अव्ययम्।
- प्रयोगपरिवर्तनम् - अथवा पूर्वसूरिभि: कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गत्या भूयते।

अलंकारालोचना

रस श्लोक में पूर्व कवियों द्वारा किये गये काव्य द्वारा रघु वंश की वज्रसमुत्कीर्ण मणि से उपमा की हैं। कवि की गति की समानता सूई की गति से वर्णित हैं। इव उपमावाचक शब्द भी हैं। अत: यहां उपमा अलंकार हैं।

पाठगत प्रश्न-4.4

21. वज्रबिद्ध रत्न में सूई की गति कैसी होती है?
22. वज्र किसका नाम है?
23. "सूत्रस्येवाहित" इस सन्धि विच्छेद कीजिए।
24. पूर्वसूरी कौन हैं?
25. इस श्लोक में उपमान वाचक शब्द क्या है?

(क) इव (ख) वश (ग) मणि (घ) अन्य।

4.6 मूलपाठ की व्याख्या

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्॥5॥

अन्वय- स: अहम् आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम् आसमुद्रक्षितीशानाम् आनाकरथवर्त्मनाम् (रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये)

अन्वयार्थ- स: तादृश: अहं कालिदास: आजन्मशुद्धानां जन्मत: पवित्राणाम् आफलोदयकर्मणां फलप्राप्तिपर्यन्तं कर्म कुर्वाणानाम् आसमुद्रक्षितीशानां समुद्रपर्यन्तं पृथ्वीपालकानाम् आनाकथवर्त्मनां स्वर्गपर्यन्तं रथमार्ग: अस्ति येषां रघूणां रघुवंशोत्पन्नानां राज्ञाम् अन्वयं वशं वक्ष्ये कथयिष्यामि।

सरलार्थ- जन्म से पवित्र, फललाभपर्यन्त कर्म करने वाले, सार्वभौम इन्द्र के सहचारी रघुवंश

के राजाओं के वंश का महाकवि कालिदास वर्णन करते हैं।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक से चार श्लोकों तक कवि द्वारा रघुवंश के राजाओं के चरित्र का वर्णन किया गया है। नौवें श्लोक से इन श्लोकों का अन्वय है। यहां रघुवंश के राजाओं को विशेषण चतुष्ट्य दिया गया हैं। प्रथम विशेषण है सोहमाजन्मशुद्धानाम् यर्थात् रघुवंशीय राजा जन्म से ही शुद्ध पवित्र थे। द्वितीय आफलोदयकर्मणाम् अर्थात् वे फल प्राप्ति पर्यन्त कर्म में आचरण करते थे। कार्य के सम्पादन काल में विघ्न आने पर भी कर्म का त्याग नहीं करते थे। अर्थात् वे निरन्तर कर्म सम्पादित करते थे। तृतीय आसमुद्रक्षीतीशानाम् अर्थात् उनका राज्य समुद्रपर्यन्त था। उनके राज्य की सीमा समुद्र थी। अतः पृथ्वी पर अन्य किसी राजा का राज्य नहीं था। समुद्र तक भूमि के ये ही राजा महापति थे। अन्तिम विशेषण आनाकरथवर्त्मनाम् अर्थात् स्वर्गपर्यन्त इनका रथ मार्ग था। स्वर्ग के प्रति भी उनका आगमन-गमन था। ये इन्द्र के मित्र थे। इस प्रकार के महान् रघुवंश के राजाओं का चरित का वर्णन करने के लिए कालिदास प्रवृत हुए।

व्याकरण विमर्श

- **आजन्मशुद्धानाम्** - जन्मन आ इति आजन्म इति अव्ययीभावसमासः। आजन्म शुद्धाः आजन्मशुद्धाः इति सुप्सुपासमासः, तेषाम् आजन्मशुद्धानाम्। एतत् रूपं षष्ठीबहुवचने भवति।
- **आफलोदयकर्मणाम्** - फलादयात् आ इति आफलोदयम् इति अव्ययीभावसमासः। आफलोदयं कर्म येषां ते आफलोदयकर्माणः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषाम् आफलोदयकर्मणाम्। एतत् रूपं षष्ठीबहुवचने भवति।
- **आसमुद्रक्षितीशानाम्** - समुद्रात् आ इति आसमुद्रम् इति अव्ययीभवसमासः। क्षितेः ईशाः क्षितीशाः इति तत्पुरुषसमासः। आसमुद्रक्षितीशाः इति सुप्सुपासमासः, तेषां आसमुद्रक्षितीशानाम् एतत् रूपं षष्ठीबहुवचने भवति। क्षितिः नाम पृथिवि।
- **आनाकरथवर्त्मनाम्** - नाकात् आ आनाकम् इति अव्ययीभावसमासः। रथस्य वर्त्म रथवर्त्म इति षष्ठीतत्पुरुषंसमासः। आनाकं रथवर्त्म येषां ते आनाकरथवर्त्मानः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषांम् आनाकरथवर्त्मनाम्। ,तत् रूपं षष्ठीबहुवचने भवति।

सन्धिकार्यम्

- सोहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्- सः+अहम्+आजन्मशुद्धानाम्+आफलोदयकर्मणाम्।
- आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् - आसमुद्रक्षितीशानाम्+आनाकरथवर्त्मनाम्।
- प्रयोगपरिवर्तनम्-तेन मया आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम् आसमुद्रक्षितीशानाम् आनाकरथवर्त्मनाम् (रघूणाम् अन्वयः वक्ष्यते)।

पाठगत प्रश्न-4.5

26. आनाकरथवर्त्मनाम् इसका अर्थ एवं समासादि स्पष्ट कीजिए।
27. रघुवंश के राजाओं की सीमा कहां तक थी?
28. सोखहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् इसका सन्धि विच्छेद कीजिए।
29. रघुवंशीय राजाओं के मार्ग कहां तक थे।

    (क) स्वर्गपर्यन्त (ख) गमनपर्यन्त (ग) पातालपर्यन्त (घ) राज्यसीमापर्यन्त।
30. क्षिति किसका नाम हैं।

    (क) जलम् (ख) पृथिवी (ग) वायु (घ) आकाश।

4.7 मूलपाठ की व्याख्या

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।6।।

अन्वय- (सः अहम्) यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनां यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् (रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये)।

अन्वयार्थ- सः अहम् कालिदासः यथाविधिहुताग्नीनां विधपूर्वकं होमं कुर्वतां यथाकामार्चितार्थिनां यथाभिलाषं याचकानां सत्कारं कुर्वतां यथापराधदण्डानां अपराधनुसारेण दण्डं प्रदातृणाम् यथाकालप्रबोधिनां यथासमयं प्रबोधनशीलानां रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये।

सरलार्थ- मैं कालिदास विधि पूर्वक यज्ञों से अग्नि को तृप्त करने वाले, याचकों को मनोनुकूल दान देने वाले, अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, उचित समय पर जागरुक रघुवंशीय राजाओं के वंश का वर्णन करुंगा।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक में कालिदास रघुवंशीय राजाओं के गुण विशेष का वर्णन करते हैं। रघुवंशीय राजा सभी कार्यो को यथार्थ सम्पादित करते थे। इसको प्रदर्शित करने के लिए उनके विशेषण चतुष्टय का यहां उल्लेख करते हैं। यथाविधिहुताग्नीनाम् अर्थात् वेदाशास्त्रों में अग्नि होम आदि का विधान है वैसा ही पालन करते थे। अग्नि दो प्रकार की होती है। श्रौताग्नि और स्मार्ताग्नि। स्मार्ताग्नि के तीन भेद होते हैं- दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि और गार्हपत्याग्नि। स्मार्ताग्नि के दो भेद है- शम्याग्नि और आवसथ्याग्नि। ये राजा लोग इन सभी अग्नियों का हवन यथाविधि करते थे। शास्त्रानुसार यज्ञ का आचरण करते थे अतः फलितार्थ भी सम्यक् रूप से होता था। यथाकामार्चितार्थिनाम् अर्थात् याचक जो जो इच्छा करते थे वह सब कुछ उन याचकों को देते थे। अभिलाषा के अनुसार याचको के लिए इष्ट वस्तुएं, प्रदान करके उनको सन्तुष्ट करते थे। यह उनकी दानविषय का वर्णन है। यथापराधदण्डानाम् अर्थात जो अपराध किया उस अपराध के अनुसार अपराधी को दण्ड देते थे। उनके शासक काल में अपराध

करके कोई भी दण्डरहित नहीं रहता था। उनके द्वारा अधिक दण्ड वाले को न्यून दण्ड या न्यून दण्डवाले को अधिक दण्ड का विषम भाव नहीं होता था। यथाकाल प्रबोधिनाम्अर्थात् वे जिस समय जो कार्य करना चाहिए उसी उचित समय में उस कार्य को करने के लिए प्रबुद्ध होते थे। जैसे युद्ध करना चाहिए यह लक्षित होने परवे युद्ध के लिए प्रस्तुत होते थे। कहीं जाना चाहिए ऐसा लक्षित होने पर वे जाने के लिए प्रस्तुत होते थे। इस प्रकार उनके कार्य के लिए कालिक बुद्धि अवतरित होती थी। तादृश रघुवंशीय राजाओं का वर्णन करने का प्रयत्न किया हैं।

व्याकरण विमर्श

- **यथाविधिहुताग्नीनाम्**- हुता अग्नयो यैः ते हुताग्नयः इति बहुव्रीहिसमासः। यथाविधि हुताग्नयः यथाविधिहुताग्नयः इति सुप्सुपासमासः, तेषां यथाविधिहुताग्नीनाम्। एतत् रूपं गाष्ठीबहुवचने भवति।

- **यथाकामार्चितार्थिनाम्**- कामम् अनतिक्रम्य यथाकामम् इति अव्ययीभावसमासः। अर्चिताः अर्थिनः यैस्ते अर्चितार्थिनः इति बहुवीहिः। यथाकामम् अर्चितार्थिनः यथाकामार्चितार्थिनः इति सुप्सुपासमासः, तेषां यथाकामार्चितार्थिनाम्। षष्ठीबहुवचने एतत् रूपं भवति।

- **यथापराधदण्डानाम्**- अपराधम् अनतिक्रम्य यथापराधम् इति अव्ययीभावसमासः। यथापराध ˙दण्डः येषां ते यथापराधदण्डाः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषां यथापराधदण्डानाम्। षष्ठीबहुवचनान्तम् एतत् रूपम्।

- **यथाकालप्रबोधिनाम्**- कालम् अनतिक्रम्य यथाकालम् इति अव्ययीभावसमासः। यथाकालं प्रबोधिनः यथाकालप्रबोधिनः इति सुप्सुपासमासः, तेषां यथाकालप्रबोधिनाम्। षष्ठीबहुवचने भवति एतत् रूपम्।

- **प्रयोगपरिवर्तनम्**- (तेन मया) यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनां यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् (रघूणाम् अन्वयः वक्ष्यते)।

पाठगत प्रश्न-4.6

31. अग्नि के भेद उपभेद को लिखें।

32. यथापराधदण्डानाम् का समास करके अर्थ लिखिए।

33. श्लोक में कहे गये चार विशेषण किसकी विशेषता बताते हैं?

34. अग्नि के कितने भेद हैं?

    (क) 5 (ख) 4 (ग) 3 (घ) 2

35. इनमें से कौनसी श्रौताग्नि नहीं हैं?

टिप्पणी

(क) दक्षिणाग्नि (ख) आवसधयाग्नि (ग) गार्हयपत्याग्नि (घ) आहवनीयाग्नि

36. इस श्लोक में रघुवंशी राजाओं के कितने विशेषण दिये हैं?

(क) तीन (ख) चार (ग) पांच (घ) छह

4.8 मूलपाठ की व्याख्या

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥7॥

अन्वय- (सः अहम्) त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणां यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनां (रघूणामन्वयं वक्ष्ये)।

अन्वयार्थ- सः अहं कविः त्यागाय दानाय सम्भृतार्थानां धनस्य संग्रहकाणां सत्याय सत्यरक्षायै मितभाषिणाम् अल्पभाषणशीलानां यशसे कीर्तये विजिगीषूणां विजयम् इच्छतां प्रजायै सन्तानाय गृहमेधिनां गृहस्थाश्रमं प्रविशतां रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये।

सरलार्थ- रघुवंश में उत्पन्न राजा दान के लिए धन का संग्रह करते थे, सत्य के लिए कम बोलते थे कीर्ति के लिए दिग्विजय करते थे और सन्तान प्राप्ति के लिए विवाह करते थे।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक में कवि कहते हैं कि वे राजा दानादि के लिए धन का अर्जन करते थे। परन्तु वे कदापि स्वार्थ सिद्धि के लिए धनसंग्रह नहीं करते थे, वे सम्पत्तियों का सम्यक् उपयोग करते थे। जिसमें उनका अभ्युदय होता था। वे सत्य के लिए अल्प भाषण करते थे। वस्तुत व्यर्थ ही बहुभाषण सुशोभित नहीं होता। सत्य कथन के लिए जितनी भाषा की अपेक्षा होती है उतनी वाणी उपयुक्त होती है, जो अधिक बोलते है, उनकी वाणी मिथ्या होती है। अतः रघुवंशीय राजा स्वल्प भाषण करते थे। वे यश प्राप्ति के लिए दिग्विजय करते थे। सामान्यतया राजा धनादि योग के लिए राज्यों को जीतते हैं। परन्तु वे यश की प्राप्ति के लिए राज्यों को जीतते थे। और सन्तान प्राप्ति के लिए ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। अज्ञानी लोग भार्यादि के भोग के लिए विवाह करते हैं। किन्तु रघुवंश के राजाओं का सन्तान प्राप्ति ही विवाह का कारण था। इस प्रकार रघुवंश के राजाओं को चरित्र का वर्णन करने के लिए कवि कालिदास प्रवृत्त हुए।

व्याकरण विमर्श

- **सम्भृतार्थानाम्-** सम्भृतः सञ्चितः अर्थः यैः ते सम्भृतार्थाः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषां सम्भृतार्थानाम्। षष्ठीबहुवचने एतत् रूपम् अस्ति।
- **मितभाषिणाम्-** मितं स्वल्पं भाषणं शीलं येषां ते मितभाषिणः तेषां मितभाषिणाम्। षष्ठीबहुवचने एतत् रूपम् अस्ति।
- **विजिगीषूणाम्-** विजेतुम् इच्छवः विजिगीषवः तेषां विजिगीषूणाम्। अत्र जिधतोः सन्प्रत्ययः उप्रत्ययः च विहितः।

- **गृहमेधिनाम्**- गृहै: दौर: मेधन्ते संगमं कुर्वन्ति इति ग्रहमेधिन:, तेषां गृहमेधिनाम्। एतत् रूपं षष्ठीबहुवचनान्तम्।

प्रयोगपरिवर्तनम्

(तेन मया) त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणां यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनां (रघूणाम् अन्वय: वक्ष्यते)।

पाठगत प्रश्न-4.7

37. रघुवंशीय राजा किसलिए कम बोलते थे?

38. मितभाषिण: का विग्रह क्या है?

39. ''प्रजायै गृहमेधिनाम्'' इस कथन से कवि क्या प्रकट करना चाहते हैं?

40. विजिगीषूणाम् में कौन सा प्रत्यय है?

    (क) सन्प्रत्यय (ख) यङ्-प्रत्यय (ग) सुप्रत्यय (घ) यक्प्रत्यय

41. रघुवंशीय राजा किसलिए विवाह करते थे।

    (क) कामभोगाय (ख) संसारपालनाथ (ग) सन्तानप्राप्तये (घ) पित्रादेशपालनाय

4.9 मूलपाठ की व्याख्या

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवनै विषयैषिणाम्
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥8॥

अन्वय- (स: अहम्) शैशवे अभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणां वार्द्धके मुनिवृत्तीनाम् अन्ते योगेन तनुत्यजाम् (रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये)।

अन्वयार्थ- स: अहं कालिदास: शैशवे बाल्ये अभ्यस्तविद्यानाम् अधीतशास्त्राणां यौवने तारूण्ये विषयैषिणां भोगस्य इच्छुकानां वार्द्धके वृद्धत्वे मुनिवृत्तीनां वानप्रस्थाश्रमिणां तथा च अन्ते शरीरत्यागसमये योगेन परमात्मन: ध्यानेन तनुत्यजाम् शरीरत्यागिनां रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये।

सरलार्थ- रघुवंशीय राजा बाल्याकाल में विद्या का अभ्यास करते थे। यौवनकाल में विषयों के सुख का अनुभव करते थे, वार्धक काल में मुनि जीवन के मार्ग को स्वीकार करते थे, और जीवन के अन्त में योगमार्ग से देहत्याग कर देते थे।

तात्पर्यार्थ- कवि ने इस श्लोक में रघुवंशीय राजाओं के पुरुषार्थमय सम्पूर्ण जीवन का वर्णन किया है वे राजा अपने जीवन में चारों आश्रमों का उचित प्रकार से पालन करते हैं। शिशुकाल में वे सम्यक् रूप से विद्या का अभ्यास करते थे। विद्यार्जन ही ब्रह्मचर्याश्रम का मूल हैं। अत:

ब्रह्मचर्याश्रम का वे साधुरूप में परिपालन करते थे। उसके बाद उनका यौवनकाल आता था। उस समय में ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करके वे विषयों का सुख प्राप्त करते थे। धर्म, अर्थ, और काम ये तीन त्रिवर्ग कहे जाते हैं। राजा लोग इन दोनों आश्रमों में इन तीनों वर्गो (त्रिवर्ग) की साधना करते थे। तदनन्तर वृद्धावस्था में मुनि जैसा जीवन व्यतीत करते वैसा ही ये राजा व्यतीत करते थे। इस प्रकार इनके द्वारा वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम को सम्यक् रुप से पालन किया जाता था। जीवन के अन्तिम समय में वे योग के मार्ग से देह का त्याग करते थे। अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते थे। इस प्रकार सभी आश्रमों की सार्थकता थी, और उनके द्वारा जीवन के पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) को प्राप्त करते थे। कवि मे इस श्लोक द्वारा सनातन धर्म के सार को दर्शाया हैं।

व्याकरण विमर्श

- अभ्यस्तविद्यानाम्- अभ्यस्ता विद्या यैः ते अभ्यस्तविद्याः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषाम् अभ्यस्तविद्यानाम्। षष्ठया बहुवचने एतत् रूपम्।
- विषयैषिणाम्- विषयान् इच्छति इति विषयैषिणः, तेषां विषयैषिणाम्। षष्ठीबहुवचनान्तं रूपमेतत्।
- मुनिवृत्तीनाम्- मुनीनां वृत्ति व्यापारः येषां ते मुनिवृत्तयः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषां मुनिवृत्तीनाम्। मुनिवृत्तिशब्दस्य षष्ठीबहुवचने इदं रूपं भवति।
- तनुत्यजाम्- तनुं त्यजन्ति इति तनुत्यजः इति उपपदसमासः, तेषां तनुत्यजाम्। तनुत्यज्-शब्दस्य षष्ठीबहुवचन इदं रूपम् तनुं त्यक्तवताम् इत्यर्थः।

सन्धिकार्यम्

- शैशवेभ्यस्तविद्यानाम् - शैशवे+अभ्यस्तविद्यानाम्
- योगेनान्ते- योगेन+अन्ते
- प्रयोगपरिवर्तनम्- (तेन मया) शैशवे अभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणां वार्धके मुनिवृत्तीनाम् अन्ते योगेन तनुत्यजाम् (रघूणाम् अन्वयः वक्ष्यते)।

पाठगत प्रश्न-4.8

42. सूर्यवंशीय राजाओं का देह त्याग कैसे होता था?
43. रघुवंशीय राजा शिशु अवस्था में क्या करते थे?
44. ''तनुत्यजाम्'' इसका विग्रह एवं समास का नाम लिखिए।
45. आश्रम कितने हैं।

    (क) तीन (ख) चार (ग) पांच (घ) छह

46. अभ्यस्तविद्यानाम् में कौन सा समास है।

(क) बहुव्रीहिसमास (ख) तत्पुरुष समास (ग) द्वन्द्वसमास (घ) अव्ययीभावसमास

4.10 अब मूलपाठ की व्याख्या

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः॥९॥

अन्वय- (सः अहम्) तनुवाग्विभवः सन् अपि तदगुणैः कर्णम् आगत्य चापलाय प्रचोदितः सन् (रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये)।

अन्वयार्थ- सः अहं कालिदासः तनुवाग्विभवः अल्पवाक्यसम्पत्तिवान् सन् अपि भवन् अपि तद्गुणैः रघुवंशीयानां गुणैः कर्णम् श्रोत्रम् आगत्य प्राप्य चापलाय चाञ्चल्याय प्रचोदितः प्रेरितः सन् रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये।

सरलार्थ- मै कालिदास अल्पज्ञानी हूँ। फिर भी रघुवंश के राजाओं के महान गुणों से प्रेरित होकर रघुवंश काव्य को रचना करने के लिए प्रवृत हूँ।

तात्पर्यार्थ- वाल्मीकि आदि कवियों के द्वारा पूर्व में रघुवंशीय राजाओं का वर्णन किया गया। अतः वह रघुवंश लब्ध प्रवेश है। यह कालिदास ने पूर्व में वर्णित किया है। इससे पूर्व चार श्लोकों में उनका आजन्मशुद्धयाशुद्धि आदि गुणों का भी वर्णन किया है। फिर भी इस श्लोक में पुनः अपने को असामर्थ्यवान कहते हैं। वे कहते है कि रघुवंश के राजाओं का जीवन वर्णन के लिए जितना ज्ञान अपेक्षित है उतना ज्ञान उनका नहीं है। फिर भी कवि नें जब उन राजाओं के गुणों को सुना, तब उन गुणों से प्रेरित हुआ। अर्थात् उनके चरित का वर्णन करने के लिए उनके मन में महती इच्छा उत्पन्न हुई। अतएव इस श्लोक का यह तात्पर्य है कि वह रघुवंश काव्य को रचने के लिए प्रवृत हुए।

व्याकरण विमर्श

- तनुवाग्विभवः- वाचां विभवः वाग्विभवः इति तत्पुरुषसमासः। तनुः वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः इति बहुव्रीहिसमासः।
- तद्गुणैः- तेषां गुणाः तद्गुणाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तैः तद्गुणैः। तृतीयायाः बहुवचने एतत् रूपं भवति।
- चापलाय- चपलस्य भावः चापलं, तस्मै चापलाय। चतुर्थ्येकवचनान्तं रूपम्।
- वक्ष्ये- ब्रूधतोः लृटि उत्तमपुरुषैकवचने वक्ष्ये इति रूपम्।
- आगत्य- आपूर्वकात् गम्धतोः ल्यप्प्रत्यये आगत्य इति रूपं भवति। अस्य अव्ययपदवत् प्रयोगः भवती।

सन्धिकार्यम्

- रघूणामन्वयम्- रघूणाम्+अन्वयम्
- तनुवाग्विभवोऽपि- तनुवाग्विभव:+अपि
- कर्णमागत्य- कर्णम्+आगत्य

प्रयोगपरिवर्तनम्

(तने मया) तनुवाग्विभवेन सता अपि तद्गुणै: कर्णम् आगत्य चापलाय प्रचोदितेन (रघूणाम् अन्वय: वक्ष्यते)।

विशेष आलोचना- श्लोक के कुछ विभाग होते हैं। यदि एक ही श्लोक से वाक्य की समाप्ति हो जाती है तो उसे 'मुक्तक' कहते हैं। यदि दो श्लोकों के मध्य परस्पर सम्बन्ध होता हैं। तो उसे 'युग्मक' कहते हैं। यदि तीन श्लोकों के मध्य सम्बन्ध हो तो उसे 'सान्दानतिक' कहते हैं। यदि चार श्लोकों के मध्य सम्बन्ध है तो उसे 'विशेषक' कहते है, और उनसे भी अधिक श्लोकों के मध्य सम्बन्ध है तो उसे 'कुलक' कहते है। यहाँ भी 'सोहमाजन्म' इत्यादि श्लोक से 'रघुणामन्वय वक्ष्ये' श्लोक पर्यन्त पांच श्लोकों के मध्य सम्बन्ध है अन्त: यहाँ 'कुलक' है, इन्हें श्लोक के विभाग कह सकते हैं।

पाठगतप्रश्न-4.9

47. कवि कैसे रघुवंश काव्य लेखन में प्रवृत हुए?
48. 'तनुवाग्विभव:'' का विग्रह एवं समास का नाम लिखिए?
49. यहां कुलक का लक्षण कैसे अन्वित हुआ दर्शायें?
50. चार श्लोकों के परस्पर सम्बन्ध को क्या कहते हैं?

    (क) कुलकम् (ख) सान्दानातिकम् (ग) मुक्तक (घ) विशेषक
51. 'वक्ष्ये' यहां कौनसी धातु हैं।

    (क) वद् (ख) वच् (ग) बू (घ) व्रज्

4.11 मूलपाठ की व्याख्या

तं सन्त: श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतव:।
हेम्न: संलक्ष्यते ह्याग्नौ विशुद्धि: श्यामिकापि वा॥10॥

अन्वय- तं सदसद्व्यक्तिहेतव: सन्त: श्रोतुम् अर्हन्ति, हि हेम्न: विशुद्ध: श्यामिका अपि वा अग्नौ संलक्ष्यते।

अन्वयार्थ- तं रघुवंशनामकं प्रबन्धं सदसद्व्यक्तिहेतवः गुणदोषविभागकर्तारः सन्तः विद्वांसः श्रोतुम् आकर्णयितुम् अर्हन्ति योग्या भवन्ति हि यतो हि हेम्नः सुवर्णस्य विशुद्धिः निर्दोषरुपं श्यामिकापि वा लोहान्तरसंसर्गात्मकः दोषः अपि वा अग्नौ वह्नौ संलक्ष्यते संदृश्यते।।

सरलार्थ- रघुवंश प्रबन्ध को बुद्धिमान ही सुनने के योग्य हैं। क्योंकि वे ही काव्य के गुण और दोष को सम्यक् रुप से समझते हैं। सोने की शुद्धि एवं दोष अग्नि मे ही परिलक्षित होते हैं।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक में कालिदास ने रघुवंश काव्य के अधिकारी के विषय में समालोचना की है। सभी रघुवंश काव्य को पढ़ने के योग्य नहीं है। सम्यक् गुण दोष विवेचक ही इसके अधिकारी है। जो गुण दोषों का विवेचन करना नहीं जानते वे दोष स्थान में गुण ग्रहण और गुणस्थान में दोष ग्रहण करते हैं। जिससे काव्य के यथायुक्त अर्थ को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। किन्तु विद्वान् गुण और दोषों को सम्यक् रुप में समझकर यथार्थ को ग्रहण करते हैं। यहाँ कवि एक दृष्टान्त भी देते हैं। सोने की विशुद्धि अथवा दोष सामान्यतया नहीं समझ पाते हैं। किन्तु यदि वह सोना अग्नि में स्थापित होता हैं। तब उसके गुण व दोष परिलक्षित होते हैं। जैसे अग्नि निष्पक्ष रुप से सोने के गुण व दोष को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार विद्वान् भी काव्य के गुण व दोषों को प्रकट करते हैं। इस श्लोक में कवि अपने काव्य के गुण, दोष परीक्षा प्राज्ञ (विद्वान्) ही कर सकते है, यह कहते है। उससे वे प्राज्ञों (विद्वान्) के द्वारा कहे गये दोषों को ग्रहण करेंगे। इससे कालिदास का एक महागुण सूचित होता है।

व्याकरणविमर्श

- **सदसद्व्यक्तिहेतवः**- सच्च असच्च सदसती इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः सदसतोः व्यक्ति सदसद्व्यक्तिः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। सदसद्व्यक्तिः हेतवः सदसद्व्यक्तिहेतवः इति षष्ठीसमासः।
- श्रोतुम् - श्रुधतोः तुमुन्प्रत्यये श्रोतुम् इति रूपम्।
- अर्हन्ति - अर्ह्-धतोः लटि प्रथमपुरुषबहुवचने अर्हन्ति इति रूपम्।
- विशुद्धिः - विपूर्वकात् शुध्-धतोः क्तिन्प्रत्यये विशुद्धिशब्दः निष्पद्यते।
- संलक्ष्यते - सम्-पूर्वकात् लक्ष्-धतोः कर्मणि लटि प्रथमपुरुषैकवचने संलक्ष्यते इति रूपम्।

सन्धिकार्यम्

- श्रोतुमर्हन्ति- श्रोतुम्+अर्हन्ति
- ह्याग्नौ- हि+अग्नौ
- श्यामिकापि - श्यामिका+अपि
- अव्ययपरिचयः- अस्मिन् श्लोके हि, अपि, वा, इति, त्रीणि अव्ययपदानि।

प्रयोगपरिवर्तनम्- सदसद्व्यक्तिहेतुभिः सद्भिः स श्रोतुम् अर्ह्यते। हि हेम्नः विशुद्धिं श्यामिकाम् अपि वा अग्नौ संलक्षयन्ति।

अलंकारालोचना- जैसे अग्नि सोने के गुण दोषों को सम्यक् प्रकाशित करती है। वैसे ही प्राज्ञ (विद्वान्) भी काव्य के गुण व दोष को प्रकाशित करते हैं। यहां विद्वान की अग्नि के साथ उपमिति हैं। उपमान वाचक शब्द 'यथा' हैं। अतः उपमालंकार हैं।

पाठगतप्रश्न-4.10

52. रघुवंश काव्य पढ़ने का अधिकारी कौन है?

53. यहां प्रज्ञा का किसके साथ उपमिति है।

54. सदसदव्यक्तिहेतवः का विग्रह एवं समास का नाम लिखिए।

55. श्लोक में अग्निपद किसका वाचक है।

(क) उपमावाचक (ख) उपमानवाचक (ग) उपमेयवाचक (घ) सादृश्यधर्मवाचक

पाठसार

शिष्ट जन कार्य के निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगल अर्चना करते है। अतः महाकवि कालिदास ने भी काव्य के आदि में मंगलाचरण किया है। यहाँ शब्द और अर्थ का स्पष्ट ज्ञान के लिए वागथौ के समान संयुक्त जगत के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर की वन्दना की है। मंगलविधा के लिए रघुवंश काव्य रचना में अपना असामर्थ्य प्रकट किया है। वह मन्दमति है। अतः जैसे लघु नौका से दुस्तर समुद्र का पार करना असंभव है वैसे ही मन्दमति के द्वारा रघुवंश काव्य रचना दुष्कर होती है। जैसे बौना ऊपर स्थित वस्तु को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता है। वैसे ही कवि भी रघुवंश काव्य की रचना करने में समर्थ नहीं है। किन्तु व्यास वाल्मीकि आदि ने पूर्व में रघुवंश के राजाओं के चरित्र का वर्णन किया। इस कारण यह कार्य कवि के लिए सरल हो गया ऐसा स्वीकार करते हैं। उसके बाद कालिदास ने रघुवंशीय राजाओं का सामान्यतया वर्णन किया। वे जन्म से शुद्ध, फल प्राप्ति पर्यन्त निरन्तर कर्म का सम्पादन करते थे। उनके राज्य की सीमा समुद्र तक थी। वे स्वर्ग के प्रति भी गमन-आगमन करते थे। वे शास्त्रों के अनुसार धर्माचरण करते थे। याचकों के लिए अभीष्ट वस्तु प्रदान करते थे। उनके शासन काल में जो अपराध करता था, वह दण्ड प्राप्त करता था। जब प्रयोजन होता तब वे कार्य के लिए प्रबुद्ध भी थे। वे त्याग के लिए धनसंग्रह, सत्य की रक्षा के लिए मितभाषी, कीर्ति के लिए राज्यों पर विजय, सन्तान के लिए विवाह करते थे। शिशु अवस्था में विद्या का अभ्यास, युवावस्था में विषयों के सुख का अनुभव, वृद्धावस्था में मुनिवत् जीवन यापन करते हैं। जीवन के अन्तिम भाग में योग द्वारा देह त्याग करके मोक्ष प्राप्त करते थे। इस प्रकार उनका जीवन पुरुषार्थ चतुष्ट्य समन्वित था। इस प्रकार ऐसे महाचरित्रों का वर्णन करने में असमर्थ होते हुए भी उनके गुणों से प्रेरित होकर रघुवंश काव्य की रचना की इससे कवि अपनी विनम्रता को भी प्रकट करते है। यह रघुवंश काव्य प्राज्ञ (सदसरव्यक्ति) ही पढने के लिए समर्थ है। क्योंकि वे ही काव्य के दोष व गुण को सम्यक् रुप से ग्रहण करते हैं। जैसे सोने का गुण व दोष अग्नि में ही सम्यक् रुप से परिलक्षित होता हैं।

आपने क्या सीखा

- कालिदास की विनम्रता।
- रघुवंश के राजाओं के विषय में जाना।
- कालिदास की काव्यशैली से परिचित हुए।
- श्लोकों को अन्यय और प्रतिपद अर्थ को जाना।
- उपमादि अलंकारों को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. रघुवंश के मंगलश्लोक की व्याख्या कीजिए।
2. कालिदास ने अपनी असामर्थ्य को कैसे प्रकट किया?
3. रघुवंशीय राजाओं के पुरूषार्यचतुष्ट्य पूर्ण जीवन का वर्णन कीजिए।
4. उपमालंकार के विषय मे लघु टिप्पणी कीजिए।
5. श्लोक कितने प्रकार के होते है उनके भेद का वर्णन कीजिए।
6. रघुवंशीय राजाओं के कोई चार विशेषणों का वर्णन कीजिए।
7. रघुवंशीय राजा जीवन में चतुर्वर्ग को कैसे साधते थे- विचार कीजिए।
8. तं सन्तः -इस श्लोक मे उपमालंकार को स्पष्ट कीजिए।
9. स्तम्भों में लिखित पदों का परस्पर मेल करो

क्र.सं	स्तम्भ (क)	क्र.सं	स्तम्भ (ख)
1.	पार्वतीपरमेश्वरौ	1.	कालिदासः
2.	रघुवंशम्	2.	शैशवे
3.	उडुपम्	3.	वागर्थौ
4.	आनाकरथवर्त्मानः	4.	वार्धके
5.	वज्रम्	5.	सन्तः
6.	विद्याभ्यासः	6.	लघुनौका
7.	मुनिवृत्तिः	7.	सूचीविशेषः
8.	अधिकारी	8.	रघुवंशीयाःनृपाः

उतरः- 1-3, 2-1, 3-6, 4-8, 5-7, 6-2, 7-4, 8-5

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. कवि वागर्थपतिपत्तये पार्वतीपरमेश्वर की वन्दना करते हैं।
2. पार्वतीपरमेश्वर वागर्थौ के समान संयुक्त हैं।
3. माता च पिता च पितरौ इति एकशेष।
4. इस श्लोक मे उपमा अलंकार हैं।
5. (ख)
6. (ग)
7. (ग)
8. (क)
9. (घ)
10. (क)

4.2

11. कवि ने अपनी मति को लघु नौका से उपमित किया और रघुवंश के चरित्र की उपमा कवि ने सागर से की हैं।
12. मोहात् + उडुपेन+ अस्मि
13. तैरने का इच्छुक
14. प्रस्तुत श्लोक में सूर्यवंश दुस्तर समुद्र के समान, अपनी मति को लघु नौका के समान कहा है। अतः सूर्यवंश, स्वमति ये दो उपमेय वाचक पद है। दुस्तर समुद्र और लघुनौका ये दो उपमान वाचक पद हैं। लघुनौका से जैसे दुस्तर समुद्र पार करना असंभव है। वैसे ही कवि की मति से रघुवंशीय चरित वर्णन असंभव है यह सादृश्य है अतः यहाँ उपमा अलंकार है।
15. ग

4.3

16. कवि ने अपने को वामन (बौने) से उपमित किया।
17. ऊपर स्थित वस्तु उन्नत जन से लब्ध है।

18. 'इव' अव्यपद सादृश्य अर्थक हैं।

19. प्रांशुना लभ्यं = प्राशुलभ्यं= तृतीयातत्पुरुष समास, तस्मिन् = प्रांशुलभ्यें

20. ख

4.4

21. वज्रबिद्ध रत्न में सूई की गति निर्बाध होती हैं।

22. वज्र नाम मणिभेदक सूई विशेष का है।

23. सूत्रस्य + इव + अस्ति

24. व्यास वाल्मीकि आदि पूर्व के सूर हैं।

25. क

4.5

26. नाकात् आ आनाकम्- अव्ययीभाव समास, रथस्य वर्त्म रथवर्त्म षष्ठीतत्पुरुषसमास। आनाकं रथवर्त्म येषां ते आनाकरथवर्त्मान :- बहुव्रीहि समास। इसका अर्थ है स्वर्ग पर्यन्त, रघु राजाओं का रथमार्ग था अर्थात् स्वर्ग के प्रति इनका आना जाना रहता था। ये इन्द्र के मित्र थे।

27. रघुवंशीय राजाओं की सीमा समुद्र तक थी।

28. स:+ अहम् + आजन्मशुद्धानाम् + आफलोदयकर्मणाम्

29. क

30. ख

4.6

31. अग्नि दो प्रकार की होती हैं। श्रौताग्नि और स्मार्ताग्नि। श्रौताग्नि के तीन भेद है- दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि एवं गार्ह्यपत्याग्नि। स्मार्ताग्नि भी दो प्रकार की हैं।- शम्याग्नि और आवसथ्याग्नि।

32. अपराधम् अंनतिक्रम्य- यथापराधम् - अव्ययीभाव समास। यथापराध दण्ड: येषा ते = यथापराधदण्डा: = बहुव्रीहिसमास तेषां यथापराधदण्डानाम्। अर्थ -अपराध: कृत: चेत तदपधनुसारेण अपराधकारिभ्य: ते दण्डान् यच्छति स्म। उसके शासन काल में अपराध करने वाला दण्डरहित नहीं था।

33. चार विशेषण रघुवंशीय राजाओं के चार विशेषण हैं।

34. घ

35. ख

36. -2

4.7

37. रघुवंशीय राजा सत्य के लिए मितभाषी थे।

38. मितं स्वल्प भाषणंशीलं येषां ते मितमाषिण: तेषाम् मितभाषिणाम्।

39. रघुवंशीय राजा सन्तान प्राप्ति के लिए ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। और सन्तान प्राप्ति के लिए ही विवाह करते थे।

40. क

41. ग

4.8

42. योग से देह को त्यागते थे।

43. शिशु अवस्था में विद्याभ्यास करते थे।

44. तनुं त्यजन्ति इति तनुत्यज: उपपदसमास तेषां तनुत्यजाम्।

45. ख

46. ग

4.9

47. रघुवंश के गुणों से प्रेरित होकर

48. वाचा विभव: =वाग्विभव: तत्पुरुषसमास, तनु: वाग्विभव यस्य स: तनुवाग्विभव: बहुव्रीहि समास

49. चार श्लोकों से अधिक श्लोकों के परस्पर सम्बन्ध को 'कुलक' कहते हैं।

50. घ

51. ग

4.10

52. सन्त: (विद्वान या प्राज्ञ) रघुवंश काव्य पढने के अधिकारी हैं।

53. प्रज्ञा को अग्नि के साथ उपमिति किया हैं।

54. सच्च असच्च सदसती - इतरेतर द्वन्द्व समास। सदसतो: व्यक्ति: सदसद्व्यक्ति :- षष्ठीतत्पुरुष समास। सदसद्व्यक्ति: हेतव: सदसद्व्यक्तिहेतव: = षष्ठीतत्पुरुष समास

55. ख

5

रघुवंश- राजा दिलीप के गुणों का वर्णन-1

इस पाठ में हम तेरह श्लोकों को पढ़ेंगे यहाँ कवि विषय का कथन आरम्भ करते हैं। सूर्य से रघुवंश की उत्पत्ति हुई। सूर्यवंश का प्रथम राजा मनु थे। उसी वंश में कालक्रम से दिलीप उत्पन्न हुआ। दिलीप ही रघुवंश के प्रथम सर्ग के नायक हैं। इस पाठ में प्रधानतया महाराज दिलीप के देहादिवैशिष्ट्य का वर्णन करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- रघुवंश की उत्पत्ति को जान पाने में;
- महाराज दिलीप के गुणों को जान पाने में;
- कालिदास की काव्यशैली को समक्ष पाने में;
- अलंकारों का समन्वय करने में समर्थ हो पाने में;
- समास व सन्धि को समक्ष पाने में और;
- श्लोकों के अन्वय आदि करने में समर्थ हो पाने में।

5.1 मूलपाठ

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव॥11॥

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव॥12॥

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥13॥

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना॥14॥

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः॥15॥

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृश्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥16॥

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः॥17॥

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥18॥

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता॥19॥

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥20॥

जुगोपात्मानमत्रस्तों भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥21॥

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव॥22॥

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद्वृद्धत्वं जरसा विना॥23॥

5.2 मूलपाठ की व्याख्या

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव॥11॥

अन्वय- मनीषिणां माननीयः छन्दसां प्रणवः इव महीक्षिताम् आद्यः वैवस्वतः नाम मनुः आसीत्।

अन्वयार्थ- मनीषिणां विदुषां माननीयः पूजनीयः छन्दसां वेदानां प्रणव इव ओङ्कार इव महीक्षितां आद्यः प्रथमः वैवस्वतों नाम। वैवस्वत इति नाम्ना प्रसद्धि मनुः प्रजापतिः आसीत् अभवत्।

सरलार्थ- विद्वत्पूज्य भूपतियों में सर्वप्रथम वैवस्वत नाम का मनु हुआ था और वह वेदमंत्रों में ओंकार के समान था।

तात्पर्यार्थ- यहाँ कवि रघुवंश के वर्णन के प्रसंग में सूर्यवंश की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। पुराणों के अनुसार स्वम्भु आदि चौदह मनु थे। उनमें सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु सातवें हैं। इन से सूर्यवंश की उत्पत्ति हुई। इस श्लोक में कवि उनकी पूजनीयता का वर्णन करते हैं। वैवस्वत मनु उसी प्रकार पूजनीय थे क्योंकि दिव्य दृष्टि सम्पन्न मनीषी भी उनमें श्रद्धा करते थे। वे पृथ्वी पर सभी राजाओं के मध्य में प्रथम थे। अर्थात् वे पृथ्वी के प्रथम राजा थे। इसका प्रतिपादन करने के लिए कवि ने उपमा अलंकार का मिश्रण किया- ''छन्दसां प्रणव इव'' अर्थात् छन्दों में प्रणव के समान। जैसे ओंकार वेद मंत्रों में प्रथम है वैसे ही वैवस्वत मनु भी भूपतियों में प्रथम थे। जैसे ओंकार सभी का पूजनीय है वैसे ही वे भी सभी के माननीय थे। यही इस श्लोक का आशय है।

व्याकरणविमर्श

- माननीयः - मानितुं योग्यः इत्यर्थे मानधतोः अनीयर्-प्रत्यये माननीयः इति रूपम्।
- मनीषिणाम् - मनस ईषिणः मनीषिणः। मनीषिन्-शब्दस्य षष्ठीबहुवचने मनीषिणाम् इति रूपम्।
- आसीत् - अस्-धातोः लङि प्रथमपुरुषैकवचने आसीत् इति रूपम्।
- महीक्षिताम् - महीं क्षियन्ति इति महीक्षितः, तेषां महीक्षिताम्। ,तत् षष्ठीबहुवचनान्तं रूपम्
- वैवस्वतः - विवस्वतः अपत्यं वैवस्वतः। विवस्वान् नाम सूर्यः। तस्य पुत्रः वैवस्वतः।

सन्धिकार्य

- वैवस्वतो मनुर्नामः - वैवस्वतः + मनुः + नाम
- माननीयो मनीषिणाम् - माननीयः + मनीषिणाम्
- आसीन्महीक्षितामाद्यः - आसीत् + महीक्षिताम् + आद्यः
- प्रणवश्छन्दसामिवः - प्रणवः + छन्दसाम् + इव

टिप्पणी

प्रयोगपरिवर्तनम् - मनीषिणां माननीयेन छन्दसां प्रणवेन इव महीक्षिताम् आद्येन वैवस्वतेन नाम मनुना अभूयत।

अलंकारालोचना- इस श्लोक में उपमा अलंकार है। यहाँ महीक्षिता एवं वैवस्तव ये दो पद उपमेय वाचक, छन्दसां प्रणवः ये दो उपमान वाचक है, 'इव' उपमावाचक शब्द। यहाँ महीक्षित की छन्द से और वैवस्वत की प्रणव से उपमा की गई है अतः उपमा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.1

(1) मनु और महीक्षिता की किस-किस के साथ उपमा की गई?

(2) लोक में राजाओं के प्रथम कौन हैं?

(3) वैवस्वत का अर्थ क्या है?

(4) मनु कितने थे?

(1) द्वादश, (2) त्रयोदश, (3) चतुर्दर्थं (4) पञ्चदश

(5) वैवस्वत कौन सा मनु था?

(1) षष्ठ (2) सप्तम (3) दशम (4) चतुर्थ

(6) रघुवंश किससे उत्पन्न हुआ?

(1) सूर्य से (2) चन्द्र से (3) बुध से (4) कुरू में

5.2 मूलपाठ की व्याख्या

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव॥12॥

अन्वयः- शुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरः दिलीप इति राजेन्दु क्षीरनिधै इन्दुः इव प्रसूतः।

अन्वयार्थः- शुद्धिमति पवित्रतासम्पन्ने तदन्वये मनुवंशे शुद्धिमत्तरः पवित्रतरः दिलीप इति दिलीपनाम्ना प्रसिद्धः राजेन्दुः भूपचन्द्रः क्षीरनिधौ क्षीरसमुद्रे इन्दुः इव चन्द्र इव प्रसूतः जातः।

सरलार्थः- जैसे चन्द्र ने क्षीरसागर में जन्म प्राप्त किया वैसे ही मनु के पवित्र वंश में दिलीप नामक पवित्रतर राजचन्द्र ने जन्म प्राप्त किया।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में कवि ने रघुवंश के वर्णन प्रसंग में महाराज रघु के पिता के विषय में कहते हैं। जिनका नाम दिलीप था। वह चन्द्रमा से उपमित है। जैसे समुद्र मन्थन के समय क्षीरसागर से चन्द्रमा उत्पन्न हुए वैसे ही पवित्र मनुवंश में पवित्र दिलीप उत्पन्न हुए। चन्द्रमा जिस प्रकार लोगों के मन में आनन्द पैदा करता है। उसी प्रकार दिलीप भी प्रजाजनों के

सुखदायक थे। इस कारण ही दिलीप राजेन्दु राजश्रेष्ठ कहे गये है। मनु वंश नाम सूर्यवंश का ही है। वह तो प्रकृति से ही पवित्र है और भी पुत्रोत्पादन से पहले और बाद में शास्त्रों द्वारा कहे गये गर्भाधान आदि संस्कारों का सम्यक् पालन किया गया है। अतएव उनके पवित्रवंश में पवित्रतर दिलीप ने जन्म ग्रहण किया।

व्याकरणविमर्श

- **तदन्वये** - तस्य अन्वयः तदन्वयः इति षष्ठीतत्पुरूषसमासः, तस्मिन् तदन्वये। एतत् सप्तम्येकवचान्तं पदम्।
- **शुद्धिमति** - प्रशस्ता शुद्धिः अस्मिन् स शुद्धिमान्, तस्मिन् शुद्धिमति। एतदपि सप्तम्येकवचान्तं पदम्।
- **प्रसूतः** - प्रपूर्वकात् सूधातोः क्तप्रत्यये प्रसूत इति रूपं सिध्यति।
- **शुद्धिमत्तरः** - अतिशयने शुद्धिमत्तरः भवति। अत्र शुद्धिमत्-शब्दात् तरप्प्रत्ययः अस्ति।
- **राजेन्दुः** - राजा इन्दुः इव इति विग्रहे राजेन्दुः इति भवति। अत्र उपमेयपदपूर्वककर्मधारयसमासः अस्ति।
- **क्षीरनिधै** - क्षीराणां निधिः क्षीरनिधिः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तस्मिन् क्षीरनिधौ।

सन्धिकार्यम्-

- **दिलीप इति** - दिलीपः + इति
- **राजेन्दुरिन्दुः** - राजेन्दुः + इन्दुः
- **क्षीरनिधविव** - क्षीरनिधौ + इव

प्रयोगपरिवर्तनम्- शुद्धिमति तदप्वये शुद्धिमत्तरेण दिलीपेन इति राजेन्दुना क्षीरनिधै इन्दुना इव प्रसूतम्।

अलंकारालोचना- इस श्लोक में मनुवंश और दिलीप दो पद उपमेय, क्षीरनिधै और इन्दु ये दो पद उपमान, इव उपमावाचक शब्द और प्रसूतः साधरणधर्म है। अतः यहाँ उपमालंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.2

7. इस श्लोक में दिलीप और मनुवंश की किसके साथ उपमा की गई?
8. यहाँ उपमा अलंकार को सिद्ध कीजिए।
9. राजेन्दुः में समास एवं विग्रह लिखिए।
10. दिलीपः किसके समान प्रसूत हुए?

    (1) सूर्य, (2) चन्द, (3) क्षीर निधि, (4) बुध

11. चन्द्रः कहाँ से प्रसूत हुए?

(1) वीरनिधों, (2) तीर निधौ, (3) क्षीर निधौ, (4) नीर निधौ

5.4 मूलपाठ की व्याख्या

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥13॥

अन्वयः- व्यूढोरस्कोः वृषस्कन्धः शालप्रांशु महाभुजः आत्मकर्मक्षमं देहम् आश्रितः क्षात्रः धर्मः इव (स्थितः)।

अन्वयार्थः- व्यूढोरस्कः विपुलवक्षाः वृषस्कन्धः वृषभांसः शालप्रांशुः वृक्षोन्नतः महाभुजः दीर्घबाहुः आत्मकर्मक्षमं स्वकार्यसमर्थ देहं शरीरम् आश्रितः प्राप्तः क्षात्रः क्षत्रियसम्बन्धी धर्मः गुणः इव स्थितः।

सरलार्थः- दिलीप के विशाल वक्षःस्थल वृषभस्कन्ध के सामन स्कन्ध (कन्धे) दीर्घ भुजाएँ थी और वह शाल वृक्ष के समान उच्च था। स्वयं के कार्य करने में समर्थ देह प्राप्त वह क्षात्र धर्म के समान था।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में कालिदास ने रघु के पिता दिलीप का वर्णन किया है। दिलीप के वक्षःस्थल (छाती) विशाल आकार की थी। बैल के कन्धे के समान बलवान कन्धे थे। वृक्षों में शालीवृक्ष अतीव उन्नत (ऊँचा) होता है। दिलीप भी उसी के समान उन्नत थे। उनकी दोनों भुजाएं भी दीर्घ थीं। इस प्रकार उसका शरीर बहुत बलिष्ठ था। दिलीप को देखकर मानते थे कि वह क्षत्रिय धर्म अपने कार्य को सम्पादित करने के लिए एक समर्थ शरीर वाले थे। यहाँ स्वकार्य का अर्थ विपन्न लोगों की रक्षा करना है। क्षात्र का अर्थ एक वीरोचित क्षत्रिय संबंधी धर्म है। वह शरीर को धारण कर दिलीप के रूप में स्थित था। क्षात्रधर्म ने अपने कर्म के योग्य दिलीप की देह को आश्रय बनाया, यह कवि ने उत्प्रेक्षा की है। इसलिए इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

व्याकरणविमर्श

- **व्यूढोरस्का**- व्यूढम् उरः यस्य स व्यूढोरस्कः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **वृषस्कन्ध**- वृषस्य इव स्कन्धः वृषस्कन्धः इति व्यधिकरणबहुव्रीहिसमासः।
- **शालप्रांशु**- शाल इव प्रांशुः शालप्रांशु इति उपमानपदपूर्वककर्मधारयसमासः।
- **महाभुज** - महान्तौ भुजौ यस्य सः महाभुजः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **आत्मकर्मक्षमम्** - आत्मनः कर्म आत्मकर्म इति षष्ठीतत्पुरूषसमासः। आत्मकर्मणि क्षमः आत्मकर्मक्षमः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः, तम् आत्मकर्मक्षमम्। एतत् द्वितीयैकवचनान्तं पदम्।
- आश्रित - आङ्-पूर्वकात् श्रिधतोः क्तप्रत्यये कृते आश्रितः इति रूपं सिध्यति।

सन्धिकार्यम्

- व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः- व्यूढोरस्कः+वृषस्कन्धः
- शालप्रांशुर्महाभुजः- शालप्रांशुः+महाभुजः
- क्षात्रो धर्म इवाश्रितः- क्षात्रः+धर्मः+इव+आश्रितः

प्रयोगपरिवर्तनम्- व्यूढोरस्केन वृषस्कन्धेन शालप्रांशुना महाभुजेन आत्मकर्मक्षमं देहम् आश्रितेन क्षात्रेण धर्मेण इव (स्थितम्)।

अलंकारालोचना- यहाँ महाराज दिलीप की मूर्तिमान क्षात्र-धर्म के रूप में उत्प्रेक्षा की है। क्योंकि महाराज दिलीप अपने गुणों से क्षात्र धर्म के समान प्रतीत होता था अतः यह उत्प्रेक्षा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.3

12. दिलीप के स्कन्ध किसके स्कन्ध के समान थे?

13. शालप्रांशु में कौन सा समास है विग्रह लिखिए?

5.5 मूलपाठ की व्याख्या

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नोतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना॥14॥

अन्वय- सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना। सर्वोन्नतेन आत्माना मेरुः इव उर्वी क्रान्त्वा स्थितः।

अन्वयार्थ- सर्वातिरिक्तसारेण सकलभूतेभ्यः अधिकबलेन सर्वतेजोभिभाविना सर्वभूतानि तेजसा तिरस्कारिणा सर्वोन्नतेन सर्वेभ्य उन्नतेन आत्मना शरीरेण मेरुः इव सुमेरुपर्वतः इव उर्वी पृथ्वीं क्रान्त्वा आक्रम्य स्थितः अविद्यत।

सरलार्थ- दिलीप सभी की अपेक्षा से अधिक बलशाली थे। वह सभी प्राणियों को अपने तेज से तिरस्कृत करते थे। उसका शरीर भी बहुत उन्नत था। अतः वह सम्पूर्ण पृथिवी को अतिक्रान्त करने वाले थे। जैसे सुमेरू पर्वत पृथिवी को अतिक्रान्त करने वाला है।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक में कवि ने महाराजा दिलीप की सुमेरू पर्वत के साथ तुलना की है। सबसे अधिक बलवान, सभी प्राणियों को अपने तेज से तिरस्कृत करने वाला, सबसे उन्नत शरीर वाला आदि दिलीप के गुण कहे गये है। ये सभी गुण सुमेरु पर्वत में भी है। जैसे सुमेरु पर्वत स्तम्भ के समान समग्र पृथिवी की रक्षा करता है। उसी प्रकार दिलीप भी अपने बल से पृथिवी की रक्षा करता है। सुमेरु पर्वत अतीव उन्नत है यह बात पुराण आदि में भी प्रसिद्ध है। महाराज दिलीप उसी प्रकार उन्नत हैं। वह उन्नत चरित्र वाले, महान् तेजस्वी थे उन्होंने अपने

तेज से अन्य सभी राजाओं को पराजित किया। सब में अधिक बलशाली, सभी प्राणियों को तेज से तिरस्कार करने वाले वह पृथिवी का अतिक्रमण करके स्थित थे उसी प्रकार सुमेरु पर्वत पृथिवी का अतिक्रमण करके स्थित है।

व्याकरणविमर्श

- **सर्वातिरिक्तसारेण**- अतिरिक्तः सारः यस्य सः अतिरिक्तसारः इति बहुव्रीहिसमासः। सर्वेभ्यः अतिरिक्तसारः सर्वातिरिक्तसारः इति पञ्चमीतत्पुरुषसमासः, तेन सर्वातिरिक्तसारेण। इदं तृतीयैकवचनान्तं पदम्।
- **सर्वतेजोऽभिभाविना**- तेजसा अभिभवति इति तेजोऽभिभावी। सर्वेषां तेजोऽभिभावी सर्वतेजोऽभिभावी इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेन सर्वतेजोऽभिभाविना। तृतीयैकवचनान्तम् एतत् पदम्।
- **सर्वोन्नतेन**- सर्वेभ्यः उन्नतः सर्वोन्नतः इति पञ्चमीतत्पुरुषसमास, तेन सर्वोन्नतेन।
- **क्रान्त्वा**- क्रम-धातोः क्त्वाप्रत्यये क्रान्त्वा इति रूपं निष्पद्यते। अस्य अव्ययपदवत् प्रयोगः भवति।

सन्धिकार्यम्

- **सर्वोन्नतेनोर्वीम्**- सर्वोन्नतेन+उर्वीम्
- **मेरुरिवात्मना**- मेरुः+इव+आत्मना

अव्ययपरिचय- अत्र इव इति अव्ययपदं वर्तते।

प्रयोगपरिवर्तनम्- सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना मेरुणा इव उर्वी क्रान्त्वा स्थितम्।

अलंकारालोचना- महाराज दिलीप सुमेरु पर्वत के साथ उपमित है। अतः दिलीप उपमेय है और सुमेरु पर्वत उपमान है। इव उपमावाचक शब्द। जो गुण दिलीप में थे वे सुमेरु पर्वत में भी थे यह सादृश्य है। अतः इसमें उपमालंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.4

14. दिलीप की किस पर्वत के साथ उपमा की है?
15. सर्वातिरिक्तसारः का विग्रह कर समास का नाम लिखें।
16. सुमेरु पर्वत किसे अतिक्रान्त करके स्थित है?

5.6 मूलपाठ की व्याख्या

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः॥15॥

अन्वय:- आकारसदृशप्रज्ञ: प्रज्ञया सदृशागम: आगमै: सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदय: (आसीत्)।

अन्वयार्थ:- (स:) आकारसदृशप्रज्ञ: मुर्तितुल्यबुद्धि: प्रज्ञया बुद्धया सदृशागम: समानशास्त्रपरिश्रम: आगमै: शास्त्रै: सदृशारम्भ तुल्यकर्मा आरम्भसदृशोदय: कर्मसदृशफलसिद्धिश्च (आसीत्)।

सरलार्थ:- दिलीप की बुद्धि उसकी देहाकृति के समान थी। उसका शास्त्र ज्ञान भी बुद्धि के अनुरुप था। शास्त्रज्ञान के अनुसार ही वे कर्म अनुष्ठान करते थे। जैसा वह कर्म करते थे वैसा ही फल प्राप्त होता था।

तात्पर्यार्थ:- लोक में शरीर विशेष को देखकर प्राय: मनुष्यों के गुणों का अनुमान लगा लेते हैं। दिलीप का शरीर भी वैसा ही था। उसका शरीर जिस प्रकार सुन्दर था उसी प्रकार उसकी बुद्धि अपरिमेय थी। इस प्रकार की बुद्धि के कारण वह वेदादि शास्त्र को सम्यक्रुप पढ़ व ग्रहण चुके थे। केवल शास्त्र पढ़ने से कुछ सिद्ध नहीं होता। अपितु शास्त्रोक्त विधि से जीवन में आचरण भी होता है। अत: दिलीप शास्त्रविहित कर्मो को अपने जीवन में यथार्थ रुप से आचरण करते थे तथा कर्मो के आचरण करने से कर्म का फल भी प्राप्त करते थे। इस प्रकार दिलीप न केवल शास्त्रों को पढ़ते थे अपितु पढ़कर उन शास्त्रोक्त वचनों को जीवन में उसी प्रकार प्रयोग करके उनके समान फल भी प्राप्त करते थे।

व्याकरणविमर्श

- आकारसदृशप्रज्ञ:- सदृशी प्रज्ञा यस्य स: सदृशप्रज्ञ: इति बहुव्रीहिसमास:। आकारेण सदृशप्रज्ञ: आकारसदृशप्रज्ञ: इति तृतीयातत्पुरुषसमास:।
- सदृशागम:- सदृश: आगम: यस्य स: सदृशागम: इति बहुव्रीहिसमास:।
- सदृशारम्भ:- सदृश: आरम्भ: यस्य स: सदृशारम्भ: इति बहुव्रीहिसमास:।
- आरम्भसदृशोदय:- सदृश: उदय: यस्य स: सदृशोदय: इति बहुव्रीहिसमास:। आरम्भेण सदृशोदय: आरम्भसदृशोदय: इति तृतीयातत्पुरुषसमास:।

प्रयोगपरिवर्तनम्- (तेन) आकारसदृशप्रज्ञेन प्रज्ञया सदृशागमेन आगमै: सदृशारम्भेण आरम्भसदृशोदयेन (अभूयत)।

पाठगतप्रश्न-5.5

17. आगम व आरम्भ शब्द का अर्थ क्या है?
18. दिलीप की प्रज्ञा (बुद्धि) कैसी थी?
19. आकारसदृशप्रज्ञ: का विग्रह व समास लिखें?
20. सदृशारम्भ: का विग्रह क्या है।

    (1) सदृशस्य आरम्भ, (2) सदृश: आरम्भ: (3) सदृश: आरम्भ:यस्य, (4) सदृश च आरम्भ: च।

5.7 मूलपाठ की व्याख्या

भीमकान्तैर्नृपुगणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृश्यश्चाधिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥16॥

अन्वयः- भीमकान्तैः नृपगुणैः स उपजीविनाम् यादोरत्नैः अर्णव इव अधृष्यः अभिगम्यश्च बभूव।

अन्वयार्थः- भीमकान्तैः भयङ्करमनोहरैः नृपगुणैः राजगुणैः स दिलीपः उपजीविनाम् आश्रितानां यादोरत्नैः जलजीवमणिभिः अर्णव इव समुद्र इव अधृष्यः अनभिगम्यः अभिगम्यः आश्रयणीयः च बभूव भवति स्म।

सरलार्थः- दिलीप में शौर्यादि भयंकर गुण थे। वह आश्रितों, सचिवों व सेवकों आदि के लिए अनभिगम्य थे। औदार्य, प्रजा वात्सल्य इत्यादि मनोहारी गुण भी थे। वे उपजीवियों द्वारा सेवनीय थे। जैसे समुद्र गम्भीर तरंग मकर आदि से भीषण है, किन्तु रत्नों के द्वारा सेवनीय भी है।

तात्पर्यार्थः- दिलीप में प्रताप आदि तीक्ष्ण गुण थे। उपजीवि इस कारण से डरते थे। किन्तु औदार्य आदि मनोहर गुण भी थे। आश्रित उनकी सेवा करते थे। वस्तुत वे प्रभु के रूप में हो गये थे। यदि राजा प्रभु प्रताप आदि गुणों से रहित होता है, तो प्रजा उसके आदेश की पालन नहीं करते हैं। जिससे राज्य की हानि होती है। राजा में एक भी मनोहारी गुण नहीं हो, तो राजा सम्पूर्ण रूप से भीषण होता है तो प्रजा विरूद्ध हो जाती है। इससे तो राजा की हानि ही होती है। इस प्रकार राजा और राज्य दोनों की हानि की सम्भावना होती है। अतः प्रभु में भीषणता और मनोहारी दोनों ही प्रकार के गुणों की अपेक्षा होती है। दिलीप में दोनों प्रकार के गुण थे। कवि ने एक दृष्टान्त भी दिया है। जैसे समुद्र में भीषण तरंग और मकरादि भयंकर जीव भी देखे जाते हैं। फिर भी समुद्र से रत्न प्राप्त होते हैं। उन रत्नों से लोगों के मन में आनन्द पैदा होता है। जिस प्रकार समुद्र भयंकर व मनोहारी दोनों ही प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार दिलीप में भी भयंकर एवं मनोहारी गुणों का मिश्रण था।

व्याकरणविमर्श

- **भीमकान्तैः**- भीमाः च कान्ताः भीमकान्ताः इति कर्मधारयसमासः, तैः भीमकान्तैः। तृतीयाबहुवचनान्तं पदम् इदम्।
- **नृपगुणैः** - नृपस्य गुणाः नृपगुणाः इति शष्ठीतत्पुरुषसमासः, तैः नृपगुणैः।
- **उपजीविनाम्**- उपजीवन्ति इति उपजीविनः, तेषाम् उपजीविनाम्। शष्ठीबहुवचनान्तं रूपम् इदम्।
- **अधृष्यः** - न धृष्यः अधृष्यः इति नञतत्पुरुषसमासः।
- **अभिगम्यः** - अभिपूर्वकात् गम्-धतोः यत्प्रत्यये कृते अभिगम्यः इति रूपम्। अभिगन्तुं योग्यः इत्यर्थः।

- **यादोरत्नैः** - यादांसि च रत्नानि च यादोरत्नानि इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः, तैः यादोरत्नैः।
- **बभूव**- भूधातोः लिट्-लकारे प्रथमपुरुषैकवचने बभूव इति रूपम्।

सन्धिकार्यम्

- **भीमकान्तैर्नृपगुणैः**- भीमकान्तैः+नृपगुणैः
- **बभूवोपजीविनाम्**- बभूव+उपजीविनाम्
- **अधृष्यश्चाधिगम्यश्च**:- अधृष्यः + च : अधिगम्यः + च
- **यादोरत्नैरिवार्णवः**- यादोरत्नैः + इव + अर्णवः

प्रयोगपरिवर्तनम्-भीमकान्तैः नृपगुणैः तेन उपजीविनां यादोरत्नैः अर्णवेन इव अधृष्येण अभिगम्येन बभूवे।

अलंकारालोचना- यहाँ कवि के द्वारा दिलीप के वर्णन के लिए समुद्र का दृष्टान्त दिया है जैसे समुद्र मकरादि से भीषण व रत्नादि से मनोरम था उसी प्रकार दिलीप भी शौर्यदि तीक्ष्ण गुणों से भीषण और प्रजा वात्सल्य आदि मनोहारी गुणों से मनोरम थे। अतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.6

21. दिलीप किस प्रकार उपजीवियों के लिए अधृश्य व अभिगम्य थे?
22. इस श्लोक में कौन सा अलंकार है?
23. अधृश्यश्चाभिगम्य का संधिविच्छेद कीजिए।

5.8 मूलपाठ की व्याख्या

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः॥17॥

अन्वय- नियन्तु तस्य नेमिवृत्तयः प्रजाः आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परं रेखामात्रम् अपि ने व्यतीयुः

अन्वयार्थ- नियन्तुः शिक्षकस्य सारथेश्च तस्य दिलीपस्य नेमिवृत्तयः चक्रधाराव्यापाराः प्रजाः जनाः आमनोः मनुम् आरभ्य क्षुण्णात् अभ्यस्तात् प्रचलितात् च वर्त्मनः आचारपद्धतेः मार्गात् च परम् अधिकं रेखामात्रम् अपि रेखाप्रमाणम् अपि न व्यतीयुः न अतिक्रान्तवत्यः।

सरलार्थ- निपुण सारथि जिस रथ को चलाता है उस रथ के चक्र पहले विद्यमान चक्र की रेखा का अतिक्रमण नहीं करते हैं। इसी प्रकार दिलीप की प्रजा भी मनु के काल से शुरू आचरण का उल्लंघन नहीं करते थे।

टिप्पणी

तात्पर्यार्थः- इस पद्य में कवि राज्य के परिचालन में दिलीप की निपुणता का कथन करते हैं। दिलीप वैवस्वत मनु के वंश में हुए थे। अतः वह मनु के वचनों का श्रद्धा से पालन करते थे। उन्हीं के अनुसार ही राज्य का शासन किया। मनु ने सत्ययुग में मनुस्मृति लिखी। दिलीप त्रेतायुग में हुए थे। इन दोनों के मध्य काल का बड़ा अन्तर था। फिर भी राजा दिलीप और उसकी प्रजा मनु द्वारा प्रदर्शित मार्ग का उसी रूप में अनुसरण करती थी। सभी सारथी रथ को चलाते हैं। किन्तु निपुण सारथी रथ को चलाता है तो रथ से पूर्व में की गई चक्र की रेखा का अनुकरण करते हैं, कभी भी व्यतिक्रम नहीं करते। सभी सारथी वैसा करने में पारंगत नहीं होते। दिलीप भी राज्यशासन में निपुण थे। वे अपने राज्य का सम्यक् रूप से संचालन करते थे। उसके तथा उसकी प्रजा के द्वारा कभी भी मनु के वचनों का उल्लंघन नहीं किया।

व्याकरणविमर्श

- **रेखामात्रम्**- रेखा प्रमाणम् यस्य इति अर्थे रेखामात्रम् इति रूपं भवति।
- **क्षुण्णात्** - क्षुद्-धतोः क्तप्रत्यये क्षुण्णः इति रूपं तस्मात् क्षुण्णात्। ,तत् पञ्चम्येकवचनान्तं पदम्।
- **आमनोः**- आङ्-पूर्वकात् मनुशब्दात् पञ्चमीविभक्तौ आमनोः इति रूपं सिधायति। मनुम् आरभ्य इत्यर्थः।
- **वर्त्मनः**- वर्त्मन्-शब्दस्य पञ्चमीविभक्त्यैकवचने वर्त्मनः इति रूपम्। वर्त्म नाम मार्गः।
- **व्यतीयुः**- वि पूर्वकात् अति-पूर्वकात् इण्-धतोः लिटि व्यतीयुः इति रूपम्।
- **नियन्तुः**- नियच्छति इति नियन्ता, तस्य नियन्तुः।
- **नेमिवृत्तयः**- नेमीनाम् इव वृत्तिः यासां ता नेमिवृत्तयः इति बहुव्रीहिसमासः।

सन्धिकार्यम्

- **रेखामात्रमपि**- रेखामात्रम् + अपि
- **क्षुण्णदमनोर्वर्त्मनः**- क्षुण्णात् + आमनोः + वर्त्मनः
- **प्रजास्तस्य**- प्रजाः + तस्य
- **नियन्तुर्नेमिवृत्तयः**- नियन्तुः + नेमिवृत्तयः

प्रयोगपरिवर्तनम्- नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तिभिः प्रजाभिः आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परः रेखामात्रः अपि न व्यतीये।

अलंकारालोचना- इस श्लोक मे दिलीप निपुण सारथी के रूप में उपमित है। उसकी प्रजा नेमि से उपमित है। अतः दिलीप और उसकी प्रजा उपमेय है। निपुण सारथी उसके रथ का नेमि उपमान है। न उलंघितवन्त सादृश्य ज्ञान है। अतः यहाँ उपमालंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.7

24. रथ का चक्र किसका अतिक्रमण नहीं करता?

25. ''क्षुण्णादामनोर्वत्मान'' सन्धि विच्छेद कीजिए।

26. प्रस्तुत श्लोक का अन्वय लिखिए।

5.9 मूलपाठ की व्याख्या

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥18॥

अन्वय- सः प्रजानां भूत्यर्थम् एव ताभ्यो बलिम् अग्रहीत्। हि रविः सहस्रगुणम् उत्स्रष्टं रसम् आदत्ते।

अन्वयार्थ- स दिलीपः प्रजानां जनानां भूत्यर्थं वृद्ध्यर्थं ताभ्यः प्रजाभ्यः बलिं करम् अग्रहीत् गृहीतवान्। हि तथा हि रविः सूर्यः सहस्रगुणं सहस्रधा उत्स्रष्टुं दातुं रसं जलम् आदत्ते गृह्णाति।

सरलार्थ- प्रजा के कल्याण के लिए दिलीप उनसे कर ग्रहण करते थे। न कि अपने उपयोग के लिए। जैसे सूर्य हजारों गुणा जल के बदले में पृथ्वी से जल को ग्रहण करता है।

तात्पर्यार्थ- महाराज दिलीप राज्य के निवासी प्रजाजनों के कल्याण के लिए उनसे कर ग्रहण करते थे। एक व्यक्ति जो उत्पादन करता है, उसके छः भाग किये जाते हैं तो उनमें से एक भाग को राजा कर के रूप में ग्रहण करता है। इस प्रकार की बलि को राजा अपने उपभोग के लिए प्रयोग में नहीं लेते थे। कर रूप में ग्रहण धन को राजकोष में संग्रह करते हैं। वह प्रजा की ही सम्पत्ति है। प्रयोजन होने पर राजा उस धन को प्रजाकल्याण के लिए देता है। दिलीप का कर संग्रह कैसा था, इस विषय में कवि ने उपमा दी है। सूर्य सम्पूर्ण वर्ष भर पृथ्वी के जल को सोखता हैं। ग्रीष्मकाल में पृथिवी जल के अभाव में शुष्क होती है। तब सूर्य हजार गुणा जल वर्षा के रूप में प्रदान करता है। इस प्रकार सूर्य जल को शोषण स्वयं के उपयोग के लिए नहीं करता है। अपितु अधिक जल के बदले में ही वह पृथिवी के जल को स्वीकार करता है। इसी प्रकार दिलीप भी प्रजा के कल्याण के लिए कर ग्रहण करता था।

व्याकरणविमर्श

- **भूत्यर्थम्-** भूत्यै इदम् इति विग्रहे भूत्यर्थम् इति रूपम्। अत्र नित्यसमासः वर्तते।
- **अग्रहीत्** - ग्रह्-धातोः लुङि: प्रथमपुरुषैकवचने अग्रहीत् इति रूपम्।
- **सहस्रगुणम्** - सहस्रं गुणा यस्मिन् तत् यथा तथा इति विग्रहे सहस्रगुणम् इति रूपम्। अत्र बहुव्रीहिसमासः अस्ति।

टिप्पणी

- **उत्स्रष्टुमः** - उत्-पूर्वकात् सृज्धातोः तुमुन्-प्रत्यये उत्स्रष्टुम् इति रूपम्। उत्सर्जनाय इत्यर्थः।
- **आदत्ते:**- आङ्-पूर्वकात् दाधातोः लटि प्रथमपुरुषैकवचने आदत्ते इति रूपम्।

सन्धिकार्यम्-

- **प्रजानामेव**- प्रजानाम् + एव
- **स ताभ्यो बलिमग्रहीत्** - सः + ताभ्यः + बलिम् + अग्रहीत्
- सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते - सहस्रगुणम्+उत्स्रष्टुम्+आदत्ते

प्रयोगपरिवर्तनम्- तेन प्रजानां भूत्यर्थम् एव ताभ्यः बलिः अगृह्यत। हि रविणा सहस्रगुणम् उत्स्रष्टुं रसः आदीयते।

अलंकारालोचना- यहाँ कवि ने दिलीप को सूर्य के साथ उपमित किया है। जैसे सूर्य जल ग्रहण करके हजार गुणा जल लौटाता है। उसी प्रकार दिलीप भी प्रजा से कर का संग्रह करते हैं। वे उसके बाद कर के रूप में संग्रहीत धन प्रजा के कल्याण के लिए प्रयुक्त करते थे। यह सादृश्य है। अतः दिलीप उपमेय व सूर्य उपमान है अतः यहां उपमालंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.8

27. दिलीप कैसे बलि को ग्रहण करते थे?
28. प्रस्तुत श्लोक में कौन सा अलंकार है?
29. कवि ने दिलीप के कर संग्रहण के विषय में क्या कहा?

5.10 मूलपाठ की व्याख्या

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता॥19॥

अन्वयः- तस्य सेना परिच्छदः (बभूव) शास्त्रेषु अकुण्ठिता बुद्धिः, धनुषि आतता मौर्वी च द्वयम् ,व अर्थसाधनं (बभूव)।

अन्वयार्थः- तस्य दिलीपस्य सेना सैन्यं परिच्छदः उपकरणं बभूव। शास्त्रेषु राजशास्त्रेषु अकुण्ठिता अव्याहता बुद्धिः मतिः धनुषि चापे आतता आरोपिता मौर्वी च ज्या च द्वयम् एव बभूव द्वे एवं अर्थसाधनं प्रयोजनकरणम् अभवत्।

सरलार्थ- दिलीप के सैन्यबल तो केवल उपकरण मात्र थे। उससे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। शास्त्रों में अपरिमित ज्ञान और धनुष पर आरोपित प्रत्यञ्चा से ही दिलीप के प्रयोजन सिद्ध होते थे।

तात्पर्यार्थः- राजनीतिशास्त्र में कहा गया है **असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाः पार्थिवाः।** अर्थात् असंतुष्ट ब्राह्मण और सन्तुष्ट राजा नष्ट हो जाते हैं। राजा अपनी सम्पत्ति से संतुष्ट हो तो उसका नाश निश्चित है। अतः राजा को राज्यों की विजय आदि करना चाहिए। इसी कारण से दिलीप भी दूसरे राज्यों को जीतने के लिए जाते थे। युद्ध के लिए उनका महान् सैन्यबल भी था किन्तु राजा युद्ध के समय में उसे प्रयुक्त नहीं करते थे। छत्र-चामर आदि जैसे उसके उपकरण थे उसी प्रकार सैन्यबल भी उसके उपकरण मात्र थे। शास्त्रों में अपरिमित बुद्धि तथा धनुष पर आरोपित ज्याया प्रत्याञ्चा से ही उसके प्रयोजन सिद्ध होते थे। दिलीप अनेक प्रकार के शास्त्रों में महापण्डित थे। वह नीतिशास्त्र विशारद थे। उसके धनुष पर आरोपित प्रत्यञ्चा अप्रतिरोधक थी। अतः शास्त्रपाण्डित्य और धनुष पर आरोपित प्रत्यञ्चा ही उसके प्रयोजन को सिद्ध करते थे।

व्याकरणविमर्शः-

- **अर्थसाधनम्ः**- अर्थस्य साधनम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
- **अकुण्ठिताः**- न कुण्ठिता अकुण्ठिता इति नञ्तत्पुरुसमासः।
- **धनुषिः**- धनुष्-शब्दस्य सप्तम्येकवचने धनुषि इति रूपम्।
- **आतताः**- आङ्-पूर्वकात् तन्-धतोः क्तप्रत्यये स्त्रियां टापि आतता इति रूपम्

सन्धिकार्य

- **परिच्छदस्तस्य**- परिच्छदः+तस्य
- **द्वयमेवार्थसाधनम्** - द्वयम्+एव+अर्थसाधनम्
- **शास्त्रेष्वकुण्ठिता** - शास्त्रेषु+अकुण्ठिता
- **बुद्धिर्मौर्वी** - बुद्धिः+मौर्वी
- **चातता** - च+आतता।

प्रयोगपरिवर्तनम्- सेनया परिच्छदेन बभूवे। अर्थसाधनं शास्त्रेषु अकुण्ठितया बुद्धया, धनुषि आततया मौर्व्या च द्वयेन एवं बभूवे।

पाठगतप्रश्न-5.9

30. दिलीप के दो अर्थ साधन क्या थे?
31. दिलीप की सेना क्या थी?
32. शास्त्रेषु + अकुण्ठिता का संधि कीजिए।

टिप्पणी

5.11 मूलपाठ की व्याख्या

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ॥ 20॥

अन्वयः- संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्तिस्य च तस्य प्रारम्भाः संस्कारा इव फलानुमेयाः (आसन्)।

अन्वयार्थः- संवृतमन्त्रस्य गुप्तविचारस्य गूढाकारेङ्तिस्य गुप्ते आकारेङ्ते यस्य च तस्य दिलीपस्य प्रारम्भाः कर्माणि प्राक्तनाः प्राचीनाः संस्काराः इव पूर्वकर्मवासनाः इव फलानुमेयाः कार्येण अनुमातुं योग्याः आसन्।

सरलार्थः- दिलीप अत्यन्त गूढ मन्त्रणा करते थे। आकार और चेष्टा से उनके मनोभाव का ज्ञान नहीं होता था। जैसे मनुष्य की प्रवृत्ति को देखकर पूर्व जन्म के संस्कारों का ज्ञान होता है। उसी प्रकार फल को देखकर दिलीप के मनोभाव क्या थे, यह पता लगता था।

तात्पर्यार्थः- गूढ मन्त्रणा ही करनी चाहिए, यह राजनीति का नियम है। किसी भी कारण से मन्त्रणा प्रकट होती है, तो समग्र राज्य की हानि होती है। अतः दिलीप अत्यधिक गोपनीयता से मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करते थे। चेष्टादि को देखकर भी जन उसके साम-दाम आदि उपायों को जानने में समर्थ नहीं थे। जब कार्य सिद्ध हो जाता था, तब ही सभी दिलीप के मनोगत मन्त्रणा को जानते थे। इस सामर्थ्य के लिए कवि ने उपमान भी दिया। पूर्व जन्म में हमारे द्वारा पुण्य पापादि अनेक कर्म किये गये थे। वे ही कर्म इस जन्म में संस्कार के रूप में होते हैं। किन्तु साधारणतया वे संस्कारों को नहीं समझ पाते हैं। जब हम व्यक्तियों की प्रवत्तियों को देखते हैं, तब ही वे संस्कार प्रतीत होते हैं क्योंकि पुण्य कर्म करने वाले ही सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। पाप कर्म करने वाले ही दुष्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। पापकर्म करने वाले असत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार कार्य सिद्धि को देखकर दिलीप की मन्त्रणा का अनुमान होता था।

व्याकरणविमर्श

- **संवृतमन्त्रस्य**- संवृतः मन्त्रः यस्य स संवृतमन्त्र- इति बहुव्रीहिसमासः, तस्य संवृतमन्त्रस्य।
- **गूढाकारेङ्तिस्य** - आकारः च इङ्गितं च आकारेङ्गिते इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः। गूढे आकारेङ्ते यस्य स गूढाकारेङ्गितः इति बहुव्रीहिसमासः, तस्य गूढाकारेङ्गितस्य।
- **फलानुमेया** - फलेन अनुमेयाः फलनुमेयाः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

सन्धिकार्यम्-

- **प्राक्तना इव** - प्राक्तनाः + इव
- **प्रयोगपरिवर्तनम्** - संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च तस्य प्रारम्भैः प्राक्तनैः संस्कारैः इव फलानुमेयैः (अभूयत)।

अलंकारालोचना- यहाँ दिलीप के साम, दाम आदि उपाय पूर्व के संस्कारों का अनुमान कराते हैं। अतः साम, दाम आदि उपाय उपमेय हैं। प्राक्तना संस्कार उपमान हैं, इव उपमावाचक शब्द है, अतः उपमा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-5.10

33. दिलीप के प्रारम्भ की किसके साथ उपमा की गई है।

34. गूढाकारेङ्गितस्य का विग्रह और समास लिखें।

5.12 मूलपाठ की व्याख्या

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ 21॥

अन्वय- सः अत्रस्तः आत्मानं जुगोप, अनातुरो धर्मं भेजे, अगृध्नुः अर्थम् आददे, असक्तः सुखम् अन्वभूत्।

अन्वयार्थ- सः दिलीपः अत्रस्तः भीतरहितः आत्मानं शरीरं जुगोप रक्षितवान्। अनातुरः अरुग्णः सन् धर्मं सुकृतं भेजे सेवितवान्। अगृध्नुः लोभरहितः सन् अर्थं धनम् आददे स्वीकृतवान्, असक्त, आसक्तिरहितः सन् सुखं विषयानन्दम् अन्वभूत् अनुभूतवान्।

सरलार्थ- दिलीप भय रहित होकर अपनी रक्षा करते थे। रोग रहित रहकर धर्म करते थे। लोभ रहित होकर धनोपार्जन करते थे, आसक्तिरहित होकर सुख का अनुभव करते थे।

तात्पर्यार्थ- यहाँ कवि सामान्य जन के साथ दिलीप का भेद प्रदर्शित करते हैं। धर्म-अर्थ-काम मोक्ष इन चारो पुरुषार्थो के लिए शरीर ही प्रधान साधन है। शरीर के बिना कुछ भी धर्माचरण करने में समर्थ नहीं है। लोक में सभी किसी आपत्ति से डरकर शरीर की रक्षा करते हैं। किन्तु दिलीप पुरुषार्थ सिद्धि के लिए अपने शरीर की रक्षा करते थे। प्रायः लोग जब रोग से ग्रसित होते है अथवा वृद्ध होते है तब ही धर्म का सेवन करते हैं। किन्तु दिलीप रोग रहित भी धर्माचरण करते थे। लोक में लोग धन प्राप्ति के लिए बहुत अधिक प्रवृत देखे जाते हैं। वे सभी धन लोलुप होते हैं। लोभ के वशीभूत वे धन लाभ के लिए प्रवृत होते हैं। किन्तु दिलीप लोभ के कारण नहीं, अपितु प्रजा के कल्याण के लिए धन का अर्जन करते थे। दिलीप विषयसुख में आसक्ति रहित थे। आसक्ति रहित भी सुख का अनुभव करते थे। आसक्त व्यक्ति को ही सुख-दुःख होता है किन्तु दिलीप अनासक्त थे। अतः वे सुख-दुःख से दूर स्थित थे।

व्याकरणविमर्श

- **जुगोपः**- गुप् - धातोः लिट्लकारे जुगोप इति रूपम्। रक्षितवान् इत्यर्थः।
- **अत्रस्तः**- न त्रस्तः अत्रस्तः इति नञ्तत्पुरुषसमासः।
- **भेजेः**- भज्-धातोः लिट्लकारे प्रथमपुरुषस्य एकवचने भेजे इति रूपम्। सेवितवान् इत्यर्थः।
- **अनातुरः** - न आतुरः अनातुरः इति नञ्तत्पुरुषसमासः।

- **अगृध्नुः** - न गृध्नुः इति नञतत्पुरूषसमासः।
- **आददे:** - आङ्-पूर्वकात् दाधतोः लिट्लकारे आददे इति रूपम्।
- **असक्तः** - न सक्त इति असक्तः इति नञ्तत्पुरूषसमासः।
- **अन्वभूत्** - अनुपूर्वकात् भूधातोः लुङ्-लकारे प्रथमपुरुषस्य एकवचने अन्वभूत इति रूपम्।

सन्धिकार्य-

- **जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे** - जुगोप + आत्मानम् + अत्रस्तः + भेजे
- **धर्ममनातुरः** - धर्मम् + अनातुरः
- **अगृध्नुराददे** - अगृध्नुः + आददे
- **सोर्थमसक्तः** - सः + अर्थम् + असक्त
- **सुखमन्वभूत्** - सुखम् + अन्वभूत्
- **प्रयोगपरिवर्तनम्** - तेन अत्रस्तेन आत्मा जुगुपे, अनातुरेण धर्मः भेजे, अगृध्नुना अर्थः आददे, असक्तेन सुखम् अन्वभूयत।

पाठगतप्रश्न-5.11

35. दिलीप कैसे धर्म-अर्थ-काम का सेवन करते थे?

36. पुरुषार्थ का प्रधान साधन क्या है?

37. जुगोपात्मानमत्रस्तोभेजे का सन्धि विच्छेद कीजिए।

38. दिलीप ने शरीर की कैसे रक्षिता की।

    (1) वह शत्रुओं से डरते थे। (2) वह मृत्यु के भयभीत थे। (3) वह पुरुषार्थो का साधना चाहते थे। (4) वह जाराग्रस्त थे।

5.13 मूलपाठ की व्याख्या

ज्ञाने मौनं, क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव॥ 22॥

अन्वय- ज्ञाने मौनं, शक्तौ क्षमा, त्यागे श्लाघाविपर्ययः, (इत्थम्) तस्य गुणाः गुणानुबन्धित्वात् सप्रसवा इव (अभूवन्)।

अन्वयार्थ- ज्ञाने (सती अपि) परवृत्तान्तं ज्ञात्वा अपि मौनं मुनिभावः शक्तौ सामर्थ्ये क्षमा तितिक्षा त्यागे वितरणे श्लाघाविपर्ययः प्रशंसाभावः (इत्थम् अनेन प्रकारेण) तस्य दिलीपस्य

गुणाः ज्ञानादयः गुणानुबन्धित्वात् विरुद्धगुणानां मौनादीनां सहचारात् सप्रसवाः इव सहोदराः इव अभूवन्।

सरलार्थ- दिलीप का ज्ञान मौन भाव के साथ था। शक्ति या सामर्थ्य के साथ क्षमा भाव था। त्याग तो आत्मप्रशंसा रहित होती थी। इस प्रकार उसके ज्ञान आदि गुण मौन आदि से विरोधी गुणों के साथ सहोदर के समान होते थे।

तात्पर्यार्थ- यहाँ भी कवि ने दिलीप के लोक इतर चरित का वर्णन करते हैं लोक में प्रायः कोई भी व्यक्ति ज्ञानी होता है तो उसमें मुनि भाव का समाश्रित नहीं होता। किन्तु दिलीप दूसरों के वृतान्त को जानकर भी मुनिवत् ही रहते थे। वस्तुतः यह ही राजा का लक्षण है। राजा यदि पण्डित होकर भी मौन नहीं रहता तो उसकी हानि होती है। इस कारण शास्त्रादि में मुखर राजा भी अनेक बार निन्दित होते हैं। दिलीप सामर्थ्यवान् होने पर भी क्षमाशील थे। सामर्थ्यवान् होने पर क्षमा प्रशंसनीय होती है। अतः दुर्बल यदि क्षमा करते हैं तो वह प्रशंसा योग्य नहीं होते। इस कारण मनुस्मृति में कहा है – "शक्तानां भूषणं क्षमा"। लोक में लोग त्याग करके घोषणा करते हैं। किन्तु दिलीप दान आदि कर्म करके भी कहते नहीं थे। उनको प्रशंसा अभीष्ट नहीं थी। वस्तुतः ज्ञान आदि, गुण मौन आदि गुण परस्पर विरुद्ध होते हैं। किन्तु दिलीप में ये सभी गुण थे। अतः दिलीप में ये विरुद्ध गुण भी सहोदर के समान थे।

व्याकरणविमर्श -

- **मौनम्**:- मुनेः भावः मौनं भवति।
- **श्लाघाविपर्ययः**:- श्लाघायाः विपर्ययः श्लाघाविपर्ययः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
- **गुणानुबन्धित्वात्**:- गुणैः अनुबंधित्वं गुणानुबन्धित्वम् इति तृतीयातत्पुरुषसमासः, तस्मात् गुणानुबन्धित्वात्। एतत् पञ्चम्येकवचनान्तं पदम्।
- **सप्रसवाः**:- सह प्रसवः येषां ते सप्रसवाः इति बहुव्रीहिसमासः। प्रसवः नाम जन्म।

सन्धिकार्य

- **गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य**:- गुणाः + गुणानुबन्धित्वाद् + तस्य
- **सप्रसवा इवः**:- सप्रसवाः + इव
- **प्रयोगपरिवर्तनम्**:- ज्ञाने मौने शक्तौ क्षमया त्यागे श्लाघाविपर्ययेण तस्य गुणैः गुणानुबन्धित्वात् सप्रसवैः इव अभूयत।

पाठगतप्रश्न-5.12

39. दिलीप का ज्ञान किस गुण के साथ था।

40. ज्ञान आदि गुण किन गुणों के साथ सहोदर के समान थे।

टिप्पणी

41. किस की क्षमा प्रशंसा के योग्य होती है।

(1) बुद्धिमान, (2) बलवान्, (3) धनवान्, (4) दुर्बल।

5.13 मूलपाठ की व्याख्या

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीदवृद्धत्वं जरसा विना।। 23।।

अन्वयः- विषयैः अनाकृष्टस्य विद्यानां पारदृश्वनः धर्मरतेः तस्य जरसा विना वृद्धत्वम् आसीत्।

अन्वयार्थः- विषयैः रूपादिभिः अनाकृष्टस्य अवशीभूतस्य विद्यानां पारदृश्वनः वेदादीन् सम्पूर्णतया पठितवतः धर्मरतेः पुण्यानुरागस्य तस्य दिलीपस्य जरसा विना वृद्धत्वं विना वार्धकम् आसीत् अभवत्।

सरलार्थः- दिलीप रूपादि विषयों से आकृष्ट नहीं होते थे। वे वेद आदि सभी शास्त्रों में पारदर्शी थे। धर्म में भी उनका प्रगाढ़ अनुराग था। अतः वह बिना वृद्धावस्था के ही वृद्ध थे। अर्थात् दिलीप का ज्ञान वृद्ध था।

तात्पर्यार्थः- कवि ने इस श्लोक में दिलीप के ज्ञानवार्धिक्य का वर्णन किया है। रूप, रस गन्ध स्पर्श और शब्द ये विषय भी दिलीप को आकर्षित नहीं करते थे। अर्थात् दिलीप उनसे वशीभूत नहीं थे। इससे वे इन्द्रिय संयमी थे। वे वेद वेदांग आदि सभी शास्त्रों का गहन अध्ययन कर चुके थे। इससे उनकी विद्वत्ता सूचित होती है। दिलीप में विषय वैराग्य, शास्त्रों में पाण्डित्य इन दोनों का समन्वय था। वे सदा धर्मासक्त थे। धर्म के कारण उनमें वैराग्य सम्यक् फलित था। इन्द्रिय संयम के साथ विद्या का अर्जन किया था। अतः उनका विद्यार्जन भी ठीक हुआ था। यद्यपि महाराज दिलीप आयु से वृद्ध नहीं थे, तथापि ज्ञान के कारण से वे ज्ञानवृद्ध थे। इस प्रकार कवि ने इनमें वृद्धत्व का आरोप किया है।

व्याकरणविमर्श -

- **अनाकृष्टस्य**- न आकृष्टः अनाकृष्टः इति नञ्तत्पुरुषसमासः, तस्य अनाकृष्टस्य।
- **पारदृश्वनः** - पारं दृष्टवान् इति पारदृश्वा, तस्य पारदृश्वनः। पारद्रष्टुः इत्यर्थः।
- **धर्मरतेः** - धर्मे रतिः यस्य स धर्मरतिः इति बहुव्रीहिसमासः, तस्य धर्मरतेः।

सन्धिकार्यम् -

- **विषयैर्विद्यानाम्** - विषयैः+विद्यानाम्
- **धर्मरतेरासीद्** - धर्मरतेः + आसीद्
- **प्रयोगपरिवर्तनम्** - विषयैः अनाकृष्टस्य विद्यानां पारदृश्वनः धर्मरतेः तस्य जरसा विना वृद्धत्वेन अभूयत।

पाठगतप्रश्न-5.13

42. दिलीप का वृद्धत्व ज्ञान से था या आयु से।

43. इस श्लोक में कहे गये दिलीप के विशेषणों का उल्लेख कीजिए।

पाठ-सार

भगवान भास्कर से रघुवंश की उत्पत्ति हुई। प्राचीनकाल में स्वयम्भू आदि चौदह मनु थे। उनमें सातवें मनु सूर्यवंश के प्रथम राजा थे। वह विद्वानों से पूज्य थे। जैसे समुद्र मंथन के समय समुद्र में चन्द्र ने जन्म प्राप्त किया, वैसे ही मनु के वंश में शुद्धात्मा दिलीप ने जन्म ग्रहण किया। उस दिलीप के वक्षःस्थल विशाल थे। उसके कन्धे वृषभ के कन्धे के समान थे। वह शालवृक्ष के समान उन्नत दीर्घबाहुशाली थे। उसके पराक्रम को देखकर स्वयं क्षात्र धर्म ही उसकी देह का आश्रय स्थान था। वह अधिक बलशाली, अपने तेज से सम्पूर्ण प्राणियों को तिरस्कृत करने वाले एवं उन्नत थे। अतः सुमेरुपर्वत के समान पृथिवी का अतिक्रान्त करके स्थित थे। उसकी बुद्धि उसकी देह के आकार के समान अपरिमित थी। वह प्रज्ञा अनुसार शास्त्राध्ययन और शास्त्रानुसार धर्माचरण करते थे। उसी के अनुरूप फल भी प्राप्त करते थे। उनमें जैसे भयंकर गुण थे वैसे ही मनोहारी गुण थे। भयंकर गुणवश आश्रित लोग डरते थे। मनोहारी गुणवश उनकी सेवा करते थे। जैसे समुद्र मकर आदि के कारण भीषण और रत्नों के कारण आदरणीय होता है। निपुण सारथी रथ चक्र से पहले चक्र द्वारा की गई रेखा का अतिक्रमण नहीं करते, उसी प्रकार दिलीप की प्रजा भी मनु के वचनों का उल्लंघन नहीं करती थी।

इससे दिलीप की राज्यशासन में निपुणता प्रतीत होती है। वह प्रजा के हित के लिए उनसे बलि ग्रहण करता था, स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं या अपने प्रयोजन के लिए नहीं। उसकी सेना उपकरण मात्र थी। शास्त्रपाण्डित्य और धनुष की प्रत्यञ्चा से प्रयोजन को सिद्ध करता था। वह गूढ मन्त्रणा करते थे। आकार व चेष्टा से भी मनोभाव प्रकट नहीं होने देते थे। जैसे इस जन्म में प्रवृत्ति देखकर लोगों के संस्कारों का अनुमान करते हैं। कार्य सिद्ध होने पर ही दिलीप के मनोभावों का अनुमान करते थे। वह भयरहित भी पुरुषार्थ सिद्धि के लिए शरीर की रक्षा करते थे। रोग रहित होकर धर्म, लोभ रहित होकर अर्थ, आसक्ति रहित होकर काम का सेवन करते थे। दिलीप का ज्ञान मौन के साथ, शक्ति के साथ क्षमा, त्याग प्रशंसा के रहित था। ये सभी गुण परस्पर विरूद्ध होकर भी सहोदर के समान थे। वह इन्द्रिय संयमी थे। क्योंकि वह रूपादि से आकृष्ट नहीं होते थे। वह बहुत से शास्त्रो को पढ़ चुके थे। धर्म में उसकी यथार्थ प्रीति थी। यद्यपि वह आयु से वृद्ध नहीं थे, तथापि ज्ञान वृद्ध थे।

आपने क्या सीखा

- रघुवंश की उत्पत्ति को जाना।

टिप्पणी

- राजा दिलीप के गुणों को जाना।
- कालिदास की काव्यशैली, अलंकारों का समन्वय एवं संधि एवं समासों को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. दिलीप के देहवैशिष्ट्य का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. दिलीप के ज्ञानवृद्धत्व को कवि कैसे प्रतिपादित करते हैं?
3. ज्ञाने मौनम् इस श्लोक को पूरा करके व्याख्या कीजिए।
4. दृष्टान्त अलंकार को एक उदाहरण लेकर स्पष्ट कीजिए।
5. उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण लेकर स्पष्ट कीजिए।
6. पाठ का सार संक्षेप में लिखिए।
7. पाठ के पठित श्लोकों के आधार पर दिलीप का चरित वर्णन कीजिए।
8. स्तम्भों के लिखित पदो का मेल करो।

	स्तम्भ (क)		**स्तम्भ (ख)**
1.	वैवस्तव	1.	मोक्षः
2.	श्लाघा	2.	नृपगुणाः
3.	दिलीप	3.	ज्ञानम्
4.	प्रांशु	4.	दिलीपः
5.	समुद्रः	5.	ओंकार
6.	भीम कान्ता	6.	शालवृक्ष
7.	मौनम्	7.	राजेन्दुः
8.	पुरुषार्थ	8.	प्रशंसा

उत्तर:- 1-5, 2-8, 3-7, 4-6, 5-4, 6-2, 7-3, 8-1

पाठगतप्रश्नों के उत्तर

5.1

1. मनु सूर्य से उपमित, महीक्षित छन्द से उपमित है।
2. मनु
3. विवस्वत की सन्तान वैवस्वत, विवस्वान सूर्य का नाम है

4. ग
5. ख
6. क

5.2

7. दिलीप चन्द्र से उपमित, मनुवंश क्षीरनिधि से।
8. मनुवंशे एवं दिलीप ये दो पद उपमेय हैं, क्षीरनिधै एवं इन्दु ये दो पद उपमान है, इव उपमावाचक शब्द, उत्पन्न सादृश्य ज्ञान। अत: उपमा अलंकार है।
9. राजा इन्दु इव – राजेन्दु – उपमेयपदपूर्वकर्मधारयसमास
10. ख
11. ग

5.3

12. वृषभवत् – बैल के कन्धे के समान।
13. शाल इव प्रांशु :- शालप्राशु :- उपमानपूर्वपदकर्मधरय

5.4

14. सुमेरुपर्वत के साथ
15. अतिरिक्त: सार: यस्य स: अतिरिक्तसार: – बहुव्रीहिसमास। सर्वेम्य: अतिरिक्तसार: सर्वातिरिक्तसार: पञ्चमी तत्पुरूष समास, तेन–सर्वातिरिक्तसारेण।
16. पृथिवी को

5.5

17. आगम शब्द का अर्थ शास्त्र है और आरम्भ का अर्थ कार्य है।
18. दिलीप की प्रज्ञा उसकी देह के समान थी।
19. सदृशी प्रज्ञा यस्य स: – सदृश प्रज्ञ: बहुव्रीहि समास। आकारेण सदृश प्रज्ञ:–आकार सदृश प्रज्ञ: तृतीया तत्पुरूष समास
20. 3

5.6

21. दिलीप भयंकर एवं नृप गुणों से उपजीवियों के लिए अधृश्य और अभिगम्य थे।
22. दृष्टान्त अलंकार
23. अधृश्य: + च + अभिगम्य: + च

5.7

24. पूर्ववर्ति चक्र के द्वारा की गई रेखा का।

टिप्पणी

25. क्षुण्णात् + आमनो: + वर्त्मन:

26. नियन्तु: तस्य नेमिवृत्तय: प्रजा: आमनो: क्षुण्णात् वर्त्मन: परं रेखा मात्रम् अपि न व्यतीयु:।।

27. दिलीप प्रजा से भत्यर्थ बलि ग्रहण करते थे।

5.8

28. दृष्टान्त अलंकार

29. सूर्य के जल ग्रहण के समान था जैसे सूर्य सम्पूर्ण वर्ष पृथिवी से जल को सोखता है। ग्रीष्मकाल में पृथिवी जल अभाव में शुष्क हो जाती है। तब सूर्य हजार गुणा जल वर्षा के रूप में देता है। इसी प्रकार दिलीप भी प्रजा कल्याण के लिए कर ग्रहण करते थे।

5.9

30. अकुण्ठिता बुद्धि और धनुष पर आरोपित प्रत्याञ्चा

31. परिच्छेद अर्थात् उपकरणमात्र

32. शास्त्रेष्वकुण्ठिता

5.10

33. पूर्व के संस्कारों के साथ

34. आकार: च इंगित च = आगरेंगिते = इतरेतरद्वन्द्वसमास। गूढ़े आकारेंगिते यस्य स: गूढाकारेंगित = बहुव्रीहिसमास, तस्य गूढाकारेङ्तिस्य

5.11

35. रोग रहित होता हुआ धर्म, लोभ रहित होता हुआ अर्थ का, अनासक्त हुआ काम का सेवन करते थे।

36. शरीर को

37. जुगोप + आत्मानम् + अत्रस्त: + भेजे।

38. 3

5.12

39. ज्ञान मौन के साथ था।

40. ज्ञान आदि गुण मौनादि गुणों के साथ सहोदर के समान थे।

41. 2

5.13

42. ज्ञान से

43. विषयै: अनाकृष्टत्व:, विद्याना पारदृश्वत्व, धर्मरति त्वम् ये तीन विशेषण है।

6

रघुवंश- राजा दिलीप के गुणों का वर्णन-2

इस पाठ मे हम ग्यारह श्लोकों को पढ़ते हैं। यहाँ कवि सर्वप्रथम सूर्यवंशीय महाराज दिलीप के प्रजावात्सल्य का वर्णन करते हैं। उसके बाद क्रमश: दिलीप में जो राजोचित गुण थे उन गुणों का वर्णन करते हैं। उसके बाद दिलीप की पत्नी का उल्लेख करके उसके गुणों का वर्णन करते हैं। दिलीप और सुदक्षिण को विवाह के बहुत वर्ष बीत जाने पर भी सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। अत: सन्तान के अभाव से बहुत दु:खी थे। इस प्रकार सन्तान प्राप्ति के लिए शास्त्रविहित यज्ञ अनुष्ठान करना चाहिए यह चिन्ता करते हुए उन्होंने समग्र राज्य भार मन्त्रियों को प्रदान कर दिया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- दिलीप के प्रजा वात्सल्य को जान पाने में;
- उसके दूसरे व लोकोत्तर गुणों को समझ पाने में;
- दिलीप ने कैसे राज्यभार मन्त्रियों को प्रदान किया यह समझ पाने में;
- दिलीप की पत्नी के विषय में जान पाने में;
- प्रत्येक श्लोक का अन्वय कर पाने में और;
- समास आदि व्याकरण को समझ पाने में।

टिप्पणी

6.1 मूलपाठ –

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥24॥

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः॥25॥

दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मधवा दिवम्।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥26॥

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता॥27॥

द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता॥28॥

तं वेध विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथा हि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफलला गुणाः॥29॥

स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम्।
अनन्यशासनामूर्वी शशासैकपुरीमिव॥30॥

तस्य दाक्षिण्यरुढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा॥31॥

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः॥32॥

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः॥33॥

सन्तानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे॥34॥

6.2 मूलपाठ की व्याख्या

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥24॥

अन्वय- प्रजानां विनयाधानात् रक्षणात् भरणात् अपि स पिता (आसीत्)। तासां पितरस्त केवलं जन्महेतवः।

अन्वयार्थ- प्रजानां जनानां विनयाधानात् शिक्षाकारणात् रक्षणात् पालनात् भरणात् अपि पोषणात् अपि सः दिलीपः पिता पितृस्थानीयः आसीत्। तासां पितरः तु जनकाः तु जन्महेतवः जननकारणानि केवलम् एव।

सरलार्थ- प्रजा को शिक्षा देना, उनकी रक्षा करना, उनका भरण करना आदि सभी दिलीप करते थे। अतः पिता के कार्यों के कारण वे प्रजा के पिता हुए। उनके प्राकृतिक पिता तो केवल जन्म के कारण थे।

तात्पर्यार्थ- जो पालन करता है वह पिता होता है। वह ही पुत्र को उपयुक्त शिक्षा प्रदान करके उसे सन्मार्ग पर प्रवृत करता है। पिता पुत्र का रक्षण, भरण व पोषण करता है। दिलीप के राज्य में लोगों के जन्म के प्रति उनके पिता के हेतु थे। पिता के कार्य तो दिलीप ही करते थे। वे प्रजा की शिक्षा व्यवस्था देखते थे। विपत्तिग्रस्त होने पर उनकी रक्षा करते थे। अन्नजलादि विषयों से उनको पालन करते थे। जो राजा होता है वह इसी प्रकार अपने राज्य को चलाता है। इस प्रकार दिलीप यथार्थ प्रजापालक राजा थे यह सुस्पष्ट होता है। दिलीप के राज्य में पिता जन्म के कारण मात्र थे। उनके प्रकृत जनक तो स्वयं राजा दिलीप ही थे।

व्याकरणविमर्श

विनयाधानात्- विनयस्य आधानं विनयाधानम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तस्मात् विनयाधानात्।

- जन्महेतवः- जन्मनः हेतवः जन्महेतवः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

सन्धिकार्यम्

- विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि - विनयाधानात् + रक्षणात् + भरणात् + अपि
- पितरस्तासाम् - पितरः + तासाम्

प्रयोगपरिवर्तनम् - प्रजानां विनयाधानात् रक्षणात् भरणात् अपि तेन पित्रा अभूयत। तासां पितृभिः तु केवलं जन्महेतुभिः अभूयत।

पाठगतप्रश्न-6.1

1. दिलीप कैसे प्रजा के पिता थे?
2. लोगों के पिता कौन थे?
3. विनयाधानात् का विग्रह व समास लिखिए।
4. प्रजा के पिता कौन थे-

   (1) मृत्यु हेतवः, (2) वृद्धि हेतवः, (3) जन्महेतवः, (4) दोष हेतवः

टिप्पणी

6.3 मूलपाठ की व्याख्या

स्थित्यै दण्डयतो दण्डयान् परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एवं मनीषिणः॥25॥

अन्वय- दण्डयान् स्थित्यै दण्डयतः प्रसूतये परिणेतुः मनीषिणः तस्य अर्थकामौ अपि धर्म एव आस्ताम्।

अन्वयार्थ- दण्डयान् दण्डनीयान् स्थित्यै लोकमर्यादायै दण्डयतः तेभ्यः दण्डं यच्छतः प्रसूतये सन्तानाय परिणेतुः विवाहं कुर्वतः तस्य दिलीपस्य अर्थकामौ एतन्नामकौ द्वौ पुरुषार्थौ अपि धर्म एव धर्मनामकपुरुषार्थ एव आस्ताम् अभवताम्।

सरलार्थ- दिलीप लोककल्याण के लिए दण्ड के योग्य को दण्ड देते थे। पुत्र की उत्पति के लिए विवाह किया। इस प्रकार उसके अर्थ और काम दो पुरूषार्थ धर्म स्वरूप हो गये।

तात्पर्यार्थ- महाराज दिलीप जगत के हित के लिए दण्ड योग्य को दण्ड देते थे। धनसंग्रह उनका उद्देश्य नहीं था। लोक में जन धन संग्रह के लिए दण्ड का प्रयोग करते हैं। किन्तु दिलीप उस दण्ड से लोकल्याण रूप धर्म को साधते थे। अतः उसका अर्थ साधन ही धर्म सिद्ध होता है। जगत में प्रायः जन काम के वशीभूत होते हैं। काम की शान्ति के लिए विवाह करते हैं किन्तु दिलीप ने भोग के लिए विवाह नहीं किया। अपितु सन्तान उत्पत्ति के लिए विवाह किया। इससे पितृ ऋण भी पूरा किया। अर्थात् यहाँ विवाह से पितृऋण की पूर्तिरूप धर्म ही सिद्ध होता है। अतः दिलीप का काम साधन भी धर्म को साधते थे। इस प्रकार दिलीप के अर्थ और काम भी धर्मपरता को प्राप्त थे। इस प्रकार उसका सभी कार्य धर्मपरक ही थे।

व्याकरण विमर्श-

- **दण्डयतः-** दण्ड्धतोः णिचि निष्पन्नात् दण्डिधतोः शतृप्रत्यये दण्डयत् इति प्रातिपदिकं भवति। तस्य षष्ठयेकवचनविवक्षायां दण्डयतः इति रूपम्।
- **दण्डयान्ः** - दण्डम् अर्हन्ति इति दण्डयाः, तान् दण्डयान्। द्वितीयाबहुवचनान्तम् इदं पदम्।
- **अर्थकामौः** - अर्थः च कामः च अर्थकामौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः।

सन्धिकार्यम्-

- **दण्डयतो दण्डयान्ः** - दण्डयतः + दण्डयान्
- **अप्यर्थकामौः** - अपि + अर्थकामौ
- **तस्यास्ताम्ः** - तस्याः + ताम्
- **धर्म एवः** - धर्मः एव

प्रयोगपरिवर्तनम्- दण्डयान् स्थित्यै दण्डयतः प्रसूतये परिणेतुः मनीषिणः तस्य अर्थकामाभ्यां अपि धर्मेण एव अभूयत।

पाठगतप्रश्न-6.2

5. दिलीप दण्ड योग्य को कैसे दण्ड देते थे?

6. दिलीप का अर्थ काम कौन थे?

7. दण्डयतः शब्द को व्याकरण दृष्टि से स्पष्ट कीजिए।

8. दिलीप के अर्थ काम क्या थे?

   (1) धर्मः, (2) अर्थः, (3) कामः, (4) मोक्षः

6.4 मूलपाठ की व्याख्या

दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवम्।
सम्पद्विनिमयेनोभै दधतुर्भुवनद्वयम्॥26॥

अन्वय- स यज्ञाय गां दुदोह, मधवा शस्याय दिवं दुदोह। (एवम्) उभौ सम्पद्विनिमयेन भुवनद्वयं दधतुः।

अन्वयार्थ- स राजा दिलीपः यज्ञाय यज्ञं कर्तुं गां पृथिवीं दुदोह दुग्धवान्। मधवा देवराजः इन्द्रः शस्याय धन्याय दिवं स्वर्गं दुदोह दुग्धवान्। उभौ दिलीपदेवेन्द्रौ सम्पद्विनिमयेन परस्परं सम्पत्त्याः विनिमयेन भुवनद्वयं लोकद्वयं दधतुः पोषितवन्तौ।

सरलार्थ- दिलीप ने यज्ञ से स्वर्ग स्थान देवों को प्रसाद देने के लिए प्रजा से कर स्वीकार किया और देवराज इन्द्र ने स्वर्ग लोक से पृथिवी लोक पर वर्षा की। इस प्रकार परस्पर सम्पत्तियों के विनिमय से दोनों ने दोनों लोकों का पोषण किया।

तात्पर्यार्थ- दिलीप के साथ देवराज इन्द्र की मित्रता थी। इसलिए दोनों के बीच सम्पतियों का विनिमय होता था। दिलीप देवताओं के प्रसाद के लिए यज्ञादि करते थे। उसके लिए प्रजा से कर लेते थे। कर रूप में जो धन संग्रह होता था उससे ही यज्ञ करते थे। अतः दिलीप यज्ञ के लिए पृथ्वी को दोहते थे। उस यज्ञ से सन्तुष्ट होकर इन्द्र पृथ्वी पर वर्षा करते थे। उससे पृथिवी पर धान्य होता था। उस धान्य से जन धनार्जन करके कर देते थे। इस प्रकार दिलीप यज्ञादि से स्वर्ग का पोषण करता था। देवराज इन्द्र वर्षा से पृथिवी का पोषण करते थे। इस प्रकार दोनों परस्पर परिपोषक होकर पृथ्वी एवं स्वर्ग का पालन करते थे।

व्याकरणविमर्श -

- **दुदोहः** - दुह्-धातोः लिट्लकारे प्रथमपुरुषैकवचने दुदोह इति रूपम्। दुग्धवान् इत्यर्थः।
- **सम्पद्विनिमयेनः** - सम्पदः विनिमयः सम्पद्विनिमयः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेन सम्पद्विनिमयेन।

- **दधतुः** - धा-धातोः लिट्लकारे प्रथमपुरुषद्विवचने दधतुः इति रुपम्। पोषितवन्तौ इत्यर्थः।
- **भुवनद्वयम्ः** - भुवनयोः द्वयं भुवनद्वयम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

सन्धिकार्यम्-

- **सम्पद्विनिमयेनोभौ** - सम्पद्विनिमयेन + उभौ
- **दधतुर्भुवनद्वयम्** - दधतुः + भुवनद्वयम्
- **प्रयोगपरिवर्तनम्** - तेन यज्ञाय गौः मघोना सस्याय द्यौ दुदुहे। (एवम्) उभाभ्यां सम्पद्विनिमयेन भुवनद्वयं दधे।

पाठगत प्रश्न 6.3

9. दिलीप कैसे पृथिवी को दोहते थे?
10. दो भुवनों के क्या नाम है?
11. दुदोह का व्याकरण स्पष्ट करो?
12. दिलीप किस के साथ सम्पद्विनिमय करते थे?

    (1) बलि के साथ, (2) वरुण के साथ, (3) सूर्य के साथ, (4) इन्द्र के साथ।

6.5 मूलपाठ की व्याख्या

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ॥27॥

अन्वयः- राजानः रक्षितुः तस्य यशो न अनुययुः किल। यत् तस्करता परस्वेभ्यो व्यावृत्ता (सती) श्रुतौ स्थिता।

अन्वयार्थः - राजानः अन्ये नृपोः रक्षितुः रक्षकस्य तस्य दिलीपस्य यशः कीर्तिः न अनुययुः न अनुकृतवन्तः किल खलु। यत् यतः तस्करता चौर्य परस्वेभ्यः अन्यद्रव्येभ्यः व्यावृत्ता निवृत्ता सती श्रुतौ शब्दे स्थिता आसीत्।

सरलार्थ- दिलीप के राज्य में कोई भी तस्कर नहीं था। तस्करता केवल शब्द रूप में ही सुनी जाती थी। वास्तविक रुप से वहॉ तस्कर नहीं थे। अतः अन्य राजा दिलीप के यश का अनुकरण नहीं कर पाते थे।

तात्पर्यार्थ- जगत में अन्य राजाओं में दिलीप सा विलक्षण नहीं था। उसके शासन काल में लोगों की मानसिक प्रवृति ही परिवर्तित हो गई। इस कारण दिलीप के राज्य में कोई व्यक्ति चोर नहीं था। न केवल चोर अपितु समाज में तस्कर भी नहीं थे। पूर्वकाल में दूसरों के धन

में तस्कर थे इस समय नहीं हैं। लोग तस्कर शब्द को तो सुनते थे किन्तु वह कैसा होता है यह अनुभव नहीं किया। शशश्रृंग (खरगोश के सींग) के समान वह असत्य था। अतः तस्करता शब्द मात्र दिलीप के राज्य में थे ऐसा कवि कहते है। इसलिए समीपवर्ती अन्य राजा इनसे इर्ष्या करते थे। वे उसके यश के अनुकरण की चेष्टा करते थे किन्तु दिलीप के समान कीर्ति का अनुकरण करने में समर्थ नहीं थे।

व्याकरणविमर्श -

अनुययुः- अनु-पूर्वकात् याधतोः लिटि प्रथमपुरुषबहुवचनविवक्षायां अनुययुः इति रुपम्। अनुकृतवन्तः इत्यर्थः।

व्यावृत्ता- विपूर्वकात् आङ्-पूर्वकात् वृत्-धातोः क्तप्रत्यये व्यावृत्त इति रूपम्। ततः स्त्रियां टाप्प्रत्यये व्यावृत्ता इति रूपम्।

परस्वेभ्यः- परेषां स्वानि परस्वानि इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेभ्यः परस्वेभ्यः।

तस्करता- तस्करस्य भावः तस्करता। अत्र तस्करशब्दात् तल्प्रत्ययः कृतः।

सन्धिकार्यम् -

- **किलानुययुस्तस्यः** - किल + अनुययुः + तस्य
- **राजानो रक्षितुर्यशः** - राजानः + रक्षितुः + यशः

प्रयोगपरिवर्तनम् - राजभिः रक्षितुः तस्य यशः न अनुयये किल। यत् तस्करतया परस्वेभ्यः व्यावृत्तया (सत्या) श्रुतौ स्थितम्।

पाठगत प्रश्न-6.4

13. दिलीप के राज्य में तस्करता कहाँ थी?

14. अनुययुः की व्याकरण स्पष्ट कीजिए।

15. ''किलानुययुस्तस्य'' इसका सन्धिविच्छेद कीजिए।

6.6 मूलपाठ की व्याख्या

द्वेष्योपि सम्मतः शिष्टस्तरस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता॥ 28॥

अन्वय- शिष्टः द्वेष्यः अपि आर्त्तस्य औषधं यथा तस्य सम्मतः (आसीत्)। दुष्टः प्रियः अपि उरगक्षता अङ्गुली इव तस्य त्याज्यः आसीत्।

अन्वयार्थ- शिष्टः सज्जनः द्वेष्यः अपि शत्रुः अपि आर्त्तस्य रोगिणः औषधं यथा भेषजम् इव तस्य दिलीपस्य सम्मतः अनुमतः आसीत्। दुष्टः दुर्जनः प्रियः अपि आत्मीयः अपि उरगक्षता सर्पेण दष्टा अड्गुली इव अङ्गलीवत् तस्य दिलीपस्य त्याज्यः त्यागयोग्यः आसीत् अभवत्।

सरलार्थ- सत् चरित्रशील व्यक्ति शत्रु भी है तो दिलीप द्वारा ग्रहणीय था। जैसे रोग द्वारा औषधि ग्रहणीय होती है। दुर्जन आत्मीय भी दिलीप द्वारा त्याज्य था जैसे सर्प द्वारा दंशित अंगुली त्याज्य होती है।

तात्पर्यार्थ- जगत में स्थित सभी लोगों में से कुछ शत्रु तो कुछ मित्र होते हैं। लोग बिना कारण ही शत्रुओं के साथ कलह करते हैं। किन्तु दिलीप का स्वभाव ऐसा नहीं था। औषधि सदैव रुचि रहित होती है फिर भी ऐसी औषधि रोगी द्वारा ग्रहण की जाती है। अन्यथा रोग शान्त नहीं होता। इसी प्रकार शत्रु भी सत्कार्य में आचरण करता है तो वह दिलीप द्वारा आदरणीय था। शत्रुता के आधार पर दिलीप उसे नहीं त्यागते थे। सर्प के द्वारा दंशित अंगुली प्रिय होती है। फिर भी वह त्याज्य है। अन्यथा व्यक्ति का मरना संभव है। इसी प्रकार आत्मीय जन दुष्ट आचारण करता था तो दिलीप उसके साथ सम्बन्ध नष्ट कर देते थे। इस प्रकार सच्चरित्रशाली ही दिलीप का मित्र होता था। दुष्टचरित्रशाली दिलीप का शत्रु होता था। कारणान्तर से हुए शत्रु और कारणान्तर से हुए मित्र का कोई स्थान नहीं था।

व्याकरण विमर्श :-

- **द्वेष्यः** -द्वेष्टु योग्यः इत्यर्थे द्विष्-धतोः ण्यत्प्रत्यये द्वेष्यः इति रूपम्। द्वेषयोग्यः इत्यर्थः।
- **सम्मतः** - सम्पूर्वकात् मन्-धातोः क्तप्रत्यये सम्मतः इति रूपम्।
- **त्याज्यः** - त्यक्तुं योग्यः इत्यर्थे त्यज्-धातोः ण्यत्प्रत्यये त्याज्यः इति रूपम्।
- **उरगक्षताः** - उरगेण क्षता उरगक्षता इति तृतीयातत्पुरुषसमासः। उरगः नाम सर्पः।

संधिकार्यम् -

- **द्वेष्योपि** - द्वेष्यः + अपि
- **शिष्टस्तस्यार्त्तस्यः** - शिष्टः + तस्य + आर्त्तस्य
- **यथौषधम्ः** - यथा + औषधम्
- **त्याज्यो दुष्टः** - त्याज्यः + दुष्टः
- **प्रियोप्यासीदड्गुलीवोरगक्षताः** - प्रियः + अपि + आसीत् + अङ्गुली + इव + उरगक्षता।
- **प्रयोगपरिवर्तनम्** - शिष्टेन द्वेष्येण अपि आर्त्तस्य औषधेन यथा तस्य सम्मतेन अभूयत। दुष्टेन प्रियेण अपि उरगक्षतया अड्गुल्या इव तस्य त्याज्येन अभूयत।

अलंकारालोचना- इस श्लोक में शिष्ट शत्रु औषध से उपमित है। दुष्ट प्रिय सर्पदंशित अंगुली से उपमित है। शिष्ट शत्रु, दुष्ट प्रिय उपमेय है। औषध, सर्पदंशित अंगुली उपमान है। इव उपमावाचक शब्द है। ग्राह्य एवं त्याज्य सादृश्य सम्बन्ध है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-6.5

16. दिलीप का शत्रु भी शिष्ट हो तो कैसा था?

17. यदि दिलीप का आत्मीय दुष्ट भी तो कैसा था?

18. 'प्रियोप्यासीदगुंलीवोरगक्षता' संधि विच्छेद कीजिए।

19. उरग किसका नाम है-

    (1) पक्षी, (2) सर्पः, (3) मार्जारः, (4) इन्दुरः

6.7 मूलपाठ की व्याख्या

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथा हि सर्वे तस्यासन् परार्थैकफला गुणाः॥ 29॥

अन्वय- वेधाः तं महाभूतसमाधिना विदधे नूनम्। तथा हि तस्य सर्वे गुणाः परार्थैकफला आसन्।

अन्वयार्थ- वेध ब्रह्मा तं दिलीपं महाभूतसमाधिना पृथिव्यादिभिः महाभूतकारणसामग्रीभिः विदधे सृष्टवान् नूनम अवश्यम्। तथा हि तस्य दिलीपस्य सर्वे सकलाः गुणाः परार्थैकफलाः अन्यस्य प्रयोजनं साधयन्तः आसन् अभवन्।

सरलार्थ- ब्रह्मा ने पंच महाभूत नामक उपकरणों से सृष्टि की रचना की थी। उन्हीं उपकरणों से दिलीप की सृष्टि की। अतः जैसे पंच महाभूत दूसरों के लिए होते है। उसी प्रकार दिलीप के सभी गुण परार्थ (दूसरों के लिए) ही थे।

तात्पयार्थ- इस श्लोक में कवि दिलीप के परोपकारिता का वर्णन करते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंच महाभूत हैं। इन्ही से विधाता ने जगत की रचना की है। इन पंचमहाभूतों के यथाक्रम गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पांच गुण है। गन्ध स्वयं गन्ध को स्वीकार नहीं करती। किन्तु गन्ध से अन्य आनन्दित होते हैं। रस स्वयं रस को ग्रहण नहीं करता किन्तु अन्य रस से मुदित होते हैं। इसी प्रकार ये सभी गुण अन्य के प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। भगवान ने पंचमहाभूतों की इन सामग्रियों से ही दिलीप की रचना की थी। अतः जैसे महाभूतों के कारण गन्धदि परार्थ को सिद्ध करते हैं। उसी प्रकार दिलीप का प्रत्येक कार्य परार्थ ही था। उनका सम्पूर्ण जीवन परप्रयोजन के लिए ही नियुक्त था। इससे वह वास्तविक परोपकारी हुए। इसलिए कवि उसके सभी गुण परार्थेकफल का वर्णन करते हैं।

व्याकरण विमर्श

- **विदधेः** - विपूर्वकात् धाधातोः लिटिप्रथमपुरुषैकवचने विदधे इति रूपम्। विहितवान् इत्यर्थः।

- **महाभूतसमाधिना:** – महान्ति च तानि भूतानि महाभूतानि इति कर्मधरयसमास:। महाभूतानां समाधि: महाभूतसमाधि इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:, तेन महाभूतसमाधिना। इदं तृतीयैकवचनान्तं रूपम्।
- **परार्थैकफला:**– परस्य अर्थ: परार्थ: इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:। परार्थ एव एकं फलं येषां ते परार्थैकफला: इति बहुव्रीहिसमास:।

संधिकार्यम् –

- तस्यासन्– तस्य + आसन्
- परार्थैकफला गुणा :– परार्थैकफला: + गुणा:

प्रयोगपरिवर्तनम्– वेधसा स महाभूतसमाधिना विदधे नूनम्। तथा हि तस्य सर्वै: गुणै: परार्थैकफलै: अभूयत।

पाठगत प्रश्न-6.6

20. दिलीप के सभी गुण कैसे परार्थकफल हैं?
21. 'विदधे' में धातु और लकार बताइए।
22. महाभूतसमाधिना का विग्रह एवं समास का नाम लिखिए।

6.8 मूलपाठ की व्याख्या

स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम्।
अनन्यशासनामुर्वी शशासैकपुरीमिव ॥ 30॥

अन्वय:– स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागरामृ अनन्यशासनाम् उर्वीम् एकपुरीम् इव शशास।

अन्वयार्थ:– स राजा दिलीप: वेलावप्रवलयां समुद्रतटरूपेण प्राकारेण वेष्टितां परिखीकृतसागराम् खेयीकृत: सागर: यया ताम् अनन्यशासनाम् अपरनृपशासनरहिताम् उर्वी पृथिवीम् एकपुरीम् इव एकनगरीम् इव शशास शासितवान्।

सरलार्थ:– समुद्र तट दिलीप के राज्य के परकोटे के तुल्य था। समुद्र ही उसके राज्य की खाई थी। पृथ्वी पर अन्य किसी का शासन नहीं था। इस प्रकार समग्र पृथ्वी पर दिलीप ही एक नगरी के समान शासन करता था।

तात्पर्यार्थ:– प्रत्येक राज्य के राजा राज्य की रक्षा के लिए कुछ उपाय करते हैं जैसे राज्य की सीमा के अन्त में परकोटे का निर्माण करते हैं। परकोटे के बाहर खाई खोदते हैं। किन्तु दिलीप ने अपने राज्य की रक्षा के लिए परकोटे का निर्माण नहीं करवाया। सागर का तट स्वत: ही

राज्य का परकोटा हो गया। इस प्रकार उन्होंने खाई भी नहीं खुदवाई। समुद्र ही उनके विशाल राज्य की खाई स्वरुप था। इससे ज्ञात होता है कि दिलीप का राज्य समुद्र पर्यन्त था। अर्थात् सम्पूर्ण ही पृथ्वी उनके राज्य में अन्तर्भव थी। अतः दिलीप के अलावा किसी राजा का शासन पृथ्वी पर नहीं था जैसे एक राजा एक नगर पर शासन करता है उसी प्रकार दिलीप सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक नगरी के समान शासन करते थे।

व्याकरण विमर्श -

- **वेलावप्रवलयाम्**:- वप्राणां वलयाः वप्रवलयाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। वेला एव वप्रवलयाः यस्याः सा वेलावप्रवलया इति बहुव्रीहिसमासः, तां वेलावप्रवलयाम्।
- **परिखीकृतसागराम्** - अपरिखाः परिखाः यथा सम्पद्यन्ते तथा कृताः इति विग्रहे च्विप्रत्यये परिखीकृताः इति रुपम्। परिखीकृताः सागराः यस्याः सा परिखीकृतसागराः इति बहुव्रीहिसमासः तां परिखीकृतसागरम्।
- **अनन्यशासनाम्**: - अन्यस्य शासनम् अन्यशासनम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। अविद्यमानम् अन्यशासनं यस्या सा अनन्यशासना इति नञ्बहुव्रीहिसमासः, ताम् अनन्यशासनाम्।
- **शशास** - शास्-धतोः लिटि प्रथमपुरुषैकवचने शशास इति रूपम्।
- **एकपुरीम्** - एका च असौ पुरी च एकपुरी इति कर्मधारयसमासः, ताम् एकपुरीम्।

संधिकार्यम् -

- **अनन्यशासनामुर्वीम्** - अनन्यशासनाम् + उर्वीम्
- **शशासैकपुरीमिव** - शशास + एकपुरीम् + इव
- **प्रयोगपरिवर्तनम्** - तेन वेलावप्रवलया परिखीकृतसागरा अनन्यशासना उर्वी एकपुरी इव शशासे।

अलंकारालोचना- इस श्लोक में दिलीप के राज्य को अर्थात समग्र पृथ्वी एक पुरी से उपमित दिलीप का राज्य उपमेय है, एकपुरी उपमान है, इव उपमावाचक शब्द है। जैसे राजा एक नगर पर शासन करता है उसी प्रकार दिलीप सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन करते थे। अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-6.7

23. दिलीप पृथ्वी को किसके समान शासन करते थे?
24. इस श्लोक में उपमा अलंकार सिद्ध कीजिए।
25. 'परिखीकृत सागराम्'' को रूप सिद्ध कीजिए।

6.9 मूलपाठ की व्याख्या

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।। 31।।

अन्वयः- तस्य मगधवंशजा दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना अध्वरस्य दक्षिणा इव सुदक्षिणा इति पत्नी आसीत्।

अन्वयार्थ- तस्य राज्ञः दिलीपस्य मगधवंशजा मगधकुले उत्पन्नाः दाक्षिण्यरूढेन औदार्यप्रसिद्धेन नाम्ना अभिधनेन अध्वरस्य यज्ञस्य दक्षिणा दक्षिणानामधेया इव सुदक्षिणा इति सुदक्षिणा इति नाम्ना प्रसिद्धा पत्नी भार्या आसीत्।

सरलार्थः- दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा मगध वंश में उत्पन्न थी। वह उदारता के कारण यज्ञ की पत्नी दक्षिणा जैसे सुलक्षणा है वैसी ही थी।

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में कालिदास दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा का वर्णन करते हैं। अध्वर की अर्थात् यज्ञ की पत्नी का नाम दक्षिणा होता है। यज्ञ के अन्त में दक्षिणा दी जाती है। लोग उसको भी यज्ञ के अंग के रूप में कल्पना करते हैं। उसी से ही यज्ञ पूर्ण होता है ऐसा प्रसिद्ध है। यज्ञ का सम्पूर्णत्व दक्षिणा से सिद्ध होता है। मगध वंश में उत्पन्न सुदक्षिणा दिलीप की पत्नी थी। वह दाक्षिण्य के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध थी। जैसे दक्षिणा यज्ञ की पूर्णता को सिद्ध करती है उसी प्रकार सुदक्षिणा भी रघुकुल की सम्पूर्णता को सिद्ध करती थी। अतः दिलीप ने सुदक्षिणा से ही पुत्र लाभ प्राप्त किया। उस पुत्र से रघुवंश की सम्पूर्णता प्राप्त हुई। अतः सुदक्षिणा यज्ञ की सहधर्मिणी का सुदक्षिणा के साथ उपमिति है।

व्याकरण विमर्श -

- **दाक्षिण्यरूढेन**- दक्षिण्स्य भावः कर्म वा दाक्षिण्यं भवति। रुह्-धतोः क्तप्रत्यये रूढम् इति रूपं सिध्यति। दाक्षिण्येन रूढम् इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।
- **मगधवंशजा**- मगधस्य वंशः मगधवंशः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। मगधवंशे जाता इति अर्थे जन्धातोः डप्रत्यये मगधवंशज इति शब्दः निष्पद्यते। तस्मात् स्त्रीलिङ्ग टापि मगध वंशजा इति रूपम्।
- **अध्वरस्य**- अविद्यमानः ध्वरः यस्मिन् सः अध्वरः इति नञ्बहुव्रीहिसमासः, तस्य अध्वरस्य। यज्ञस्य इत्यर्थः।

संधिकार्यम्-

- **सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येवः**- सुदक्षिणा+इति+आसीत्+अध्वरस्य+इव
- **प्रयोगपरिवर्तनम्**- तस्य मगधवंशजया दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना अध्वरस्य दक्षिणया इव सुदक्षिणया इति पत्न्या अभूयत।

अलंकारालोचना- इस श्लोक में 'तस्य' सर्वनामवाचक पद दिलीप का बोध कराता है। दिलीप अध्वरेणया। यज्ञेन से उपमित है। सुदक्षिणा यज्ञ की पत्नी दक्षिणा से उपमित है। 'इव' उपमा वाचक शब्द है अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-6.8

26. दिलीप की पत्नी किस वंश में उत्पन्न हुई?
27. सुदक्षिणा किसके साथ उपमित है?
28. अध्वरस्य का विग्रह व अर्थ लिखिए।
29. सुदक्षिणा किस देश में उत्पन्न हुई?

    (1) मालवा, (2) मगध, (3) अयोध्या, (4) नन्दीग्राम

6.10 मूलपाठ की व्याख्या

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः॥32॥

अन्वयः-वसुधाधिपः अवरोधे महति अपि मनस्विन्या तया लक्ष्म्या च आत्मानं कलत्रवन्तं मेने।

अन्वयार्थः- वसुधाधिपः पृथिव्याः ईश्वरः दिलीपः अवरोधे अन्तः पुरवर्गे महपि अपि अधिके अपि मनस्विन्या दृढ़चित्तया तया सुदक्षिणया लक्ष्म्या च राजश्रिया च आत्मानं स्वं कलत्रवन्तं सभार्यं मेने ज्ञातवान्।

सरलार्थः- दिलीप का अन्तःपुर वर्ग भी महान् था। फिर भी दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा व राजलक्ष्मी से अपने आप को भार्यावान् प्रकट करते थे।

तात्पर्यार्थः- प्राचीनकाल में प्राय राजाओं का अन्तःपुर वर्ग विशाल होता था। उस अन्तः पुर वर्ग में बहुत सी नारियाँ भी होती थी। उन नारियों में कुछ पत्नी (भार्या) होती थी और कुछ दासी भी होती थी। अर्थात् दासी भी राजा के भोगवस्तु तुल्य होती थी। दिलीप सम्पूर्ण जगत का स्वामी था। अतः वह अपने अन्तःपुर में बहुत सी नारी स्थापित करने में समर्थ था। किन्तु धर्म भार्या को छोड़कर अन्य नारी के साथ संगम धर्म सम्मत नहीं था। अतः दिलीप सुदक्षिणा ही मेरी पत्नी है ऐसा चिन्तन करते थे। इस प्रकार राजलक्ष्मी, सुदक्षिणा से ही राजा दिलीप पत्नीवान् थे। इससे राजा का भोगपरागमुखत्व भाव प्रकट होता है।

व्याकरणविमर्शः-

- **कलत्रवन्तम** - कलत्रम् अस्ति यस्य स कलत्रवान्, तं कलत्रवन्तम्। इदं द्वितीयैकवचनान्तं रूपम्।

- **मेने** - मन्-धातोः लिटि प्रथमपुरूषैकवचने मेने इति रूपं भवति।
- **मनस्विन्या** - प्रशस्तं मनः अस्ति यस्याः सा मनस्विनी, तया मनस्विन्या।
- **वसुधाधिप**- अधिपाति इति अधिपः भवति। वसुधयाः अधिपः वसुधधिपः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

संधिकार्यम् -

- **कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे** - कलत्रवन्तम्+आत्मानम्-अवरोधे
- **महत्यपित** - महति + अपि

प्रयोगपरिवर्तनम् - वसुधाधिपेन अवरोधे महति अपि मनस्विन्या तया लक्ष्म्या च आत्मा कलत्रवान् मेने।

पाठगत प्रश्न 6.9

30. दिलीप किससे कलत्रवान थे?

31. इस श्लोक से दिलीप के कौन से गुण सूचित होते हैं?

32. 'कलत्रवन्तमात्मामवरोधे'' का सन्धि विच्छेद कीजिए।

6.11 मूलपाठ की व्याख्या

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथेः॥ 33॥

अन्वयः- स आत्मानुरूपायां तस्याम् आत्मजन्मसमुत्सुकः विलम्बितफलैः मनोरथैः कालं निनाय।

अन्वयार्थः- स राजा दिलीपः आत्मानुरूपायां आत्मसदृश्यां तस्यां सुदक्षिणायाम् आत्मजन्मसमुत्सुकः पुत्रप्राप्तये उत्कण्ठितः विलम्बितफलैः सविलम्बपरिणामैः मनोरथैः अभिलाषैः। कालं समयं निनाय यापयामास।

सरलार्थः- दिलीप ने अपने सादृश्य सुदक्षिणा में पुत्रलाभ हो, यह इच्छा की। किन्तु बहुत काल व्यतीत होने पर भी पुत्र लाभ न हुआ। इस विलम्ब के कारण वह दुःखित हुए थे।

तात्पर्यार्थः- सुदक्षिणा दिलीप के समान क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई थी। दिलीप के समान उसके बहुत गुण थे। यदि सुदक्षिणा के गर्भ में पुत्रोत्पति होती है तो वह पुत्र रघुवंशीय होगा। उस पुत्र में राजोचित गुण अवश्य होंगे। इसलिए सुदक्षिणा में पुत्र जन्म हो यह दिलीप की इच्छा थी। किन्तु विवाह के बहुत से वर्ष व्यतीत हो गए। फिर भी दिलीप को पुत्र लाभ नहीं हुआ। पुत्र नहीं होता तो पितृऋण पूर्ण नहीं होता। उससे पाप की संभावना होगी। अतः दिलीप अत्यधिक चिन्ताकुल थे। इस प्रकार पुत्र के अभाव से दिलीप ने दुःखाक्रान्त होकर काल व्यतीत किया।

व्याकरणविमर्श:-

- **आत्मनुरूपायाम्** - आत्मन: अनुरूपा आत्मानुरूपा इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:, तस्याम् आत्मानुरूपायाम्।
- **आत्मजन्मसमुत्सुक** - आत्मनो जन्म यस्य स आत्मजन्मा इति व्याधिकरणबहुव्रीहिसमास:। अथवा आत्मन: जन्म आत्मजन्मा इत षष्ठीतत्पुरुषसमास:। आत्मजन्मनि समुत्सुक: आत्मजन्मसमुत्सुक: इति सप्तमीतत्पुरुषसमास:।
- **विलम्बितफलै** - विलम्ब: सञ्जात: अस्य इत्यर्थे विलम्बितम् इति भवति। विलम्बितं फलं येषां ते विलम्बितफला: इति बहुव्रीहिसमास:, तै: विलम्बितफलै:।
- **निनाय** - प्रापणार्थकस्य नीधतो: लिटि प्रथमपुरुषैकवचने निनाय इति रूपम्।

सन्धिकार्यम् -

- **तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुक:**-तस्याम्+आत्मानुरूपायाम्+ आत्मजन्मसमुत्सुक:
- **प्रयोगपरिवर्तनम्:**- तेन आत्मानुरूपायां तस्याम् आत्मजन्मसमुत्सुकेन विलम्बितकलै: मनोरथै: काल: निन्ये।

पाठगतप्रश्न-6.10

33. दिलीप कैसे काल व्यतीत करते थे?
34. दिलीप किस में आत्मजन्मसमुत्सुक थे?
35. आत्मजन्मसमुत्सुक: का विग्रह एवं समास लिखिए।

6.12 मूलपाठ की व्याख्या

सन्तानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे॥ 34॥

अन्वय:- तेन सन्तानार्थाय विधये स्वभुजात् अवतारिता जगतो गुर्वी धू: सचिवेषु निचिक्षिपे।

अन्वयार्थ:- तेन दिलीपेन सन्तानार्थाय सन्तानप्रयोजनाय विधये अनुष्ठानाय स्वभुजाद् निजहस्तात् अवतारिता अर्पिता जगत: लोकस्य गुर्वी दुर्वहा धू: भार: सचिवेषु मन्त्रिषु निचिक्षिपे निक्षिप्ता।

सरलार्थ:- पुत्र प्राप्ति के लिए दिलीप ने शास्त्रविहित अनुष्ठान आदि करने की इच्छा की। अत: उसने समग्र जगत का भार मन्त्रियों को समर्पित कर दिया।

तात्पर्यार्थ:- विवाह के बाद बहुत वर्ष व्यतीत हो गये थे। राजा दिलीप सन्तान रहित था। इसलिए दैव का ही आश्रय करना चाहिए, ऐसा सोचकर शास्त्रविहित अनुष्ठान आदि को करने

की इच्छा की। किन्तु अनुष्ठान किया जाता है तो राज्य का संचालन नहीं होगा। क्योंकि अनुष्ठान आदि करने के लिए बहुत काल की अपेक्षा होती है। अतः दिलीप ने सम्पूर्ण जगत का भार मन्त्रियों को समर्पित कर दिया। क्योंकि सम्पूर्ण जगत दिलीप के शासनाधीन था। यद्यपि प्रजा का पालन ही राजा का मुख्य कर्तव्य होता है। फिर भी दिलीप ने सन्तान लाभ के लिए उस कर्तव्य का परित्याग किया। क्योंकि सन्तान से ही पितृ ऋण की पूर्ति संभव है। इस प्रकार राज्य परिचालन का परित्याग करके पुत्रलाभ के आकांक्षी दिलीप धर्माचरण करने के लिए उद्यत थे।

व्याकरण विमर्श -

- **सन्तानार्थाय:**- सन्तानः अर्थः यस्य स सन्तानार्थः इति बहुव्रीहिसमासः, तस्मै सन्तानार्थाय। अथवा सन्तानाय अयम् सन्तानार्थः इति चतुर्थीतत्पुरुषसमासः, तस्मै सन्तानार्थाय।
- **विधये:**- विधीयते इति विधिः भवति। अनुष्ठानम् इत्यर्थः।
- **स्वभुजाद्:**- स्वस्य भुजः स्वभुजः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तस्मात् स्वभुजात्।
- **अवतारिता:** - अवपूर्वकात् तृधातोः णिचि क्तप्रत्यये स्त्रियां टापि च अवतारिता इति रूपम्।
- **गुर्वी:** - गुरुशब्दस्य स्त्रियों ङीपि गुर्वी इति रूपम्।
- **निचिक्षिपे:** - निपूर्वकस्य क्षिप् धतोः लिटि कर्मणि प्रथमपुरुषैकवचने निचिक्षिपे इति रूपम्। निक्षिप्तवान् इति अर्थः।

संधिकार्यम् -

- स्वभुजादवतारिता- स्वभुजात् + अवतारिता
- धूर्जगतो गुर्वी - धूः+जगतः+गुर्वी
- प्रयोगपरिवर्तनम्- स सन्तानार्थाय विधये स्वभुजात् अवतारितां जगतः गुर्वी धं सचिवेषु निचिक्षेप।

पाठगतप्रश्न-6.11

36. जगत का धूः (भार) कैसा था?
37. 'सन्तानार्थाय' इस शब्द का क्या अर्थ है?
38. निचिक्षेपे का धातु तथा लकार लिखिए।

पाठसार

महाराज दिलीप प्रजावत्सल थे। क्योंकि प्रजा की शिक्षा व्यवस्था, रक्षण, पोषण इत्यादि सब

देखते थे। पिता के कार्यों को करने के कारण दिलीप ही प्रजा के पिता थे। उनके प्रकृत पिता तो जन्म के कारण थे। लोकहित के लिए दण्डनीय लोगों को दण्ड देते थे न कि धन संग्रह के लिए। इसी प्रकार सन्तान लाभ के लिए विवाह किया था न कि भोग के लिए। उनके अर्थकाम के साधन धर्म को ही सिद्ध करते थे। देवराज इन्द्र के साथ उनकी मित्रता थी। दिलीप पृथ्वी से कर संग्रह करके यज्ञादि का सम्पादन करते थे। अन्य राजा महायशस्वी दिलीप की कीर्ति का अनुकरण भी नहीं कर पाते थे। क्योंकि दिलीप के राज्य में तस्करता शब्द सुनने में ही आता था। उसके शत्रु भी सच्चरित्रशाली होने पर ग्राह्य थे जैसे रोगी द्वारा रुचि रहित भी औषधि ग्राह्य होती है। आत्मीय जन भी दुष्ट हो तो उनके द्वारा त्याज्य थे जैसे सर्पदंशित अंगुली अभीष्ट होने पर भी त्याज्य होती है। ब्रह्मा ने उसको महाभूत कारण सामग्री से बनाया था। अतः उसके सभी गुण परार्थकफल थे। समग्र पृथ्वी ही उसके शासनाधीन थी। अतएव उसके राज्य की खाई समुद्र था। समुद्र तट उसके राज्य का परकोटा था। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी एक नगरी के समान शासित थी। उसकी पत्नी मगधकुल में उत्पन्न सुलक्षणा सुदक्षिणा थी। वह यज्ञ की पत्नी दक्षिणा के समान उदारता के कारण प्रसिद्ध थी। वह सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी था। फिर भी वह धर्मभार्या सुदक्षिणा, राजलक्ष्मी से अपने को कलत्रवान् मानता था। उस निजसदृश सुदक्षिणा से पुत्र जन्म हो, यह दिलीप की इच्छा थी। क्योंकि सुदक्षिणा भी क्षत्रियकुलोत्पन्न थी। अतः उस से उत्पन्न पुत्र अवश्य राजगुणोचित होगा ऐसा दिलीप सोचते थे। किन्तु विवाह के बाद बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। फिर भी उनको सन्तान लाभ नहीं हुआ। अतः दिलीप दुःख से आक्रान्त थे। इस कारण सन्तान लाभ के लिए शास्त्रनिर्दिष्ट अनुष्ठान करने के लिए दिलीप ने राज्यभार मन्त्रियों को समर्पित किया।

आपने क्या सीखा

- राजा दिलीप के प्रजा वात्सल्य को जाना।
- राजा दिलीप के लोकोत्तर गुणों को जाना।
- राजा दिलीप द्वारा मंत्रियों को राज्यभार सौंपना एवं उनकी पत्नी सुदक्षिणा के विषय में जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. दिलीप का अर्थसाधन और कामसाधन धर्म ही सिद्ध करते थे, विचार कीजिए।
2. ''द्वेष्योपि सम्मतः'' इत्यादि श्लोक में उपमा अलंकार सिद्ध कीजिए।
3. दिलीप किस प्रकार प्रजा के पिता थे?
4. दिलीप और देवेन्द्र ने कैसे दोनों लोकों का पोषण किया?
5. दिलीप के सभी गुण कैसे परार्थकफल है?

टिप्पणी

6. कलत्रवन्तम् इत्यादि श्लोक को आधार बनाकर-दिलीप का भोगपरांगमुखत्व का विचार कीजिए।
7. दिलीप ने क्यों राज्य भार मंत्रियों का समर्पित किया?
8. संक्षेप में पाठ सार लिखिए।
9. स्तम्भों के लिखित पदों का मेल कीजिए।

स्तम्भ (क)	**स्तम्भ (ख)**
1. दुदोह	1. अनुकृतवन्तः
2. दधतु	2. पृथ्वी
3. अनुययुः	3. स्वर्गलोकम्
4. तस्कर	4. उदगक्षता अंगुली
5. दिलीप	5. दुग्धवान्
6. इन्द्र	6. औषधम्ः
7. दुष्टः प्रि	7. मगधवंशजा
8. शिष्टः शत्रुः	8. पुपुषतुः
9. सुदक्षिणा	9. चोर्यवृतिः।

उत्तरः- 1-5, 2-8, 3-1, 4-9, 5-2, 6-3, 7-6, 8-4, 9-7

पाठगतप्रश्नों के उत्तर

6.1

1. दिलीप शिक्षा, रक्षा व भरण के कारण प्रजा के पिता थे।
2. लोगों के पिता दिलीप थे।
3. विनयस्थ आधान विनयाधनभ् षष्ठीतत्पुरप समास, तस्मात- विनयाधनात्।
4. 3

6.2

5. दिलीप दण्डयोग्य स्थिति में दण्डवान् थे।
6. दिलीप का अर्थ और काम धर्म ही था।

7. दण्डयत् मूल शब्द षष्ठी विभक्ति एक वचन है।

8. 1

6.3

9. दिलीप यज्ञ के लिए पृथ्वी को दुहते थे।

10. दो लोको के नाम स्वर्ग लोक और पृथ्वी लोक।

11. दुदोह-दुह्धातु लिट्लकार का रूप है।

12. 4

6.4

13. दिलीप के राज्य में तस्करता शब्द सुनने मात्र के लिए था।

14. अनु-उपसर्ग 'या'धातु लिट लकार प्रथम पुरुष बहुवचन रुप है। इसका अर्थ अनुकरण किया।

15. किल + अनुययुः + तस्य

6.5

16. दिलीप के शत्रु यदि शिष्ट है तो औषधिवत् ग्राह्य था।

17. दिलीप के आत्मीय दुष्ट हो तो उदगक्षता अंगुली के समान त्याज्य थे।

18. प्रियः + अपि + आसीत् + अंगुली + इव + उरगक्षता।

19. 2

6.6

20. ब्रह्मा ने दिलीप की पंचमहाभूतसामग्री से रचना की। अतः दिलीप के सभी गुण परार्थकफल थे।

21. वि उपसर्ग, धा धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन रुप है।

22. महन्ति च तानि भूतानि महाभूतानि-कर्मधारय समास,। महाभूतानां समाधिः महाभूत समाधि :-षष्ठी तत्पुरूष समाष, तेन महाभूतसमाधिना।

23. दिलीप पृथ्वी को एक नगरी के समान शासन करते थे।

6.7

24. इस श्लोक में दिलीप के राज्य अर्थात् समग्र पृथ्वी एक पुरी से उपमित है। यह दिलीप का राज्य उपमेय है। एकपुरी उपमान है, इव उपमावाचक शब्द है। अतः उपमा अलंकार है।

25. अपरिखा: परिखा: यथा सम्पद्यन्ते तथा कृता: इस विग्रह में चित प्रत्यय से परिखीकृता रुप बनता है। परिखी कृता: सागरा: यस्या: सा परिखीकृत सागरा:- बहुव्रीहि समास, तां परिखीकृत सागरम्।

6.8

26. दिलीप पत्नी मगध वंश में पैदा हुई।

27. सुदक्षिणा दक्षिणा से उपमित है।

28. अविद्यमान: ध्वर यस्मिन् स: अध्वर: न बहुव्रीहिसमास, तस्य अध्वरस्य। यज्ञ इसका अर्थ है।

29. 2

6.9

30. दिलीप सुदक्षिणा और राजलक्ष्मी से कलत्रवान् था।

31. इस श्लोक से दिलीप को भोगपरांगमुखत्वम् सूचित होता है।

32. कलत्रवन्तम् + आत्मानम् + अवरोधे।

6.10

33. दिलीप विलम्बितफल मनोरथ से काल व्यतीत किया।

34. दिलीप अपने अनुरूप सुदक्षिणा में अपने जन्म से उत्सुक थे।

35. आत्मनो जन्म यस्य स आत्म जन्मा-व्यधिकरण बहुव्रीहि समास। अथवा आत्मन: जन्म-षष्ठी तत्पुरूष समास। आत्मजन्मनि समुत्सुक: आत्म जन्म समुत्सुक:- सप्तमी तत्पुरुष समास।

6.11

36. जगत का भार गुर्वी था।

37. सन्तानार्थय - अर्थ शब्द का अर्थ-प्रयोजन है।

38. नि उपसर्ग पूर्वक क्षिप् धतु लिट् लकार कर्म में प्रथम पुरूष एक वचन रूप है।

7

रघुवंश- वसिष्णाश्रम गमन

इसके बाद इस पाठ में चौदह श्लोकों को पढ़ेंगे। दिलीप सन्तान के प्राप्ति के लिए इच्छुक थे। तदर्थ वह शास्त्रविहित अनुष्ठान करने के लिए उद्यत थे। अतः उन्होंने राज्य भार मन्त्रियों को प्रदान किया। यह हम पूर्वपाठ में पढ़ चुके। उसके बाद दिलीप सुदक्षिणा के साथ एक रथ पर आरूढ होकर सन्तान कामना के लिए वसिष्ठाश्रम की ओर गये। वशिष्ठ रघुवंश के कुल गुरू थे। जब रघुवंशीय राजाओं पर विपत्ति आती थी तब महामुनि वसिष्ठ उनको उपदेश देते थे। उपदेश पालन से वे विपत्ति मुक्त हो जाते थे। अतः दिलीप भी सन्तान कामना से वसिष्ठाश्रम के प्रति गये। कवि ने उनके गमन काल में अतीव रमणीयता से मार्ग के दोनों ओर स्थित प्राकृतिक सौन्दर्य का और रथारूढ़ दम्पति का वर्णन किया है। अन्त में उन दोनों ने सायंकाल में वशिष्ठ तपोवन में प्रवेश किया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- सुदक्षिणा और दिलीप के वसिष्ठाश्रम गमन के कारण को जान पाने में;
- कालिदास की वर्णन शैली को समक्ष पाने में;
- श्लोकों का अन्वय कर पाने में;
- समास, सन्धि आदि व्याकरण के विषयों को समझ पाने में;
- अलंकारों का समन्वय कैसे करना चाहिए, यह समझ पाने में और;
- कठिन शब्दों का अर्थ जान पाने में।

टिप्पणी

7.1 मूलपाठः-

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम्।।35।।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवांह विद्युदैरावताविव।।36।।

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव।।37।।

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः।।38।।

मनोऽभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विध भिन्नाः शिखण्डिभिः।।39।।

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु।।40।।

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिह्लदैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।41।।

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ।।42।।

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलं।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्।।43।।

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्ध्यानुपदमाशिषः।।44।।

हैयङ्वीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।।45।।

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।।46।।

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लंघिगतमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।।47।।

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः।।48।।

7.2 मूलपाठ की व्याख्या

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम्।।35।।

अन्वय- अथपुत्रकाम्यया तौ दम्पती (सन्तौ) विधातारम् अभ्यर्च्य गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः।

अन्वयार्थः- अथ अनन्तरं पुत्रकाम्यया पुत्रस्य इच्छया तौ सुदक्षिणादिलीपौ दम्पती जायापती प्रयतौ पवित्रौ सन्तौ विधातारं ब्रह्माणम् अभ्यर्च्य पूजयित्वा गुरोः कुलगुरोः वसिष्ठस्य महर्षेः आश्रमं तपोवनं जग्मतुः गतौ।

सरलार्थः- तदनन्तर सुदक्षिणा और दिलीप को पुत्र प्राप्ति की इच्छा प्रेरित हुई। अतः दोनों जगत्स्रष्टा ब्रह्मा की पूजा करके कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम में गये।

तात्पर्यार्थः- इसके बाद दिलीप ने ब्रह्मा की पूजा की। उसके बाद वह अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम की ओर गये। वसिष्ठ रघुवंश के कुलगुरु थे। प्रकृत गुरु वह होता है जो शिष्य को विपत्ति के समय यथोचित मार्ग प्रदर्शित करता है।

दिलीप का अपने गुरु वसिष्ठ में असीम विश्वास था। अतः सन्तान प्राप्ति के प्रति जितने भी प्रतिबन्धक हैं, उनका निराकरण करवाने के लिए वसिष्ठ के समीप गये। क्योंकि वे विश्वस्त थे कि वसिष्ठ उसके लिए अवश्य कोई उपदेश देंगे। उसके उपदेश से संतान निर्बाध होगा। अतः दिलीप सन्तान प्राप्ति की कामना से वसिष्ठाश्रम के प्रति गये।

व्याकरण विमर्श-

- अभ्यर्च्य- अभिपूर्वकात् अर्च्-धातोः ल्यप्प्रत्यये अभ्यर्च्य इति रूपम्।
- विधातारम्- विदधाति इति विधाता भवलि। विधातृशब्दस्य प्रथमाद्विवचने विधातारम् इति रूपं भवति।
- पुत्रकाम्यया- आत्मनः पुत्रेच्छा पुत्रकाम्या, तया पुत्रकाम्यया। अत्र काम्यच्प्रत्ययः विहितः अस्ति।
- दम्पती-जाया च पतिः च इति विग्रहे समासे कृते दम्पती इति रूपम्। अत्र एकशेषसमासः भवति। इदं नित्यद्विवचनान्तम्।
- जग्मतु-गमनार्थकस्य गम्-धतोः लिटि प्रथमपुरुषद्विवचने जग्मतुः इति रूपम्। गतवन्तौ इत्यर्थः।

सन्धिकार्य-

- अथाभ्यर्च्यः- अथ + अभ्यर्च्य

टिप्पणी

- गुरोर्जग्मतुराश्रमम्- गुरो: + जग्मतु: + आश्रमम्
- प्रयोगपरिवर्तनम्:- अथ पुत्रकाम्यया ताभ्यां दम्पतिभ्यां प्रयताभ्यां विधातारम् अभ्यर्च्य गुरो: वसिष्ठस्य आश्रम: जग्मे।

पाठगतप्रश्न-7.1

1. सुदक्षिण और दिलीप क्यों वसिष्ठाश्रम में गये?
2. दम्पति शब्द को सिद्ध कीजिए।
3. वशिष्ठ दिलीप के कौन थे?
4. वह दम्पति किसकी अर्चना करके वशिष्ठाश्रम में गये?

   (1) विष्णु, (2) शिव, (3) सूर्य, (4) ब्रह्मा
5. वह दम्पति किस मुनि के आश्रम में गये।

   (1) वसिष्ठ के, (2) विश्वामित्र के, (3) दुर्वासा के, (4) कण्वके।

7.3 मूलपाठ की व्याख्या

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव॥ 36॥

अन्वय:-स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम् एकं स्यन्दनं प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावतौ इव आस्थितौ (तौ दम्पती गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

अन्वयार्थ:-स्निग्धगभीरनिर्घोषं मधुरगम्भीरशब्दम् एकं स्यन्दनम् एकं रथं प्रावृषेण्यं वर्षाकालजातं पयोवाहं मेघं विद्यदैरावतौ तडिदैरावतौ इव आस्थितौ आरूढौ (तौ दम्पती गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

सरलार्थ:-मधुर और गम्भीर शब्द करने वाले रथ पर आरूढ होकर सुदक्षिणा और दिलीप गये। जैसे वर्षा काल में विद्युत और ऐरावत हाथी बादल पर आश्रित होते हैं।

तात्पर्यार्थ:-दिलीप भार्या सुदक्षिणा के साथ रथ से वसिष्ठाश्रम को गये। जिस रथ से वे दोनों गये थे, वह रथ मधुर तथा गम्भीर ध्वनि वाले शब्दों से युक्त था। वर्षाकाल में इन्द्र का हाथी ऐरावत और बिजली बादल पर स्थित होते हैं। उसमें ऐरावत का मेघारोहण संभव है, और विद्युत भी मेघ पर ही होती है। अत: ऐरावत का विद्युत साहचर्य उचित ही है। यहां कवि ने दिलीप की ऐरावत से उपमा की, सुदक्षिणा की विद्युत से उपमा की। दोनों एक ही रथ पर साथ आरुद्ध थे। इस प्रकार जैसे ऐरावत मेघारुढ होकर विद्युत साहचर्य को प्राप्त करता है। वैसे ही दिलीप भी एक रथ पर आरुढ होकर सुदक्षिणा साहचर्य को प्राप्त है। क्योंकि वे दोनो एक ही रथ पर

आरुढ थे। इससे उस दम्पति की समान मानसिकता सूचित होती है। जिससे उनको सन्तान लाभ होगा। यह स्पष्ट होता है।

व्याकरणविमर्श-

- स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम्- स्निग्धः गम्भीरः निर्घोषः यस्य स स्निग्धगम्भीरनिर्घोषः इति बहुव्रीहिसमासः, तं स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम्।
- आस्थितौ- आङ्पूर्वकात् स्थाधतोः क्तप्रत्यये प्रथमाद्विचने आस्थितौ इति रूपम्।
- प्रावृषेण्यम्- प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यः, तं प्रावृषेण्यम्। वर्षर्तौ जातम् इत्यर्थः।
- विद्युदैरावतौ- विद्युत च ऐरावतः च विद्युदैरावतौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः।

सन्धिकार्य -

- स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकम्:- स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम् + एकम्
- स्यन्दनमास्थितौ:- स्यन्दनम् + आस्थितौ
- विद्युदैरावताविव:- विद्युदैरावतौ-इव
- प्रयोगपरिवर्तनम्:-स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम् एकं स्यन्दनं प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताभ्याम् इव आस्थिताभ्यां (ताभ्यां दम्पतीभ्यां गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमः जग्मे)।

अलंकारालोचना - यहाँ रथ मेघ से उपमित है, दिलीप इन्द्रगज ऐरावत से और सुदक्षिणा विद्युत से उपमित है। इस प्रकार यहाँ तीन उपमेय वाचक शब्द है। और तीन ही उपमान वाचक शब्द है। 'इव' उपमावाचक शब्द है। जैसे ऐरावत मेघ पर आरुढ़ विद्युत्साहचर्य को प्राप्त है वैसे दिलीप रथ पर आरुढ सुदक्षिणा साहचर्य को प्राप्त है यह सादृश्य है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

पाठगतप्रश्न-7.2

6. दिलीप का रथ कैसा था?
7. सुदक्षिणा और दिलीप किससे उपमित है?
8. प्रावृषेण्याशब्दं को सिद्ध कीजिए।
9. प्रावृट नाम की कौन सी ऋतु है।

   (1) ग्रीष्म ऋतुः, (2) वर्षा ऋतु, (3) बसंत ऋतु, (4) शरद ऋतु

टिप्पणी

7.4 मूलपाठ की व्याख्या

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुर:सरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव॥ 37॥

अन्वय:- आश्रमपीडा मा भूत् इति परिमेयपुर:सरौ अनुभावविशेषात् तु सेनापरिवृतौ इव (तौ दम्पति गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

अन्वयार्थ:- आश्रमपीडा तपोवनक्लेश: मा भूत् न अस्तु इति अत: परिमेयपुर:सरौ अल्पपरिचारकसहितौ अनुभावविशेषात् तेजोविशेषात् तु सेनापरिवृतौ इव अनीकपरिवेष्टितौ इव (तौ दम्पती गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

सरलार्थ:- तपोवन को क्लेश आदि नहीं हो, इस प्रकार चिन्तन करके वे दम्पति सीमित सेवक वर्ग को लेकर आश्रम में गये। किन्तु उन दोनों के तेज के प्रभाव से वे दोनों सेना से घिरे हुए से प्रतीत हो रहे थे।

तात्पयार्थ:- दिलीप समग्र धरातल के पति थे। इस कारण से वे कहीं पर भी जाते थे तो सेना से घिरे होकर ही जाते थे। किन्तु जब वे पुत्र लाभ के लिए अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ वसिष्ठाश्रम में गये तब अल्प सेना से घिरे हुए थे। क्योंकि मुनियों के आश्रम शान्त व कोलाहल शून्य होता है। वहाँ यदि दिलीप अधिक सैन्य को स्वीकार करके जाते तो आश्रम की शान्ति भंग होती। ये सब चिन्तन करके दिलीप अधिक सेना नहीं ले गये। किन्तु उन दोनों के मध्य में असामान्य तेज था। जब दोनों गये तब उनके साथ अल्प सैनिक थे। किन्तु तेज के कारण वे दोनों बहु सेना से घिरे हुए थे ऐसा प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार प्रस्तुत श्लोक में सुदक्षिणा और दिलीप के तेज के प्रभाव का वर्णन कवि ने किया है।

व्याकरण विमर्श :-

- आश्रमपीडा:–आश्रमस्य पीडा आश्रमपीडा इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:।
- परिमेयपुर:सरौ:–परिमेया: पुर:सरा: ययो: तौ परिमेयपुर:सरौ इति बहुव्रीहिसमास:।
- अनुभावविशेषात्:- अनुभावस्य विशेष: अनुभावविशेष: इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:, तस्मात् अनुभावविशेषात्।
- सेनापरिवृतौ:- सेनया परिवृतौ सेनापरिवृतौ इति तृतीयातत्पुरुषसमास:।
- मा भूत्:- मा भूत् इत्यस्य मा अभूत् इत्येव प्रकृतं स्वरूपम्। अत्र माङ्योगे इति सूत्रेणअडागम: न भवति। मा अस्तु इत्यर्थ:।

सन्धिकार्यम् :-

- भूदाश्रमपीडेति:–भूत्+आश्रमपीडा+इति
- अनुभावविशेषात्तु:–अनुभावविशेषाद्+तु
- सेनापरिवृताविव:–सेनापरिवृतौ+इव

प्रयोगपरिवर्तनम्- आश्रमपीडया मा भूयत इति परिमेयपुरः सराभ्याम् अनुभावविशेषात् तु सेनापरिवृताभ्याम् इव (ताभ्यां दम्पतीभ्यां गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमः जग्मे)।

पाठगतप्रश्न-7.3

10. सुदक्षिणा और दिलीप कहाँ सेना से घिरे हुए से थे?

11. मा भूत् यह प्रयोग कैसे सिद्ध होता है?

12. वे दोनों कैसे परिमेयपुरः सरौः थे?

7.5 मूलपाठ की व्याख्या

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगनिन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः॥ 38॥

अन्वय- सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः पुष्परेणूत्किरैः आधूतवनराजिभिः वातैः सेव्यमानौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

अन्वयार्थ- सुखस्पर्शैः आनन्दजनकस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः शालवृक्षजन्यगन्धयुक्तैः पुष्परेणूत्किरैः पुष्परेणुविक्षेपकैः आधूतवनराजिभिः वातैः पवनैः सेव्यमानौ परिचर्यमाणौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः।

सरलार्थ- दिलीप और सुदक्षिणा जब रथ से वसिष्ठ आश्रम की ओर जा रहे थे, तब मार्ग में वायु ने दोनों की सेवा की। वह वायु शालवृक्ष से उत्पन्न गन्ध से युक्त, पुष्परेणु को उड़ाने वाली वायु जंगली वृक्षों को कम्पन करवा रही थी।

तात्पर्यार्थः- दिलीप पुत्र प्राप्ति के लिए उत्कष्ठित थे। अतः वे पुत्र लाभ के लिए वसिष्ठाश्रम के प्रति रथ से गये। कवि दिलीप पत्नी के साथ तपोवन को जा रहे थे, तब मार्ग में स्थित वायु का वर्णन करते हैं। शालवृक्ष के रस से एक विशिष्ट गन्ध निष्पन्न होती है। पवन उस गन्ध से युक्त थी। पुष्पों मे रेणु होती है। वह वायु उस रेणु को इधर-उधर बिखेरती है, और भी वायु अतीव तीव्र वेग से बह रही थी अतः उस वायु द्वारा वन में स्थित वृक्ष भी काँप रहे थे। इस प्रकार मनोरम पवन से वे दम्पति सेवित हो रहे थे। माना जाता है कि स्वयं अरण्यपति ने ही उस वायु से वनमार्ग मे जाते हुए सुदक्षिणा और दिलीप की सेवा की।

व्याकरणविमर्श-

- **सेव्यमानौ**- सेव्धतोः कर्मणि शानच्प्रत्यये प्रथमाद्विवचने सेव्यमानौ इति रूपम्।
- **सुखस्पर्शैः**- सुखः स्पर्शः येषां ते सुखस्पर्शाः इति बहुव्रीहिसमासः, तैः सुखस्पर्शैः। इदं तृतीयाबहुवचनान्तं पदम्।

टिप्पणी

- **शालनिर्यासगन्धिभि** – शालस्य निर्यासः शालनिर्यासः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। षलनिर्यासस्य गन्धः शालनिर्यासगन्धः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। शालनिर्यासगन्धः अस्ति येषां ते शलनिर्यासगन्धिनः, तैः शलनिर्यासगन्धिभिः।
- **पुष्परेणूत्किरै**– पुष्पाणां रेणवः पुष्परेणवः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। उत्किरन्ति इति उत्कीराः। पुष्परेणूनाम् उत्किराः पुष्परेणूत्किराः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तैः पुष्परेणूत्किरैः।
- **आधूतवनराजिभि** – ईषत् धूता इत्यर्थे आधूता इति रूपं भवति। आधूता वनराजिः यैः ते आधूतवनराजयः इति बहुव्रीहिसमासः, तैः आधूतवनराजिभिः।

सन्धिकार्य –

- **पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभि**– पुष्परेणूत्किरैः+वातैः+आधूतवनराजिभिः
- **प्रयोगपरिवर्तनम्**-सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः पुष्परेणूत्किरेः आधूतवनराजिभिः वातैः सेव्यमानाभ्यां (ताभ्यां दम्पतीभ्यां गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमः जग्मे)।

पाठगतप्रश्न-7.4

13. किस प्रकार वायु ने दोनों की सेवा की?
14. शालनिर्यासगन्धिभिः पद को सिद्ध कीजिए।
15. पुष्परेणुत्किरैवर्तिराघूतवनराजिभिः का सन्धि विच्छेद कीजिए।
16. इनमें से वायु का विशेषण नहीं है।

    (1)सुखस्पर्शैः, (2)शालनिर्यासगन्धिभिः,(3)वृक्षरेणुत्किरैः,(4)आधूताख्याराजिभिः
17. सेव्यमानौ सेव् धतु और किस प्रत्यय से बना है–

    (1) शानच्प्रव्यय, (2) कानच्प्रत्यय, (3) चानश्प्रत्यय, (4) अन्यः कोपि

7.6 मूलपाठ को समझते हैं।

मनोऽभिरामाः श्रृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विध भिन्नाः शिखण्डिभिः॥ 39॥

अन्वय– रथनेमिस्वनोन्मुखैः शिखण्डिभिः द्विधः भिन्नाः षड्जसंवादिनीः मनोभिरामाः केकाः श्रृण्वन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

अन्वयार्थ– रथनेमिस्वनोन्मुखैः स्यन्दनजन्यशब्देन ऊर्ध्वमुखैः शिखण्डिभिः मयूरैः द्विधाः द्विविधाः भिन्नाः भेदयुक्ताः षड्जसंवादिनीः षड्जस्वरेण संवदतीः मनोभिरामाः चित्तप्रियाः केकाः मयूरवाणीः श्रृण्वन्तौ आकार्णयन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

सरलार्थ- जब सुदक्षिणा और दिलीप रथ से वन के मध्य में जा रहे थे, तब रथ के चक्र से उत्पन्न शब्द को सुनकर मयूर मुख को ऊपर कर रहे थे और वे षड्ज स्वर से मधुर ध्वनि भी कर रहे थे। ये सब सुनकर दोनों दम्पति वसिष्ठाश्रम को जा रहे थे।

तात्पर्यार्थ- सुदक्षिणा और दिलीप का रथ वनमार्ग से गया था। उनके रथ से गम्भीर ध्वनि निकल रही थी। उसी समय मार्ग के पास में कुछ मयूर थे, वे मयूर यह मेघ ध्वनि है, ऐसा सोच रहे थे। मेघ ध्वनि को करते है, तो अवश्य वर्षा होगी इस ऐसा चिन्तन करके वर्षा काल में मयूर नाचते व गाते हैं। यहाँ भी वन के मयूरों ने मेघ ध्वनि को सुनकर नृत्य गीत आदि करना शुरू कर दिया। इस श्लोक में वे मयूर षड्ज स्वर से युक्त थे ऐसा वर्णन कालिदास करते हैं। षड्ज ध्वनि शुद्ध और विकृत भेद से दो प्रकार की होती है। यहां भी मयूरों की ध्वनि भी शुद्ध और विकृत दो प्रकार की थी। वह केकारव/कलरव दोनों के मन को आह्लादित कर रहा था। इस प्रकार मनोरम केका धुन सुन कर दोनों सुदक्षिणा और दिलीप वसिष्ठाश्रम को गये।

व्याकरणविमर्श-

- मनोभिरामाः-मनसः अभिरामाः मनोभिरामाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। इदं द्वितीयाबहुवचनान्तं रूपम्।
- श्रृण्वन्तौः-श्रुधातोः शतृप्रत्यये प्रथमाद्विवचने शृण्वन्तौ इति रूपम्।
- रथनेमिस्वनोन्मुखैः- रथस्य नेमयः रथनेमयः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। रथनेमीनां स्वनाः रथनेमिस्वनाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। ऊर्ध्व मुखं येषां ते उन्मुखाः इति बहुव्रीहिसमासः। रथनेमिस्वनैः उन्मुखाः रथनेमिस्वनोन्मुखाः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः, तैः रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
- षड्जसंवादिनीः- षड्भ्यः जायते इति षड्जः। षड्जेन संवदन्ति इति षड्जसंवादिन्यः, ताः षड्जसंवादिनीः। इदं द्वितीयाबहुवचनान्तं पदम्।

पाठगतप्रश्न-7.5

18. मयूर किस स्वर से गा रहे थे?
19. वे कैसे मुख को ऊपर कर रहे थे?
20. रथनेमिस्वनोन्मुखैः- का विग्रह और समास लिखिए।
21. मयूर किस स्वर से केकारव करते हैं?

    (1) षड्जस्वरेण, (2) मध्यमस्वरेण, (3) पञ्चमस्वरेण, (4) सप्तस्वरेण
22. ध्वनि कितने प्रकार की होती है?

    (1) तीन, (2) चार, (3) पांच, (4) दो

टिप्पणी

7.7 मूलपाठ की व्याख्या

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु॥ 40॥

अन्वय- अदूरेज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु मृगद्वन्द्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यं पश्यन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

अन्वयार्थ - अदूरोज्झितवर्त्मसु समीपात् त्यक्तमार्गेषु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु रथे आबद्धदृष्टिषु मृगद्वन्द्वेषु हरिणयुगलेषु परस्पराक्षिसादृश्यम् परस्परनयनसमानतां पश्यन्तौ अवलोकयन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)

सरलार्थ- जब वन मार्ग में सुदक्षिणा और दिलीप का रथ जा रहा था तब मार्ग में स्थित मृग उस रथ को देख रहे थे। रथ जब समीप आ गया, तब ही मार्ग को छोड़ रहे थे। दोनों ने उन मृगद्वन्दों में परस्पर नेत्र सादृश्य को देखा।

तात्पर्यार्थ- सुदक्षिणा और दिलीप दोनों पुत्र लाभ के लिए वन मार्ग से वसिष्ठ के आश्रम को गये। वनमार्ग में प्रायः मृग विचरण कर रहे थे। जब उनका रथ आ गया तब भी मृग मार्ग के मध्य में ही थे। किन्तु रथ को देखकर भी वे मृग मार्ग को नहीं छोड़ रहे थे। जब रथ उनके समीप आ गया तब ही वे मार्ग को छोड़ रहे थे। इससे ज्ञात होता है कि उन हिरणों का मनुष्यों में विश्वास था। क्योंकि वनमार्ग में प्रायः रथ नहीं आते हैं। अतः रथागम विशेष के कारण वे रथ को देख रहे थे। इस प्रकार के मृगयुगलों में राजा रानी ने परस्पर नेत्रसादृश्य को देखा। अर्थात दिलीप ने मृगों से सुदक्षिणा के नेत्रसादृश्य को देखा। सुदक्षिणा ने भी मृगों में दिलीप के नेत्रसादृश्य को देखा।

व्याकरण विमर्श -

- **परस्पराक्षिसादृश्यम्**:- अक्ष्णोः सादृश्यम् अक्षिसादृश्यम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। परस्परम् च तत् अक्षिसादृश्यम् परस्पराक्षिसादृश्यम् इति कर्मधारयसमासः। इदं द्वितीयैकवचनान्तं रूपम्।
- **अदूरोज्झितवर्त्मसु**:-न दूरम् अदूरम् इति नञतत्पुरुषसमासः। उज्झितं वर्त्म यैः तानि उज्झितवर्त्मानि इति बहुव्रीहिसमासः। अदूरं यथा तथा उज्झितवर्त्मानि अदूरोज्झितवर्त्मानि इति सुप्सुपासमासः तेषु अदूरोज्झितवर्त्मसु।
- **मृगद्वन्द्वेषु**:- मृगाणां द्वन्द्वानि मृगद्वन्द्वानि इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेषु मृगद्वन्द्वेषु।
- **पश्यन्तौ**-दृश्-धतोः-शतृप्रत्यये प्रथमाद्विवचने पश्यन्तौ इति रूपम्।
- **स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु**:-आबद्धा दृष्टिः यैः तानि आबद्धदृष्टीनि इति बहुव्रीहिसमासः। स्यन्दने आबद्धदृष्टीनि स्यन्दनाबद्धदृष्टीनि इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः तेषु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु।

टिप्पणी

सन्धिकार्यम्-

- **परस्पराक्षसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु**:-परस्पराक्षिसादृश्यम्+अदूरोज्झितवर्त्मसु
- **प्रयोगपरिवर्तनम्**-अदूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु मृगद्वन्द्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यं पश्यद्भ्यां (ताभ्यां दम्पतीभ्यां गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमः जग्मे)।

पाठगत प्रश्न-7.6

23. मृग कैसे मार्ग का परित्याग कर रहे थे?
24. उन दोनों ने परस्पर लोचन सादृश्य को कहाँ देखा?
25. "अदूरोज्झितवर्त्मसु" का विग्रह और समास लिखिए।
26. सुदक्षिणा और दिलीप ने मृगद्वन्द्वों में क्या देखा?

    (1) प्रेमप्राचुर्यय, (2) मित्रता, (3) नेत्रसादृश्य, (4) मुखसादृश्य।

7.8 मूलपाठ की व्याख्या

श्रेणीबन्धाद् वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ॥41॥

अन्वय- श्रेणीबन्धात् अस्तम्भां तोरणस्रजं वितन्वद्भिः कलनिर्ह्रादैः सारसैः क्वचित् उन्नमिताननौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

अन्वयार्थ- श्रेणीबन्धत् पङ्क्तिबन्धात् अस्तम्भां स्तम्भरहितां तोरणस्रजं बहिर्द्वारि स्थितां पुष्पमालां वितन्वद्भिः कुर्वद्भिः कलनिर्ह्रादैः मधुरध्वनिना सारसैः तन्नामकैः पक्षिभिः क्वचित् कुत्रचित् उन्नमिताननौ ऊर्ध्वीकृतमुखौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

सरलार्थ- जब दिलीप और सुदक्षिणा वनमार्ग से जा रहे थे तब आकाश में मधुरध्वनि को करते हुए सारसों ने आकाश में स्तम्भरहित तोरणमाला बनायी। उस माला को देख देखकर ऊपर मुख किये हुए दोनों दम्पति वशिष्ठ तपोवन गये।

तात्पर्यार्थ- कोई भी सम्मानीय जन घर की ओर आते हैं, तो गृहस्थ जन द्वार के बाहर द्वार पर पुष्पमाला स्थापित करते हैं। इसमें आये हुए जन की अभ्यर्चना की जाती है दिलीप और सुदक्षिणा पुत्रप्राप्ति की कामना से तपोवन गये। अतः आये हुए दम्पति के लिए आकाश में सारस पक्षियों ने तोरण माला का निर्माण किया। किन्तु यह माला सामान्य नहीं है। क्योंकि सामान्य माला किसी स्तम्भ के आधार पर होती है। सारसों द्वारा बनायी गई माला का आकाश में कोई स्तम्भ नहीं था। अतएव"अस्तम्भा तोरण स्रक"यह कवि ने वर्णन किया है उन सारसों की ध्वनि भी सुमधुर थी। इस सुमधुर ध्वनि को सुन-सुनकर और आकाश में सारस पक्षियों की मनोरम माला को देख-देखकर दिलीप और सुदक्षिणा तपोवन को गये।

टिप्पणी

व्याकरण विमर्श -

- **श्रेणीबन्धत्**:-श्रेण्या: बन्ध: श्रेणीबन्ध: इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:, तस्मात् श्रेणीबन्धत्।
- **वितन्वद्भि**:- विपूर्वकात् तन्-धातो: शतृप्रत्यये वितन्वत् इति प्रातिपदिकं निष्पद्यते। तस्य तृतीयाबहुवचने वितन्वद्भि: इति रूपम्।
- **अस्तम्भाम्**:- अविद्यमान: स्तम्भ: यस्या: सा अस्तम्भा इति नञ्बहुव्रीहिसमास:, ताम् अस्तम्भाम्।
- **तोरणास्रजम्**:- तोरणे स्रक् तोरणास्रक् इति सप्तमीतत्पुरुषसमास:, तां तोरणस्रजम्। तोरणं नाम बहिर्द्वारम्।
- **कलनिह्वद**:- कल: निर्ह्राद: येषां ते कलनिर्ह्रादा: इतिबहुव्रीहिसमास:, तै: कलनिद्वदि:।
- **उन्नमिताननौ**:- उत्पूर्वकात् नम्-धतो: णिचि क्तप्रत्यये उन्नमितम् इति रूपम्। उन्नमितम् आननं ययो: तौ उन्नमिताननौ इति बहुव्रीहिसमास:।

सन्धिकार्यम् -

- **वितन्वद्भिरस्तम्भाम्**-वितन्वद्भि:+अस्तम्भाम्
- **क्वचिदुन्नमिताननौ**-क्वचित्+उन्नमिताननौ
- **प्रयोगपरिवर्तनम्**-श्रेणीबन्धत् अस्तभां तोरणस्रजं वितन्वद्भि: कलनिर्ह्रादै: सारसै: क्वचित् उन्नमिताननाभ्यां (ताभ्यां दम्पतीभ्यां गुरो: वसिष्ठस्य आश्रम: जग्मे)।

पाठगत प्रश्न-7.7

27. सारसों ने कैसे तोरण स्रक बनायी?
28. तोरण स्रक कैसी थी?
29. उन्नमिताननौ" को स्पष्ट कीजिए।

7.9 मूलपाठ की व्याख्या

पवनस्यानुकूलत्वात् प्रार्थनासिद्धिशंसिन:।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ।। 42।

अन्वय- प्रार्थनासिद्धिशंसिन: पवनस्य अनुकूलत्वात् तुरगोत्कीर्णै: रजोभि: अस्पृष्टालकवेष्टनौ (तौ दम्पती गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

अन्वयार्थः-प्रार्थनासिद्धिशंसिनः मनोरथसाफल्यसूचकस्य पवनस्य वायोः अनुकूलत्वात् आनुकूल्यात् तुरगोत्कीर्णैः अश्वखुरेण उक्षिप्तैः रजोभिः धूलिभिः अस्पृष्टालकवेष्टनौ अस्पृष्टौ केशोष्णीषौ ययोः (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

सरलार्थः-सुदक्षिणा और दिलीप के गमन समय में मनोरथ सिद्धि सूचक वायु अनुकूल रूप से प्रवाहित हो रही है। अतएव घोड़ों के खुरों से उड़ाई गयी धूलि ने दिलीप के उष्णी (पगड़ी)को और सुदक्षिणा के अलक को स्पर्श नहीं किया।

तात्पर्यार्थः-महाराज दिलीप भार्या सुदक्षिणा के साथ महर्षि वशिष्ठ के तपोवन में गये थे। उनकी मनोकामना थी कि महर्षि के उपदेश से पुत्र लाभ होगा। जब दोनों रथ से जा रहे थे, तब मार्गस्थ वायु अनुकूलता से बह रही थी। अर्थात् रथ जिस दिशा में जा रहा था उसी दिशा में वायु भी प्रवाहित हो रही थी। इस प्रकार अनुकुल वायु प्रवाह उनके मनोरथ सिद्धि ज्ञापक था। यहाँ कवि का आशय है, रथ वाहक अश्वों के खुरो से धूली के कण उड़ रहे थे। किन्तु वे धूली के कण दिलीप की पगड़ी और सुदक्षिणा के अलक को स्पर्श नहीं कर रहे थे। अनुकूल पवन की सहायता से दोनों निर्मल होते हुए वशिष्ठ आश्रम को गये।

व्याकरण विमर्श-

- **अनुकूलत्वात्**:-अनुकूलस्य भावः अनुकूलत्वम्, तस्मात् अनुकूलत्वात्।
- **प्रार्थनासिद्धिशांसिनः**- प्रार्थनायाः सिद्धिः प्रार्थनासिद्धिः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। प्रार्थनासिद्धिं शंसति इति प्रार्थनासिद्धिशंसी, तस्य प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
- **तुरगोत्कीर्णैः**-तुरगैः उत्कीर्णानि तुरगोत्कीर्णानि इति तृतीयातत्पुरुषसमासः, तैःतुरगोत्कीर्णैः। इदंतृतीयाबहुवचनान्तं रुपम्।
- **अस्पृष्टालकवेष्टनौ**:-न स्पृष्टानि अस्पृष्टानि इति नञ्तत्पुरुषसमासः। अलकाः च वेष्टनं च अलकवेष्टनानि इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः। अस्पृष्टानि अलकवेष्टनानि ययोः तौ अस्पृष्टालकवेष्टनौ इति बहुव्रीहिसमासः।

सन्धिकार्य-

- **पवनस्यानुकूलत्वात्**:- पवनस्य+अनुकूलत्वात्
- **रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ**-रजोभिः-तुरगोत्कीर्णैः+अस्पृष्टालकवेष्टनौ

पाठगत प्रश्न-7.8

30. पवन कैसी थी?

31. पवन ने किसी प्रकार कार्यद्वय किये?

32. रजोभिस्तुरगोत्कीणैरस्पृष्टालकवेष्टनौ'' का सन्धि विच्छेद कीजिए।

टिप्पणी

7.10 मूलपाठ की व्याख्या

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिः श्वासानुकारिणम्॥43॥

अन्वय- सरसीषु वीचिविक्षोभशीतलं स्वनिःश्वासानुकारिणम् अरविन्दानाम् आमोदम् उपजिघ्रन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

अन्वयार्थ- सरसीषु सरोवरेषु वीचिविक्षोभशीतलं तरङ्सञ्च्लेन शीतलीभूतं स्वनिःश्वासानुकारिणं निजनिःश्वासस्य अनुकरणं कुर्वन्तम् पद्मानां आमोदं सौरभम् उपजि घ्रन्तौ घ्राणेन गृहन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

सरलार्थ- सरोवरों में तरंग के सम्पर्क से पद्मों की सुगन्ध शीतल थी। सुदक्षिणा और दिलीप अपनी निश्वास को अनुकूल करते हुए उस सौरभ की सुगन्ध ग्रहण करते हुए वशिष्ठ आश्रम को चले।

तात्पर्यार्थ- जिस वनमार्ग से सुदक्षिणा और दिलीप वशिष्ठाश्रम को गये, उस मार्ग के पास में सरोवर थे। उन सरोवरों की तरंग शीतल थी। उन सरोवरों में कमल प्रस्फुटित हो रहे थे। जब वायु सरोवर के ऊपर प्रवाहित हो रही थी तब पद्मसौरभयुक्त थी। और शीतल तरंग के सम्पर्क से वायु शीतल होती थी। गमन वेला में इस प्रकार की शीतल सुरभि और पवन की सुगन्ध ले रहे थे। वायु उन दोनों के निःश्वास का अनुकरण कर रही थी। इससे उनके निःश्वास अरविन्द से भी परिमलभरित थे। इस प्रकार प्रस्तुत श्लोक से कवि उनके निःश्वास का वर्णन करते हैं।

व्याकरण विमर्श -

- वीचिविक्षोभशीतलम्-वीचीनां विक्षोभः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। वीचिविक्षोभेण शीतलं वीचिविक्षोभः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। वीचिविक्षोभेण शीतलं वीचिविक्षोभशीतलम् इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।
- उपजिघ्रन्तौ-उपपूर्वकात् घ्राधातोः शतृप्रत्यये प्रथमाद्विवचने उपजिघ्रन्तौ इति रूपम्।
- स्वनिःश्वासानुकारिणाम्-स्वस्य निःश्वासः स्वनिःश्वासः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। स्वनिःश्वासम् अनुकरोति इत्यर्थे स्वनिःश्वासानुकारी इति रूपम्, तं स्वनिःश्वासनुकारिणाम्।

सन्धिकार्यम्-

- सरसीष्वरविन्दानाम्-सरसीषु+अरविन्दानाम्
- आमोदमुपजिघ्रन्तौ-आमोदम्+उपजिघ्रन्तौ

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न-7.9

33. अरविन्दों के परिमल कैसे शीतल हुए?

34. आमोद: ने किनको अनुक्रम किया?

35. दम्पति के नि:श्वास कैसे हैं?

7.11 मूलपाठ की व्याख्या

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्।
अमोघा: प्रतिगृह्णन्तावर्ध्यानुषदमाशिष:।।44।।

अन्वय- आत्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु ग्रामेषु यज्वनाम् अर्ध्यानुपदम् अमोध आशिष: प्रतिगृह्णन्तौ (तौ दम्पती गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

अन्वयार्थ- आत्मविसृष्टेषु स्वदत्तेषु यूपचिह्नयुक्तेषु ग्रामेषु यज्वनां यज्ञं कुर्वतां यज्ञिकानाम् अधर्यानुपदम् अर्ध्यग्रहणानन्तरं अमोघा: सफला आशिष: आशीर्वादान् प्रतिगृह्णन्तौ स्वीकुर्वन्तौ (तौ दम्पती गुरो: वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतु:)।

सरलार्थ- गमन काल में ग्रामों में याज्ञिकों के सफल आशीर्वाद को दोनों ने स्वीकार किया वे ग्राम दिलीप द्वारा प्रदान किये गये यूपचिह्नयुक्त थे।

तात्पर्यार्थ- दिलीप महान् दाता थे। अत यज्ञ सम्पादन के बाद वह याज्ञिकों को सम्पूर्ण ग्राम देते थे। क्योंकि सम्पूर्ण पृथ्वी उनके अधीन थी। उन ग्रामों में यज्ञ के समय पशुबलि दी जाती थी। बलि से पूर्व पशु जिस दारु में बद्ध करके संस्थापित करते हैं उस दारु को यूपदारु कहते हैं। उन ग्रामों में प्राय: यज्ञादि होते थे अत: बहुत अधिक यूपदारु दिखाई दे रहे थे। उन ग्रामों में याज्ञिक निवास करते थे। दिलीप जा रहे हैं, ऐसा जानकर वे मार्ग के पास आ गये। वे पण्डित दम्पति को आशीर्वाद दे रहे थे। वह आशीर्वाद दिलीप और सुदक्षिणा के अभीष्ठ का साधक था। अत: वे दोनों उन आशीर्वादों को ग्रहण करके वसिष्ठाश्रम को गये।

व्याकरण विमर्श -

- **आत्मविसृष्टेषु**-आत्मना विसृष्टा: आत्मविसृष्टा: इति तृतीयातत्पुरुषसमास: तेषु आत्मविसृष्टेषु।
- **यूपचिद्वेषु**- यूपा: एवं चिह्नानि येषां ते यूपचिह्ना: इति बहुव्रीहिसमास:, तेषु यूपचिह्नेषुं।
- **यज्वनाम्**- अयजन्त इति यज्वान:, तेषां यज्वनाम्। इदं षष्ठीबहुवचनान्तं रूपम्।
- **अमोघा** - न मोघा: अमोघा: इति नञ्तत्पुरुषसमास:। इदं द्वितीयैकवचनान्तं पदम्।
- **प्रतिगृह्णन्तौ**-प्रतिपूर्वकात् ग्रह्-धातो: शतृप्रत्यये प्रथमाद्विवचने प्रतिगृह्णन्तौ इति रूपम्।

टिप्पणी

- **अधर्यानुपदम्-** अर्घाय इदम् इति अर्थे यत्प्रत्यये अर्ध्यशब्दः निष्पद्यते। पदस्य पश्चात् अनुपदम् इति अव्ययीभावसमासः। अर्ध्यस्य अनुपदम् अधर्यानुपदम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
- **अशिष-** आशिष्-शब्दस्य द्वितीयाबहुवचने आशिषः इति रूपम्।

सन्धिकार्यम्-

- **ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु-** ग्रामेषु+आत्मविसृष्टेषु
- **प्रतिगृह्णन्तावर्ध्यानुपदमाशिषः-** प्रतिगृह्णन्तौ+अर्ध्यानुपदम्+आशिषः

पाठगत प्रश्न-7.10

36. ग्राम किसने किसको दिये?

37. याज्ञिकों का आशीर्वाद कैसा था?

38. ''प्रतिगृहणन्ताव र्ध्यानुपदमाशिष' का सन्धि विच्छेद कीजिए।

7.12 मूलपाठ की व्याख्या

हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्॥45॥

अन्वय- हैयंगवीनम् आदाय उपस्थितान् घोषवृद्धान् वन्यानां मार्गशखिनां नामधेयानि पृच्छन्तौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)

अन्वयार्थ- हैयंगवींन ह्यस्तनेन गोदोहनेन उत्पन्नं घृतम् आदाय गृहीत्वा उपस्थितान् समीपस्थितान् घोषवृद्धान आभीरपल्लीवृद्धजनान् वन्यानाम् अरण्ये जातानां मार्गशाखिनां मार्ग्स्थवृक्षाणां नामध `यानि नामानि पृच्छन्तौ जिज्ञासमानौ (तौ दम्पती गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमं जग्मतुः)।

सरलार्थ- दिलीप और सुदक्षिणा ने मार्ग में बहुत से वृक्षों को देखा, जिनका नाम वे नहीं जानते थे। जब वृद्ध जन ताजा मक्खन लेकर दिलीप के पास आये, तब दिलीप ने उन वृक्षों के नाम उन वृद्धजनों से पूछे।

तात्पर्यार्य- मनु ने कहा है कि राजा वृद्ध जनों की सेवा करें। अतः दिलीप भी आभीर पल्ली में रहने वाले वृद्ध जनों के प्रति श्रद्धाशील थे। राजा ने वन को अतिक्रम्य करके घोष पल्ली मे प्रवेश किया। क्षितीश्वर महाराज दिलीप आ गये ऐसा देखकर घोषपल्ली में स्थित जन हैयंगवीन (ताजा मक्खन) लेकर उपस्थित हुए। हयः (कल) गोदोहन से जो दुग्ध उत्पन्न हुआ उस दुग्ध से निर्मित धृत (घी) को हैयंगवीन (ताजा मक्खन) कहते हैं। दिलीप सामने उपस्थित हुए उनको देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। मार्ग में कुछ वृक्षों को देखकर जिनका

नाम वह नहीं जानते हैं। वृद्ध जन इस विषय में अधिक ज्ञान सम्पन्न थे ऐसा दिलीप ने जाना। अतः दिलीप वृक्षों के नामों को जानकर वसिष्ठाश्रम की ओर गये।

व्याकरण विमर्श -

- **आदायः**- आङ्पूर्वकात् दाधतोः ल्यप्प्रत्यये आदाय इति रूपम्।
- **घोषवृद्धानः**- घोषे वृद्धाः घोषवृद्धाः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः, तान् घोषवृद्धान्।
- **उपस्थितान्**:- उपपूर्वकात् स्थाधातोः क्तप्रत्यये उपस्थित इति प्रातिपदिकं निष्पद्यते। तस्य द्वितीयाबुहवचने उपस्थितान् इति रूपम्।
- **नामधेयानिः**-नामानि एव तानि इति अर्थे नामशब्दात् धेयप्रत्यये नामधेयानि इति रूपम्। इदं द्वितीयाबहुवचनान्तं पदम्।
- **पृच्छन्तौः**-प्रच्छ्-धातोः शतृप्रत्यये प्रथमद्विवचने पृच्छन्तौ इति रूपम्।
- **वन्यानाम्**:- वने भवाः वन्याः तेषां वन्यानाम्।
- **मार्गशाखिनाम्**:- मार्गे शाखिनः मार्गशाखिनः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः, तेषां मार्गशखिनाम्।

सन्धिकार्य-

- **हैयङ्गवीनमादायः**- हैयङ्गवीनम्+आदाय
- **घोषवृद्धानुपस्थितान्**:- घोषवृद्धान्+उपस्थितान्

पाठगत प्रश्न-7.11

39. हैयंगवीन किसे कहते हैं?
40. उनको मार्गवृक्षों के नाम किसने बताये?
41. वृद्धजन क्या लेकर उपस्थित हुए?
42. सुदक्षिणा और दिलीप कहाँ आये?

    (1)ब्राह्मणग्राम, (2)जलाशल, (3) यज्ञस्थान, (4) आभीरग्राम

7.13 मूलपाठ की व्याख्या

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोयोगे चित्राचन्द्रमसोरिव॥46॥

अन्वय- व्रजतोः शुद्धवेषयोः तयोः हिमनिर्मुक्तयोः चित्राचन्द्रमसोः इव योगे (सति) कापि अभिख्या आसीत्।

अन्वयार्थ- व्रजतोः गच्छतोः शुद्धवेषयोः पवित्रवस्त्रयोः तयोः सुदक्षिणादिलीपयोः हिमनिर्मुक्तयोः तुषाररहितयोः चित्राचन्द्रमसोः इव चित्रानामकनक्षत्रचन्द्रयोः इव योगे संयोगे सति कापि काचित् अभिख्या शोभा आसीत् अभवत्।

सरलार्थ- वशिष्ठाश्रम में जाते हुए पवित्र वस्त्रधारी सुदक्षिणा और दिलीप शोभायुक्त थे। जैसे संयोग होते हुए चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा शोभा युक्त होता है।

तात्पर्यार्थ- दिलीप और सुदक्षिण पवित्र वस्त्र धारण करके वशिष्ठाश्रम जा रहे थे। वहाँ जाते हुए दोनों के वर्णन के लिए कवि ने एक उपमा दी है। चैत्रमास की पूर्णिमा में चित्रा नक्षत्र चन्द्रमा से मिलता है। जब चित्रा और चन्द्रमा मिलते हैं तब वे दोनों अपूर्वशोभा युक्त दिखाई देते हैं। यहां सुदक्षिणा चित्रा नक्षत्र से और दिलीप चन्द्रमा से उपमित हैं। सुदक्षिणा और दिलीप रथ पर आरूढ़ होकर तपोवन जा रहे थे। अतः उन दोनों के संयोग से अपूर्व शोभा थी। जैसे चित्रा और चन्द्रमा को संयोग में शोभा होती है। इस प्रकार के उनके संयोग के वर्णन से सन्तान लाभ में उनकी अनुकूलता ही प्रदर्शित होती है। अर्थात् जिस कारण से वे तपोवन में जा रहे थे, वह सिद्ध होगा ऐसा मानते हैं। इस श्लोक से कालिदास को ज्योतिषशास्त्र का सम्यक् ज्ञान था, यह स्पष्ट होता है।

व्याकरण विमर्श-

- **व्रजतोः**- व्रज्-धातोः शतृप्रत्यये व्रजत् इति प्रातिपदिकं निष्पद्यते। तस्य षष्ठीद्विवचने व्रजतोः इति रूपम्। इदं षष्ठीद्विवचनान्तं पदम्।
- **शुद्धवेषयोः**-शुद्धः वेषः ययोः तौ शुद्धवेषौ इति बहुव्रीहिसमासः, तयोः, शुद्धवेषयोः।
- **हिमनिर्मुक्तयोः**- हिमात् निर्मुक्तौ हिमनिर्मुक्तौ इति पञ्चमीतत्पुरुषसमासः, तयोः शुद्धवेषयोः।
- **चित्राचन्द्रमसोः**- चित्रा च चन्द्रमाः च चित्राचन्द्रमसौ इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः, तयोः चित्राचन्द्रमसोः।

सन्धिकार्य -

- **काप्यभिख्याः**- कापि+अभिख्या
- **तयोरासीद्ः**- तयोः+आसीद्
- **हिमनिर्मुक्तयोर्योगेः**- हिमनिर्मुक्तयोः+योगे
- **चित्राचन्द्रमसोरिवः**-चित्राचन्द्रमसोः+इव

अलंकारालोचना- यहाँ दिलीप चन्द्रमा से, और रानी सुदक्षिणा चित्रा नक्षत्र से उपमित है, इव उपमावाचक शब्द है, जैसे चित्रा और चन्द्रमा के योग में अद्वितीय शोभा होती है। वैसी शोभा सुदक्षिणा और दिलीप के योग में थी, यह सादृश्य है अतः यहां उपमालंकार है।

पाठगत प्रश्न-7.12

43. चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा का योग कब होता है?

44. अभिख्या किसे कहते है?

45. सुदक्षिणा और दिलीप किससे उपमित है?

46. यहां दिलीप किससे उपमित है?

(1) चन्द्रमा से (2) चित्रा नक्षत्र से (3) नक्षत्र से (4) सूर्य से

47. हिमनिर्युक्तयो: में समास है–

(1) तृतीया तत्पुरुष, (2) चतुर्थी तत्पुरुष, (3) पंचमी तत्पुरुष, (4)सप्तमी तत्पुरुष

7.14 मूलपाठ की व्याख्या

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लंघिगतमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।।47।।

अन्वय- प्रियदर्शनः बुधोपमो भूमिपतिः पत्न्यै तत्तद् दर्शयन् लघिग्तम् अपि अध्वानं न बुबुधे।

अन्वयार्थ- प्रियदर्शनः अभीष्टदर्शनः बुधोपमः पण्डितसदृशः भूमिपतिः राजा दिलीपः पत्न्यै भार्यायै सुदक्षिणायै तत्तद् अद्भूतं वस्तु दर्शयन् अवलोकयन् अपि अतिवाहितम् अपि अध्वानं मार्ग न बुबुधे न ज्ञातवान्।

सरलार्थ- प्रिय दिखने वाले बुध के समान राजा दिलीप जब वशिष्ठाश्रम जा रहे थे, तब राज्य की वस्तुस्थिति कहाँ और क्या है इत्यादि सब कुछ पत्नी सुदक्षिणा को दिखा रहे थे। उससे उनको अतिक्रान्त मार्ग का भी ज्ञान नहीं था।

तात्पर्यार्थ - राजा दिलीप सुदर्शनीय पुरुष थे। अतः सभी उनको देखने की इच्छा करते थे। अतः वह प्रियदर्शन है यह कवि वर्णन करते हैं। चन्द्रमा का पुत्र बुध है। राजा दिलीप बुध ग्रह के सदृश थे। अथवा बुध का अर्थ पण्डित होता है। उससे दिलीप पण्डित थे ऐसा सूचित होता है। राजा दिलीप अपने राज्य के विषय में सब कुछ जानते थे। अत एव जब वे वशिष्ठाश्रम जा रहे थे तब राज्य में क्या कहाँ है, उन सबका सुदक्षिणा को सविस्तार वर्णन किया। इस प्रकार वर्णन करते हुए वे बहुत मार्ग को अतिक्रान्त कर गये। किन्तु वे इतनी एकाग्रता से वर्णन कर रहे थे, कि कितना मार्ग पार कर गये यह भी ज्ञात नहीं रहा। इससे दिलीप समीचीन वक्ता थे, यह ज्ञात होता है।

व्याकरण विमर्श -

- **भूमिपतिः**- भूमेः पतिः भूमिपतिः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

- **दर्शयन्ः**- दृश्धातोः णिच्प्रत्यये दृशिधतुः निष्पद्यते। ततः शतृप्रत्यये प्रथमैकवचने दर्शयन् इति रूपम्।
- **प्रियदर्शनः**- प्रियं दर्शनं यस्य सः प्रियदर्शनः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **अध्वानम्ः**- अध्वन्-शब्दस्य द्वितीयैकवचने अध्वानम् इति रूपम्।
- **बुबुधेः**-बुध्-धतोः लिटि प्रथमपुरुषैकवचने बुबुधे इति रूपम्।
- **बुधेपमः**- बुधः उपमा यस्य स बुधेपमः इति बहुव्रीहिसमासः।

सन्धिकार्यम् -

- **लङ्गितमध्वानम्**-लंघिग्तम्+अध्वानम्

पाठगत प्रश्न-7.13

48. दिलीप को अतिक्रान्त मार्ग का क्यों ज्ञान नहीं रहा?
49. 'बुबुधे' में धातु व लकार बतायें।
50. बुध किसका पुत्र था?

(1) सूर्य का, (2) भूमि का, (3) चन्द्र का, (4) शुक्र का

7.15 मूलपाठ की व्याख्या

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः।।48।।

अन्वय- दुष्प्रापयशाः श्रान्तवाहनः महिषीसखः स सायं संयमिनः तस्य महर्षेः आश्रमं प्रापत्।

अन्वयार्थ- दुष्प्रापयशाः दुर्लभकीर्तिमान् श्रान्तवाहनः क्लान्तुरङ्गः महिषीसखः सुदक्षिणासहचरः सः दिलीपः सायं सन्ध्याकाले संयमिनः नियमं पालयतः तस्य महर्षेः वसिष्ठस्य आश्रमं तपोवनं प्रापत् प्राप्तवान्।

सरलार्थ- दुर्लभयश के अधिकारी राजा दिलीप पुत्र प्राप्ति की कामना से वशिष्ठाश्रम को गये। अन्त में वे जब सन्ध्याकाल में संयमी महर्षि वसिष्ठ के आश्रम को पहुंचे तब उसके रथवाहक अश्व भी थक गये थे।

तात्पयार्थः- यहाँ तक पूर्व में कवि ने सन्तान प्राप्ति के लिए वशिष्ठाश्रम के प्रति आगमन मार्ग में उनके द्वारा देखे गये प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का वर्णन किया। इस प्रकार बहुत समय के बाद जब वे दोनों वसिष्ठाश्रम पहुंचे तब संध्याकाल था। मार्ग की थकान के कारण

रथवाहक अश्व भी थक गये थे। वशिष्ठ संयमी थे। संयमी ही ध्यानयोग से तीनों कालों को देखने में समर्थ होते हैं। दिलीप पुत्र लाभ के लिए तपोवन आये थे। क्योंकि दिलीप जानते थे कि कुलगुरु वशिष्ठ ध्यान योग से सन्तान प्राप्ति के प्रतिबन्धक को जानेंगे और उसके निराकरण करने का आवश्यक कोई उपाय बतायेंगे। अतएव दिलीप भार्या सुदक्षिणा के साथ वसिष्ठ के तपोवन आये।

व्याकरण विमर्श -

- **दुष्प्रापयशाः**- दुष्प्रापं यशः यस्य स दुष्प्रापयशाः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **प्रापत्**- प्रपूर्वकात् आप्-धातोः लुङि प्रथमपुरुषैकवचने प्रापत् इति रूपम्।
- **श्रान्तवाहनः**- श्रान्तानि वाहनानि यस्य सः श्रान्तवाहनः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **संयमिनः**- संयमः अस्ति यस्य स संयमी, तस्य संयमिनः।
- **महिषीसखः**- महिष्याः सखा महिषीसखः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
- **महर्षेः**- महान् चासौ ऋषिः च महर्षिः इति कर्मधारयसमासः, तस्य महर्षेः। इदं षष्ठ्येकवचनान्तं रूपम्।

सन्धिकार्यम्-

- **प्रापदाश्रमम्**- प्रापत्+आश्रमम्
- **संयमिनस्तस्य**-संयमिनः+तस्य
- **महर्षेर्महिषीसखः**-महर्षेः+महिषीसखः

पाठगत प्रश्न-7.14

51. दिलीप कब वशिष्ठाश्रम पहुंचे?
52. 'महिषीसखः' का विग्रह एवं समास लिखिए।

पाठसार

उसके बाद दिलीप ब्रह्मा की पूजा करके कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में रथ से गये जैसे वर्षाकाल में मेघारूढ ऐरावत विद्युत्साहचर्य को प्राप्त होते हैं वैसे ही रथारूढ दिलीप सुदक्षिणा साहचर्य को प्राप्त थे। आश्रम परिसर शान्त होता है। यदि वहाँ अधिक व्यक्ति जाते हैं तो आश्रम में शान्ति भंग होगी। अतः दोनों अल्पसेना से घिरे हुए गये थे। जब दोनों वनमार्ग से जा रहे थे, तब वायु ने दोनों की सेवा की। वह वायु शालवृक्ष के सम्पर्क जन्य गन्ध से युक्त पुष्परेणु

टिप्पणी

को फैलाने वाला जंगलस्थ वृक्षों को हिला रहा था। मयूर रथ ध्वनि को सुनकर मुख को ऊपर कर रहे थे। रथ ध्वनि को मेघध्वनि मानकर वे मयूर षड्ज स्वर से केका ध्वनि कर रहे थे। उस केका ध्वनि को सुन-सुन कर वह दम्पति वसिष्ठाश्रम गये। जब रथ वनमार्ग से जा रहा था, तब मार्गस्थ मृग समीप आने पर मार्ग छोड़ते थे। उन मृगद्वन्द्वों में उस दम्पती ने परस्पर नेत्रसादृश्य को देखा। आकाश में सारस पंक्तिबद्ध होकर स्तम्भरहित तोरणमाला का निर्माण किया। उस तोरण माला को उस दम्पति ने देखा। जिस दिशा में रथ जा रहा था उसी दिशा में वायु प्रवाहित हो रही थी। इस प्रकार अनुकूल पवन से उनका मनोरथ अवश्य सफल होगा, इसकी सूचना दे रहा था। रथवाहक अश्वों के खुरों से उडाई गई धूलि उनको स्पर्श नहीं कर रही थी। सरोवर में उत्पन्न कमलों की परिमल तरंग संचालन से शीतल थी। उसी के समान प्रसन्न सुदक्षिणा और दिलीप के नि:श्वास अनुकूल थे। इस कारण उनके नि:श्वास अरविन्द से भी परिमलभरित थे। उसके बाद दोनों ने दिलीप द्वारा प्रदान किये गये यूपचिन्ह युक्त गांवो में प्रवेश किया। वहाँ याज्ञिकों के सफल आशीर्वाद को ग्रहण किया। आभीरपल्ली में शोषवृद्धजन ताजा मक्खन (हेयंगवीन) को लेकर उपस्थित हुए। उन्हीं से वनमार्ग के वृक्षों के नाम को पूछे। चैत्र मास की पूर्णिमा में चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा संयुक्त होते हैं। तब उनके योग में वैसे शोभा होती है। जैसे शोभा सुदक्षिणा और दिलीप के योग में हो रही थी। गमनकाल में दिलीप ने मार्ग के दृश्यों को पत्नी सुदक्षिणा को दिखाया। ऐसा करते हुए दिलीप को मार्ग का भी ज्ञान नहीं रहा। अन्त में सांयकाल में सुदक्षिणा और दिलीप जब महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में पहुंचे तब रथवाहक अश्व भी थक गये थे।

आपने क्या सीखा

- दिलीप और सुदक्षिणा का वसिष्ठाश्रम गमन जाना।
- कालिदास की विशेष वर्णन शैली को जाना।

पाठान्त प्रश्न-7.15

1. संक्षेप में पाठ के सार का वर्णन कीजिए।
2. कवि ने एक रथ पर समारुढ़ सुदक्षिणा और दिलीप को कैसे वर्णित किया।
3. कवि ने प्रकृति वर्णन में पवन का कैसे वर्णन किया।
4. मयूरों के विषय में कवि ने क्या कहा।
5. ''परस्पराक्षसासादृश्यम्''-इत्यादि श्लोक का वर्णन कीजिए।
6. आमोद: ने उन दोनों के नि:श्वास का अनुकरण किया इस कथन से कवि क्या प्रतिपादित करने की इच्छा करते हैं।
7. दिलीप प्रदत्त गांव कैसे थे, सविस्तार वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

8. सुदक्षिणा और दिलीप के वशिष्ठाश्रम गमन का वर्णन कीजिए।

9. स्तम्भों में लिखित पदों का मेल कीजिए।

स्तम्भ-क	स्तम्भ-ख
1. बुबुधे	1. सुदक्षिणा दिलीपौ
2. सुखस्पर्शैः	2. केकाः
3. मार्गशाखिनाम्	3. मृगद्वन्द्वम्
4. षड्जसंवादिनीः	4. पवनैः
5. शोभा	5. अवगतवान्
6. महर्षिः	6. वन्यानाम्
7. परस्पराक्षिसादृश्यम्	7. अभिख्या
8. चित्राचन्द्रमसौ	8. वशिष्ठः

उत्तर 1-5, 2-4, 3-6, 4-2, 5-7, 6-8, 7-3, 8-1

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. वे दोनों पुत्रकामना से वशिष्ठाश्रम गये।
2. जाया च पतिः च- दम्पती। एकशेष समासः। नित्य द्विवचानन्त रुप
3. वसिष्ठ दिलीप के कुलगुरु थे।
4. 4
5. 1

7.2

6. दिलीप का रथ स्निग्ध गम्भीर ध्वनि वाला था।
7. सुदक्षिणा और दिलीप विद्युत एवं ऐरावत से उपमित हैं।
8. प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यः, तं प्रावृषेण्यम्। द्वितीया कवचन, वर्षा हुई अर्थ।
9. 2

टिप्पणी

7.3

10. सुदक्षिणा और दिलीप अनुभाव विशेष से अल्प सेना से घिरे थे।
11. मा भूत का मूलरुप-मा अभूत् है। यहां ''माङ्योगात् न माङ्योगे'' इस सूत्र से अट् का आगम नहीं होता। नहीं हो यह अर्थ है।
12. आश्रम में पीड़ा न हो इसलिए वे दोनों अल्पसेवा वाले थे।

7.4

13. सुखस्पर्श, शालवृक्ष से निकली गन्ध, पुष्परेणु उत्किर्ण गन्धवाले पवन द्वारा उन दोनों की सेवा की गई।
14. शालस्य निर्यासः शाल निर्यासः पष्ठीतत्पुरुषसमास। शालनिर्यासस्य गन्धः शालनिर्यासगन्ध : षष्ठी तत्पुरुष समास। शालानिर्यासगन्धः अस्ति येषां ते शालनिर्यासगन्धिनः, तैः शालनिर्यासगान्धिभिः।
15. पुष्परेणूत्किरैः+वातैः+आधूतवनराजिभिः।
16. 3
17. 1
18. मयूर षड्ज स्वर से गाते थे।

7.5

19. मयूरों ने रथ चक्र जन्य शब्द को सुनकर मुख को ऊपर किया।
20. रथस्य नमेयः रथनेमयः-पष्ठीतत्पुरुपसमास। रथनेमीनांस्वनाः रथनेमिस्वनाः-पष्ठीतत्पुरुष समास। ऊर्ध्व मुखं येषां ते उन्मुखाः- बहुव्रीहि समास। रथनेमिस्वनैः उन्मुखाः रथनेमिस्वनोन्मुखाः इति तृतीयातत्पुरुष समासः, तैः रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
21. 1
22. 2

7.6

23. मृग रथ के समीप आने पर मार्ग छोड़ते थे।
24. वे दोनों परस्पर नेत्रसादृश्य को मृगद्वन्द्वों में देख रहे थे।
25. न दूरम् अदूरम्-नञ्तत्पुरुप समास। उज्झितं वर्त्म यैः तानि उज्झितवर्त्मानि-बहुव्रीहिसमास, अदूरं यथा तथा उज्झितवर्त्मानि अदूरोज्झितवर्त्मानि-सुप्सुपासमास, तेषु अदूरोज्सि तवर्त्मसु।
26. 3

7.7

27. सारसो ने पंक्ति बद्ध होकर तोरणमाला बनाई।

28. तोरणमाला स्तम्भरहित थी।

29. उद् उपसर्ग, नम् धतु से णिचि में क्त प्रत्यय से उन्नतितम् रुप बना। उन्नतितम् आननं ययो: तौ उन्नमितााननौ- बहुव्रीहिसमास।

7.8

30. पवन अनुकूल थी।

31. पवन द्वारा मनोरथ साफल्य की सूचना और तुरग उत्कीर्ण धूलि को फैलना, ये दोनों कार्य किए गये।

32. रजोभि:+तुरगोत्कीर्णै:+अस्पृष्टालकवेष्टनौ।

7.9

33. अरविन्दों के परिमल तरंग संचालन से शीतल हुई।

34. आमोद ने सुदक्षिणा और दिलीप के नि:श्वास को अनुकूल किया।

35. दम्पति के नि:श्वास अरविन्द से भी परिमल भरित हैं।

7.10

36. दिलीप द्वारा याज्ञिक ब्राह्मणों को ग्राम दिये गये थे।

37. यज्ञिकों के आशीर्वाद अमोघ थे।

38. प्रतिगृह्णतौ+अध्व्हर्यानुपदम्+आशिष:

7.11

39. कल गो दोहन से जो दुग्ध उत्पन्न हुआ, उस दुग्ध से निर्मित धृत को'हैयंगवीन' कहते हैं।

40. उन दोनों को मार्गवृक्षों के नाम घोषवृद्धों ने बताये।

41. वृद्धजन हैयंगवीन लेकर उपस्थित हुए।

42. 4

7.12

43. चित्रा और चन्द्रमा का योग चैत्रमास की पूर्णिमा में होता है।

44. अभिख्या का अर्थ शोभा है।

टिप्पणी

45. यहां सुदक्षिणा और दिलीप चित्रा और चन्द्रमा से उपमित है।

46. 1

47. 3

7.13

48. दिलीप पत्नी सुदक्षिणा को मार्ग के दृश्यों को दिखाते हुए, मार्ग कटने का ज्ञान नहीं था।

49. बुध् धतु-लिट लकार प्रथम पुरुष, एकवचन-

50. 3

7.14

51. दिलीप सायं काल में वाशिष्ठाश्रम में पहुँचे।

52. महिष्या: सखा महिषीसखा:- षष्ठीतत्पुरुषमास।

सन्दर्भगन्थ सूचि -

कालिदास:। रघुवंशम् (चन्द्रकलाख्याया-हिन्दी अनुवाद विभषित) रेश्मी आचार्य शेषराज शर्मा (व्याख्याकार:) 2009। चोखम्बा-सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी

कालिदास। रघुवशम्। बन्द्योपाध्याय-उदयचन्द्र:, बन्द्योपाधयाय-अनिता (व्याख्याकार) 2003। संस्कृत-बुक डिपो। कालिकावा।

8

मोहमुद्गर तथा रामगुणकीर्तन

सभी दर्शनों में अत्यन्त प्रसिद्ध और उत्कृष्ट अद्वैत दर्शन है। सामान्तया किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करना दर्शन कहलाता है दर्शनशास्त्र में मूलतत्त्व का इससे साक्षात्कार किया जाता है या अनुभव किया जाता है। दृश् धतु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय से दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। अद्वैत दर्शन का मूल तत्त्व है-''सर्व खल्विंद ब्रह्म'' अर्थात् जो कुछ भी है वह सब ब्रह्म ही है। यह जगत ही ब्रह्म का विवर्तभूत है। जैसे रस्सी का सर्प भ्रम में सर्प रज्जु का विवर्तभूत है। वस्तुत: वहाँ रस्सी ही है किन्तु सर्प देखा जाता है। इस प्रकार वस्तुत: ''सर्व ब्रह्मैव'' सब ब्रह्म ही है। जीव तो अज्ञानोपहित ब्रह्म है। जीव और ब्रह्म का ऐक्य की परोक्षानुभूति है। इस प्रकार यह अद्वैत दर्शन का मूल है। अद्वैत दर्शन के आचार्यो में विद्वानों द्वारा परमपूज्य श्री शंकराचार्य पूजे जाते हैं। वे भाष्य ग्रन्थों के प्रणेता, अद्वैत सिद्धान्तों के प्रतिष्ठापक थे उनके द्वारा विरचित ब्रह्मसूत्रभाष्य और गीताभाष्य अद्वैत वेदान्त के स्तम्भ रूप है। वे न केवल भाष्य रचना से अपितु स्तोत्र के माध्यम से भी अद्वैत वेदान्त के उपदेशक थे। उनके द्वारा विरचित स्तोत्रों में द्वादशपंजरिका स्तोत्र अद्वितीय है। उसी का नाम मोहमुद्गर है। यहाँ आचार्य की श्लोक संरचना में अतीव सुललित और सरल शैली दिखाई देती है। इस प्रकार की सरल और सुललित शैली से ही उन्होंने अद्वैत सिद्धान्त को इस स्तोत्र में प्रतिपादित किया है। इस स्तोत्र के श्लोकों का सरल वाक्यों से इस पाठ में अन्वयार्थ ज्ञान होगा।

जिस व्यक्ति को कृत्याकृत्य विवेक है वही संसार में प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। कृत्याकृत्य विवेक, सदाचार परायण और सत्य निष्ठ जनों में पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र मूर्धन्यता से भजे जाते हैं। यद्यपि उनका जीवन विपत्तियों से मुक्त नहीं था परन्तु उन्होंने कदापि सत्यवादिता को नहीं छोड़ा। कैसे जीवन में स्थिरता हो इस विषय में उनका आचरण ही प्रमाण है। इसलिए उनके अमर चरित्र का आश्रय लेकर महाकवि वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य की रचना की। अत: वाल्मीकि आदिकवि और रामायण आदिकाव्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। रामायण में सात काण्ड

टिप्पणी

हैं। बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धकाण्ड सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड। इन काण्डों में अरण्य काण्ड में वाल्मीकि के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का गुणवर्णन सम्वृत है उनमें से कुछ श्लोकों को इस पाठ में स्वीकृत किया गया है। उन श्लोकों में वर्णित श्रीरामचन्द्र गुणवर्णन को इस पाठ में देखते हैं।

उद्‌देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- स्तोत्र साहित्य को जान पाने में;
- मोहमुद्‌गर स्तोत्र के माध्यम से अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त को समझ पाने में;
- ''श्रीरामगुणवर्णन'' अंश के अध्ययन से रामचन्द्र के गुणों को जान पाने में;
- श्लोकों के अन्वयार्थ और समास को जान पाने में;
- विविध नये (नूतन) शब्दों को जान पाने में और;
- विविध शब्दों के प्रयोग स्थल को जानकर स्वयं भाषा व्यवहार में उन शब्दों का उचित प्रयोग कर पाने में।

8.1 सम्पूर्ण मूलपाठ

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥1॥

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्‌बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोत्पात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥2॥

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः॥3॥

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुतः आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः॥4॥

मा कुरु धनजनयौवनर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा॥ 5 ॥

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्तवात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः॥ 6 ॥

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः॥ 7 ॥

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्॥ 8॥

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम्॥ 9 ॥

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधनं कुर्ववधनं महदवधनम्॥ 10 ॥

नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्॥ 11 ॥

का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्तवां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्॥ 12 ॥

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद् भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्॥ 13 ॥

द्वादशपञ्जरिकामय एष शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम्॥ 14 ॥

8.2 मूलपाठ की व्याख्या

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥ 1॥

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोत्पात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ 2॥

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः॥ 3 ॥

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुतः आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः॥4॥

अन्वय- सन्निहिते मरणे सम्प्राप्ते अपि नहि नहि डुकृञ् करणे रक्षति (तस्मात् हे) मूढमते गोविन्दं भज, गोविन्दं भज, गोविन्दं भज ।।1।

मूढ, धनागमतृष्णां जहीहि। सम्द्भुद्धिं मनसि वितृष्णां कुरु। यत् निजकर्मोत्पात्तं वित्तं लभसे तेन चित्तं विनोदय ।। 2।।

टिप्पणी

अर्थं अनर्थं नित्यं भावय। ततः सुखलेशः नास्ति सत्यम्। पुत्राद् अपि धनभाजां भीतिः। सर्वत्र एषा नीतिः॥3॥

ते का कान्ता एते कः पुत्रः। अयं संसारः अतीव विचित्रः। त्वं कस्य कः। कुतः आयातःयद् इदं तत्त्वं भ्रातः चिन्तय ॥ 4 ॥

अन्वयार्थ- मृत्यु समीप आने पर डुकृञ् करणे आदि व्याकरण रक्षा नहीं करता इसलिए हे मूढमति गोविन्द को भजो। हे मूढ धनागम तृष्णा को छोड़ो सद्बुद्धि सच्चिन्तन से वैराग्य करो क्योंकि अपने कर्म से उपर्जित धन से मन का विनोद करो। धन अनर्थ का कारण है इसका सदैव चिन्तन करो, इस कारण सुख का आभास नहीं होता यह सत्य है कि पुत्रादि से भी धन हरण का भय हो जाता है। यह नीति सर्वत्र देखी जाती है। यह तेरी पत्नी, तेरा पुत्र, यह दृश्यमान क्षणस्थायीजगत अतीव विचित्र है। तू कौन है, कहॉं से आया, जो यह यथार्थ भूत है उस का चिन्तन करो।

व्याख्या- इस स्तोत्र में प्रथम श्लोक ध्रुवपद है। अर्थात प्रत्येक श्लोक के बाद इस श्लोक की आवृत्ति होती है। यहाँ भगवत पाद् शंकर कहते हैं कि जब मरण समीप आता है तब न्याय व्याकरणादि सासांरिक तत्वपूर्ण शास्त्रों के ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। क्योंकि इनके ज्ञान से केवल कुतर्क के लिए मति होती है। इससे परम प्रिय मोक्ष नहीं होता। इस प्रकार के शास्त्रों में अनित्य पदार्थों के विषय में ही चर्चा निहित है। इसलिए हे अज्ञानी मनुष्य यदि तू सासांरिक दुखों से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है तो गोविन्द परमेश्वर का भजन एवं कीर्तन कर।

धन और काम के उपभोग की समाप्ति नहीं होती परन्तु उतरोत्तर बढ़ती ही है। अत एव महाभारत में प्रसिद्धोक्ति है -**न जातुः कामः कामानापुपभोगेन शाम्यति।**

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

इसलिए धनागम की तृष्णा त्यागो। क्योंकि धन की तृष्णा विषयों से मन को परमात्मा में स्थापित करने का अवकाश नहीं देती। सत् चिन्तन से मन की मलिनता क्षीण होती है। इस कारण सद्बुद्धि करनी चाहिए। मन में विषयों का वैराग्य सम्पादित करना चाहिए, क्योंकि विषय वैराग्य के बिना मुक्ति नहीं होती। वस्तुत यहां शम या शान्ति का प्रतिपादन किया गया है। शम नाम ज्ञान के साधन जो श्रवण, मनन, निदिध्यासन है उन से भिन्न विषय से अन्तरिन्दिय मन का निग्रह है।

और भी स्वयं सत्कर्म से जो प्राप्त होता है उसी धन से यावत् चित्त विनोद नाम स्वकीय अभिलाषपूर्ण करनी चाहिए। दूसरों के धन को देखकर इर्ष्या नहीं करनी चाहिए। अथवा दूसरों के धन को ऋण रूप से स्वीकार करके भोगादि नहीं करने चाहिए। अतः गोविन्द को भजो। (2)

धन सदा अनिष्ठ का ही सम्पादन करता है अत एव सुभाषित कही गयी है।

अर्थस्यार्जने दु:खमर्जितानां च रक्षणे।
आये दु:खं व्यये दु:ख कथमर्थः सुखावहः।

अर्थात् सुख नहीं होता। क्योंकि धन का प्राचुर्य जब होता है। तब मन में शान्ति नहीं होती। लोक में देखा जाता है कि जो अधिक धनवान है उसका स्वयं के पुत्र एवं भार्या में भी विश्वास नहीं होता। वह डरता है कि उसका पुत्र व भार्या सब कुछ हरेगा। इसलिए अर्थ अर्थात् धन से सुख नहीं है। अत: गोविन्द को भजो-3

जगत में विद्यमान सम्बन्ध क्षणिक होता है, यह मेरी पत्नी, यह मेरी पुत्र है इत्यादि सभी प्रकार के संबंध ज्ञान मिथ्याभूत है। यह दृश्यमान संसार अतीव विचित्र होता है। क्योंकि इसमें यह मेरी पत्नी यह मेरा पुत्र इत्यादि ज्ञान यद्यपि मिथ्याभूत है फिर भी यह संसार के सत्यत्व से यह सब कुछ हमारे सामने स्थापित करता है। अत: मैं कौन हूँ ? मैं किस जगत से हूँ यह सब कुछ, यदि जानना चाहते हैं तो गोविन्द को भजो (4)

पाठगत प्रश्न 8.1

1. मरण समीप हो तो कौन रक्षा नहीं करता?
2. मूढ़ से क्या त्यागना चाहिए?
3. कब अर्थ (धन) अनर्थ होता है?
4. किससे चित्त का विनोद करना चाहिए?
5. सर्वत्र कौन नीति विहित है?
6. संसार कैसे विचित्र है?

8.3 मूलपाठ की व्याख्या

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा।। 5 ।।

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्तवात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिढा:।। 6 ।।

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः।। 7 ।।

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वांछस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्।। 8।।

अन्वय- धनजनयौवनगर्वं मा कुरु। कालः निमेषात् सर्वं हरति। त्वं इदं अखिलं मायामयं हित्वा विदित्वा प्रविश। तत्साधनाय त्वं गोविन्दं भज।। 5 ।।

कामं क्रोधं लोभम् मोहं त्यक्त्वा अहं कः आत्मानं भावय। ये आत्मज्ञानविहीनाः ते मूढाः नरकनिगूढाः पच्यन्ते। अतः दुःखात् मुक्तये गोविन्दं भज।। 6 ।।

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः भूतलं शय्या अजिनं वासः। सर्वपरिग्रहभोगत्यागः। विरागः कस्य सुख न करोति ।। 7 ।।

यदि अचिराद् विष्णुत्वं वांछसि शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धै च विग्रहसन्धै यत्नं मा कुरु। सर्वत्र समचित्तः भव ।। 8 ।।

अन्वयार्थ- धन में और अपनी यौवनावस्था में गर्व अहंकार मत करो क्योंकि महाकाल क्षणभर में हठात् सब कुछ हर लेता है। इस मायामय जगत् को छोड़कर आत्मज्ञान प्राप्त करो। इसलिए गोविन्द को भजो।काम क्रोध द्वेष लोभ को छोड़कर मैं कौन हूँ ऐसा अपना चिन्तन करो आत्मज्ञान विहीन नरक लोक के समान दुःख को प्राप्त करते हैं।

देवालय या वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर निवास करना, मृगछाल धारण करना, सभी भोगों का परित्याग करना ये ही वैराग्य हैं जिसमें सुख की प्राप्ति होती है। यदि शीघ्र ही ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त करना चाहते हो तो शत्रु में, मित्र में, पुत्र में, बन्धु में, संधि विग्रह का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सभी में समभाव होकर रहो।

व्याख्या- धन के अनुचर और स्वयं की युवावस्था पद्म के पत्ते पर स्थित जल के समान क्षणस्थायी है। इस कारण उन विषयों में कभी भी गर्व आत्मत्वबुद्धि और दम्भ नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये सब काल के अधीन होते हैं। काल अपनी इच्छा से एक ही क्षण में सृजन करता है और दूसरे ही क्षण में नष्ट कर देता है। इसलिए हे मित्र मिथ्यामाया से आवृत इस अखिल संसार को त्याग कर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान को प्राप्त कर। उसकी प्राप्ति के लिए तू गोविन्द को भज।। (5)

सम्पूर्ण यह संसार काम-क्रोध आदि से परिपूर्ण है। स्त्रीधन आदि के उपभोग की इच्छा काम है, विद्वेष अभिलाषा, लोभ मोह ये सब अनित्य है। इस कारण इन सब का त्याग करना सर्वदा विचारणीय है कि मेरा नाम क्या है, मेरा स्वरूप क्या है आदि। क्योंकि जो अपने को नहीं जानते हैं वे मरकर नरक में जैसा दुःख होता है, वैसा दुःख प्राप्त करते है। इस कारण दुःख के परित्राण प्राप्त करने के लिए गोविन्द को भज। (6)

भोग वासना आदि को त्यागकर और धनादि के लोभ का परित्याग करके मन्दिर में वृक्ष के नीचे अथवा श्मशान भूमि में अवस्थित होकर, कुछ मृगछाल के परिधान को धारण करके वित्त लोभ आदि के कष्ट सहन करने योग्य नहीं होते। जो कुछ भी स्वीकार नहीं करता, भोगादि का परित्याग करता है। उसका भोग विषयों में वैराग्य होता है वह ही वास्तविक सुखी है। उस सुख के लिए गोविन्द को भजो। (7)

शत्रु मित्र आदि मिथ्याभूत होते हैं। शत्रु के साथ युद्ध से, मित्र के साथ मित्रता से, पुत्र के साथ वात्सल्य से, तथा बन्धुओं के साथ आलाप से समय नष्ट होता है। इस कारण उसमें यत्न और समय व्यय नहीं करना चाहिए। सर्वत्र सुख और दुःख में, द्वन्द्व में, और अनुराग में जो समान रूप से रहता है। वह ही विष्णुत्व अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रसंग में गीता

में भगवान् कृष्ण के द्वारा स्थिर धी का लक्षण कहा गया है –

दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतरागभयक्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

स्थित प्रज्ञ ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। उस प्रकार के मोक्ष के लाभ के लिए परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए। (8)

पाठगत प्रश्न 8.2

7. किसका गर्व कैसे नहीं करना चाहिए?
8. क्या-क्या त्यागकर अपनी चिन्ता करनी चाहिए?
9. कैसा होता है यदि जन विराग सुख प्राप्त करता है?
10. क्या सब को सुखी करता है?
11. कहाँ यत्न नहीं करना चाहिए?
12. विष्णुत्व प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए?

8.4 मूलपाठ की व्याख्या

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णु:।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानतम्॥ 9 ॥

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधनं कुर्ववधनं महदवधानम्॥ 10 ॥

नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धिव्याधयभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्॥ 11 ॥

अन्वय- हे सखे त्वयि मयि च अन्यत्र एक:। व्यर्थम् असहिष्णु: मयि कुप्यसि। सर्वस्मिन् अपि आत्मानं पश्य। सर्वत्र भेदज्ञानम् उत्सृज ॥ 9 ॥

प्राणायामम् प्रत्याहारम् नित्यानित्यविवेकविचारं जाप्यसमेतसमाधिविधानम् अवधानं महदवधानं कुरु ॥ 10 ॥

नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वत् जीवितं अतिशयचपलम्। व्याधयभिमानग्रस्तं शोकहतं समस्तम् लोक विद्धि ॥ 11 ॥

अन्वयार्थ- हे मित्र तुझ में और मुझ में अन्यत्र सब में एक ब्रह्म ही है। इसलिए व्यर्थ ही

टिप्पणी

असहिष्णु मत हो। सब में अपने को देख, इस संसार में भेदज्ञान से रहित हो जाओ। प्राणायाम प्रत्याहार नित्यानित्यविवेक के साथ श्रीभगवान का ध्यान कर और महदवधान का प्रयत्न कर। जैसे नीलकमल के पत्ते पर जल नहीं ठहरता अर्थात् जीवन क्षण स्थायी है। इसलिए व्याध अभिमान ग्रस्त इस संसार को जान।

व्याख्या- सर्व खलु इदं ब्रह्म''। सभी शरीरों में एक ब्रह्म ही होता है। किसी के ऊपर क्रोध करने का नाम अपने ऊपर क्रोध ही है। क्रोध से आत्मज्ञान विस्मृत हो जाता है। जैसा कि भगवान् श्री कृष्ण द्वारा गीता में कहा गया है -

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

क्रोध आदि अनर्थक होते हैं। सर्वत्र अपना अर्थात् ब्रह्मत्व दर्शन करना चाहिए। ब्रह्मज्ञान से भेदज्ञान यह मेरे लिए, यह मेरा, यह तुम्हारा इत्यादि का नाश होता है। सर्वत्र आत्मोपलब्धि के लिए गोविन्द को भजो। (9)

प्राणायाम प्रत्याहार आदि का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् अद्वैत वेदान्त के अष्टांगों का विधिवत् अभ्यास अपेक्षित है। किन्तु चित्त शुद्धि आदि करने के लिए जप करना चाहिए। उसके साथ श्रीभगवत का नाम स्मरण आदि भी करना चाहिए। उस भगवत के गुण कीर्तन से मन में शान्ति आती है। इससे महान् जो ब्रह्म प्राप्ति रूप निश्चय है वह सुतर हो जाता है। इस प्रकार महान अवधान को करो। इसकी उपलब्धि के लिए गोविन्द को भजो। (10)

पद्म पत्र पर जल क्षणिक भी नहीं ठहरता है। इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी अत्यन्त चंचल नाम वाला है। आज है परन्तु कल स्थापित रहने के योग्य नहीं है। समस्त यह संसार रोगादि से ग्रसित है किन्तु इससे अभिमान, प्रीति, द्वेष आदि व्याप्त हैं। फिर भी यह शोक से परिपूर्ण है। यहाँ संसार में दु:ख सर्वदा प्राप्त होते हैं। जो कुछ भी सुख प्राप्त होता है। वह भी बाद में दु:ख ही देगा। इससे यह सब जानो। इससे मुक्ति और चिरसुख को प्राप्त करने के लिए गोविन्द को भजो।(11)

पाठगत प्रश्न 8.3

13. विष्णु कहाँ-कहाँ है?
14. सर्वत्र क्या पैदा होता है?
15. क्या-क्या अवधान के कार्य है?
16. जीवन कैसा होता है?
17. समस्त लोक कैसा है?

8.5 मूलपाठ की व्याख्या

का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्॥ 12 ॥

गुरुचनणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद् भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थ देवम्॥ 13 ॥

द्वादशपञ्जरिकामय एष शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम्॥ 14 ॥

अन्वय- वातुल ते अष्टादशदेशे चिन्ता। तव नियन्ता किं नास्ति। यः हस्ते सुदृढनिबद्धं त्वां प्रभवादिविरुद्धं बोधयति ।।12।।

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः अचिरात् संसारात् मुक्तः भव। सेन्द्रियमानसनियमात नियमात् निजहृदयस्थं देवं द्रक्ष्यसि ।। 13 ।।

एषः द्वादशपंजरिकामय हि शिष्याणाम् कथितः उपदेशः । येषां चित्ते विवेकः नैव ते नरकम् अनेक पच्यन्ते ।।14 ।।

अन्वयार्थ- हे उन्मत जीव तुम्हारी विषयों में कैसी चिन्ता है तुम्हारे नियन्ता प्रभु नहीं है क्या। दोनों हाथों को जोड़कर प्रभु से आत्मज्ञान जानो। गुरु के चरणों पर आश्रित जो भक्त है वह शीघ्र ही संसार से मुक्त हो जाता है। वह इन्द्रियों के साथ मन को नियंत्रित करने से परब्रह्म को देखता है। यह स्तोत्र निश्चय ही शिष्यों के स्थानवास के लिए कहा गया उपदेश है जिन लोगो के मन में सदविचार नहीं है वे मूढ़ नरक के दु:खों में पड़ते है।

व्याख्या- पागल उन्मत जीव, तुम्हारी अठारह देशों में बहुत से विषयों में कैसी चिन्ता या व्याकुलता है। तुम्हारे वे नियन्ता प्रभु क्या नहीं हैं। वस्तुत बहुत से विषयों में चिन्ता व्यर्थ हैं। जो तुम्हारे दोनों हाथों को सुदृढ़ता से ग्रहण करके जन्म मरण आदि विकारों से पृथक करता है। वह ब्रह्म ज्ञान ही आत्यन्तिक दु:ख नाशक है ऐसा बोध होगा। उस प्रकार के ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करना चाहिए और गोविन्द को भजो। (12)

गुरोरंघिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

इस शंकराचार्य के वचन से ज्ञात होता है कि जो गुरू के चरणों का भक्तिमान है वह ही संसार सागर को पार करने में सक्षम होता है। वह ही आत्मज्ञान को प्राप्त करता है। आत्म ज्ञान के लाभ के लिए गुरु में सम्पूर्ण भक्ति, गुरु के वचनों में श्रद्धा और विश्वास अपेक्षित है। अतएव अद्वैत वेदान्त में ब्रह्मज्ञान के अधिकारी शमादिषट्क सम्पत्ति से युक्त हो। शमादि-शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा है। उनमें से गुरु के उपदिष्ट वेदान्त वाक्य में विश्वास को श्रद्धा कहते हैं। इस प्रकार गुरु में श्रद्धावान और भक्तिमान होकर मायावृत संसार से शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। इसलिए तुम उस प्रकार होकर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करो।

टिप्पणी

इन्द्रियों के साथ मन के संगमन का नाम निग्रह है वह भी अपेक्षित है, अर्थात् शमदि सम्पन्न हो। उससे तुम अपने में स्थित परमात्मा को देखने मे समर्थ होते है। तत्प्राप्त्यर्थ तुम गोविन्द को भजो–

भगवत्चरण श्री शंकराचार्य द्वारा शिष्यों के नाम उनके साक्षात् शिष्यों की परम्परा से हमारे लिए कृत्याकृत्य विवेक के विषय में उपदेश मुख से यह स्तोत्र कहा है। जो श्रद्धान्वित होकर, विश्वास करके आत्मज्ञान के प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेंगे वे अवश्य मुक्त होंगे। परन्तु जिनके चित में ज्ञानोदय न होगा वे जनम मरण आदि चक्र से बन्धे रहकर पुनः पुनः दुःख के मूल संसार में आयेंगे। इसलिए संसार के दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुम गोविन्द को भजो।

पाठगत प्रश्न 8.4

18. कैसा नियन्ता अपेक्षित है?
19. जन कैसे संसार से मुक्त होता है?
20. अपने हृदयस्थ देव के दर्शन कैसे प्राप्त होते है?
21. यह मोहमुद्गर स्तोत्र कैसा है?
22. कौन नरक में पकते हैं?

श्रीरामगुणवर्णन

8.6 मूलपाठ

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते।। 1।।

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।। 2।।

शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः।

कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि।। 3।।

बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।

वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः।। 4।।

न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरञ्जते।। 5।।

कुलोचितमतिः शात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते।
मन्यते परया प्रीत्या महत्स्वर्गफलं ततः॥ 6॥

नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा॥ 7॥

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित्।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥ 8॥

धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।
लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः॥ 9॥

निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान्।
अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित्॥ 10॥

रामः सत्पुरुषो लोके सत्यः सत्यपरायणः।
साक्षाद्रामाद्विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह॥ 11॥

8.7 मूलपाठ की व्याख्या

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥ 1॥

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥ 2॥

शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि॥ 3॥

बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः॥ 4॥

अन्वय- सः च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते। उच्यमानः कोऽपिन परुषमुत्तरं प्रतिपद्यते। 1

एकेनकदाचित् उपकारेण कृतेन तुष्यति आत्मवत्तया अपकाराणां आत्मावत्तया न स्मरति।2

नित्यं शीलवृद्धैः ज्ञानवृद्धैः वयोवृद्धैः सज्जनैः अस्त्रयोग्यान्तरेषु अपि वै कथयन् आस्त । 3

बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः वीर्यवान् स्वेन महता वीर्येण न विस्मितः । 4

टिप्पणी

अन्वयार्थ– श्रीराम नित्य क्रोध रहित मृदुता पूर्वक बोलते हैं। कोई उच्चस्वर में बोलता है तो भी उसको कठोर शब्द से उत्तर नहीं देते। पुरुष के एक उपकार से ही सन्तुष्ट उसे कभी नहीं भूलते है अपकार से दुःखी करने वाले को याद नहीं रखते हैं। सदैव सदाचार सम्पन्न वृद्धजनों से, ज्येष्ठ से, सत्पुरुष से, अस्त्र योग्य जन से भी अस्त्राभ्यास काल में वार्तालाप करते हैं। श्रीरामचन्द्र बुद्धिमान्, मधुरभाषी, पूर्वभाषी, प्रिय बोलने वाले होने पर अपने पराक्रम पर विस्मित नहीं होते हैं।

व्याख्या– यहाँ श्रीरामचन्द्र के गुण का वर्णन किया जाता है। वे श्रीराम सदा शान्त मन होकर ही रहते हैं। कभी भी कुछ भी बोलते है तो क्रोधादि न करके कोमल कोमल स्वर से ही बोलते है। यदि कभी कोई भी उनके साथ कठोर वचन से बोलता है तब भी वे उसके साथ कोमल शब्दों और ललित वाक्यों से बात करते है। इस प्रकार श्रीराम स्वभाव से ही शान्त और मृदुभाषी है–(1)

कोई सामान्य जन भी यदि उनका कुछ उपकार कभी, कहीं पर भी करता है तो वे श्रीराम उनको कभी भी नहीं भूलते हैं। किन्तु कुछ यदि उनका अपकार करता है। उनको दुःखी करते है तब भी वे कृपा सिन्धु स्वयं के माहात्म्य से उनके प्रति कदापि क्रोध नहीं करते हैं। उनके अपकार को भी भूल जाते हैं। यहाँ भगवान श्रीरामचन्द्र की उदारता का परिचय प्राप्त होता है। – (2)

श्रीरामचन्द्र ने सर्वदा सदाचार सम्पन्न पूज्य जनों के साथ वार्तालाप से उनके सदाचार ज्ञान को प्राप्त किया। इस प्रकार जिनमें विद्या परिपक्व है उनके साथ वार्तालाप से उनसे विविध शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। जो आयु से ज्येष्ठ अर्थात् जीवन में विविध विषयों में अभिज्ञता प्राप्त किये हुए है, उससे किसी भी परिस्थिति में कैसे होना चाहिए, इत्यादि विषय में ज्ञान को प्राप्त किया। जो सत्पुरूष है, उनसे भी नीति के उपदेशों को प्राप्त किया। वे श्रीराम इनके साथ अस्त्राभ्यास के समय में भी वार्तालाप करते थे। इस प्रकार सभी के प्रति उनकी श्रद्धा परिस्फुटित होती है।

श्री रामचन्द्र का कैसे कब और क्या व्यक्तव्य होगा इस विषय में भी उनकी विशिष्ट बुद्धि थी। अत वे व्यवहार में प्रशस्त विशिष्ट बुद्धिवान थे। वे स्वभाव से मधुरभाषी थे। प्रियवाक्य के कथन में निपुण, वे जब अति नीच जन के साथ भी वार्ता करते थे, तब आदि में सम्भाष्य करके दूसरे के अभिमुख्य सम्पादित करते थे। वे अत्यन्त बलशाली होकर भी स्वकीय महान बल से आत्मबोध विहीन अन्धे नहीं थे। यहाँ श्रीराम के महत्व को प्रकट किया।

पाठगत प्रश्न 8.5

23. श्रीरामचन्द्र कैसे बोलते थे?

24. श्रीरामचन्द्र के प्रति कठोर वचन बोलते थे तो वे क्या करते है?

25. श्रीरामचन्द्र किस को स्मरण नहीं करते है?

26. श्रीरामचन्द्र कैसे स्मरण नहीं करते है?

टिप्पणी

27. श्रीरामचन्द्र कैसे संतुष्ट होते है?

28. श्रीराम किन के साथ अस्त्र अभ्यास काल में भी वार्तालाप करते थे?

8.8 मूलपाठ की व्याख्या

न चानतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरञ्जते॥ 5॥

कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते।
मन्यते परया प्रीत्या महत्स्वर्गफलं ततः॥ 6॥

नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा॥ 7॥

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित्।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥ 8॥

अन्वय- न च अनृतकथः मिथ्याभाषणं। विद्धान् वृद्धानां प्रतिपूजकः। प्रजाभिः अनुरक्तः प्रजाः च अपि अनुंरजते। 5

कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते । ततः परया प्रीत्या महद् स्वर्गफलं मन्यते । 6 ॥

अश्रेयसि न रतः च विरुद्धकथारुचिः उत्तरोत्तरयुक्तीनां वादादिषु स्वपक्षनिर्वाहकोत्तरोत्तरयत्ने वाचस्पतिर्यथा वक्ता । 7 ॥

अरोगः तरुणः वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित् लोके पुरुषसारज्ञः एक साधुः विनिर्मितः विशेषेण विलक्षणत्वेन निर्मितः। 8।

अन्वयार्थ- वे मिथ्या कथन नहीं करते हैं, सभी विद्याओं में सम्पन्न राम आयु, ज्ञान, और आचार से ज्येष्ठ की सेवा करते हैं। प्रजा में अनुराग करते हैं। उससे प्रजा भी उनमें अनुराग करती है। इक्ष्वाकु कुल योग्य बुद्धि वाले, अपने क्षात्र धर्म को मानते हैं। प्रजापालन रूप क्षात्र धर्म से महान स्वर्ग के फल का प्राप्त करते हैं। निष्फल द्यूतक्रीडा आदि में समय व्यतीत नहीं करते, धर्म प्रसंग को छोड़कर व्यर्थ आलस्य नहीं करते है। वे वादों में वाचस्पति के समान सुशोभित हैं। उनका शरीर रोग रहित है सदैव तारूण्य अंगों से शोभित हैं वाग्मी, देश काल के अनुसार आचरण करते है, दूसरों के अन्तःकरण को एक बार में ही जान लेते हैं।

व्याख्या- यहाँ भगवान श्रीरामचन्द्र की महिमा का कथन करते हैं। वे कभी भी मिथ्या कथन नहीं करते थे। सर्वविधान सम्पन्न श्रीराम जो आयु से ज्येष्ठ, ज्ञान से ज्येष्ठ, तथा आचार से ज्येष्ठ उनका सम्मान व सेवा आदि करते हैं। वे सभी प्रजा के अनुराग विषयीभूत हैं। कुछ भी कहा जाये वे प्रजाजनों का अनुरंजन करते हैं। इससे अनुरंज्जित प्रजा भी उनमें अनुरक्त थी। (5)

श्रीराम स्वयं के इक्ष्वाकु कुल के विषय में ज्ञानसम्पन्न थे। उनकी मति सूक्ष्म विचार संहिता इक्ष्वाकु कुल योग्य थी। वे अपनी प्रजापालन आदि रूप क्षत्रिय धर्म का अत्यन्त श्रद्धा से पालन करते हैं। क्योंकि क्षत्रिय धर्म का श्रद्धा से पालन करने से महान स्वर्ग फल प्राप्त होता है ऐसा वे चिन्तन करते हैं । (6)

द्यूतक्रीडा आदि जिस कर्म का कोई भी फल नहीं है उस प्रकार के कर्म श्रीराम कभी भी नहीं करते हैं। धर्म प्रसंग को छोड़कर व्यर्थ आलाप आदि वे कभी भी नहीं करते हैं। जब विविध शास्त्रों को आधार करके वाद चलता है तब वहाँ वे वाचस्पति के समान सुशोभित होते हैं। अर्थात् वाद-विवाद में उनको कोई भी पराजित करने में समर्थ है। (7)

उन श्रीरामचन्द्र का शरीर सदा ज्वरादि रोग रहित है सर्वदा तारुण्य उनके अंगों में सुशोभित होती है। उनका शरीर दृढ़ है, और भी लौकिक वैदिक कर्म किस काल में, कैसे करने चाहिए इस विषय में वे समीचीन रूप से जानते थे। कोई पुरुष क्या सोचता है ऐसा वे एक बार में उसको देखकर जान लेते है। इस प्रकार वे साधु के समान अन्तर्यामी थे। ऐसा ज्ञात होता है।

पाठगत प्रश्न 8.6

29. श्रीराम किन के प्रतिपूजक हैं-

    (1) प्रजा में, (2) अमात्यों के, (3) वृद्धों के, (4) योगियो के

30. रामचन्द्र कैसे प्रजा से अनुरक्त हैं?

31. रामचन्द्र किन को अनुरंजन करते है?

32. रामचन्द्र क्या बहुत मानते हैं?

33. रामचन्द्र किन में रत नहीं हैं?

34. रामचन्द्र कैसे वक्ता थे?

35. रामचन्द्र लोक में कैसे है?

36. 'पुरुषसारज्ञः' का क्या तात्पर्य है?

8.9 मूलपाठ की व्याख्या

धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।
लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः॥ 9॥

निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान्।
अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित्॥ 10॥

रामः सत्पुरुषो लोके सत्यः सत्यपरायणः।
साक्षाद्रामाद्विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह॥ 11॥

अन्वय- धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभावान् लौकिके समयाचारे कृतकल्पः विशारदः । 9

निभृतः संवृताकारः गुप्तमन्त्रः सहायवान् अमोघक्रोधहर्षः त्यागसंयमकालवित् । 10

रामः लोके सत्पुरुषः सत्यः सत्यपरायणः धर्मः श्रिया सह रामात् साक्षात् विनिर्वृत्तः । 11

अन्वयार्थ- वे धर्मकामार्थ के तत्वों को जानते है, स्मृतिवान्, प्रतिभावान् लोक में संकेत मात्र से कृतसंकल्प होते हैं। विनीत, संकेत आदि से कार्य सिद्धि की अपेक्षा करते है। अर्थात् गुप्तमन्त्रणा को छिपाने में दक्ष है। उनका क्रोध निष्फल नहीं है। वे दाशरथि सत्यपुरुष सत्यपरायण क्षात्रधर्म श्रिया के साथ श्रीराम अव्यवधन से विनिवृत्त है।

व्याख्या- धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ है। उनके विषय में श्रीराम को अतीव गम्भीर ज्ञान है। वे एक बार में समझ लेते है। उसको कभी नहीं भूलते हैं। किसी भी वस्तु के प्रकाशन में उनका अभिनव सामर्थ्य है। यथासमय पर वैदिक और लौकिक कर्म आदि के आचरण में उनका सामर्थ्य अनुपम है। अर्थात वे वैदिक और लौकिक कर्मो के आचरण में उनकी अतीव निपुणता है। इस प्रकार श्रीराम का सभी कार्यो में सामर्थ्य है ऐसा स्फुटित होता है। (9)

श्रीराम विनय सम्पन्न है। किसी भी कार्य सिद्धि के लिए संकेत आदि की अपेक्षा करते हैं। अन्यथा उस कार्य के विघ्न की संभावना हो जाती है। वे उस प्रकार के संकेत को छिपाने में दक्ष थे। किसी भी कर्म के लिए जब तक फल नहीं होता तब तक उसकी मन्त्रणां आदि उनको छोड़कर अन्य किसी से भी जानने में समर्थ नहीं है। उनकी मन्त्रणा अतीव युक्ति संभव होती है। वे क्रोध अथवा हर्ष करते है तो वह कदापि निष्फल नहीं होता और भी वे कब किसका त्याग अथवा कब किसको ग्रहण करना चाहिए इस विषय में विलक्षण बुद्धि सम्पन्न हैं। (10)

वे श्रीराम लोक में अत्यन्त सत्पुरुष सज्जन हैं। अर्थात् उनका अपने शत्रुओं में भी स्नेह है। वे सत्यस्वरुप और सत्यपरायण हैं। सत्यधर्म का परिपालन सदा करते है। वे राजश्री के साथ अपने धर्म का निर्वहन सम्यक रूप से करते है।

पाठगत प्रश्न 8.7

37. 'धर्मकामोक्षतत्त्वज्ञः' का क्या तात्पर्य है?

38. श्रीरामचन्द्र कहाँ कृतकल्प है?

39. श्रीरामचन्द्र लोक में कैसे हैं?

40. श्रीराम किसके पारायण हैं?

(1) धर्मपरायण (2) ध्यानपरायण, (3) सत्यपरायण, (4) प्रजाकल्याण परायण,

टिप्पणी

41. श्री राम का धर्म किसके साथ विनिवृत है -

(1) पत्नी के साथ, (2) मन्त्रियों के साथ, (3) श्रिया के साथ, (4) भुव के साथ

पाठसार

परम कारूणिक भवगत श्री शंकराचार्य ने सभी के लिए ज्ञानोदयार्थ यह द्वादशपञ्जरिका स्तोत्र की रचना की। इस स्तोत्र के प्रत्येक पद में वे संसार की अनित्यता, वहाँ दुःख ही मूल है, इस कारण से मुक्ति के लिए गोविन्द का अर्थात् परब्रह्म के भजन कार्य का उपदेश दिया है। स्तोत्र से सार रूप में ज्ञात होता है कि धनजन स्त्री पुत्र आदि में आत्मबुद्धि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि किसी के साथ भी संबंध क्षणिक आभास ही है। इस कारण संसार के विषयों में अहं भाव न हो। जब तक सत्कर्मों से उपार्जन किया जाता है। उससे अपना जीवन यापन करना चाहिए। जो कामक्रोधादि से मत्त है वे सोचते हैं कि जगत उनके अधीन है। इस प्रकार अज्ञानी प्रतिदिन दुःखों से बहुत अधिक दुःखी होते हुए नरक के कष्टों का अनुभव करते हैं। सदैव समचित होना चाहिए। अर्थात् सुख में, और दुख में कभी भी लिप्त नहीं होना चाहिए। यह जीवन कमल के पत्र में स्थित जल के समान है। कब क्या जायेगा अथवा क्या होगा ऐसा कोई भी कहने में समर्थ नहीं है। इसलिए शीघ्र ही आत्मचिन्तन से ब्रह्मस्वरूपावाप्तिरूप मोक्ष को साधना चाहिए। इस स्तोत्र को पढ़कर जो गुरु में श्रद्धावान् होकर ब्रह्मज्ञान लाभ के लिए प्रयत्न करे उसी को अनन्त सुख प्राप्ति और मोक्ष हो यह भगवान शकराचार्य का आशय है।

इस पाठ के द्वितीय भाग श्रीरामगुणवर्णन महामुनि वाल्मीकि विरचित रामायणाख्य महाकाव्य में है। वहाँ दशरथपुत्र श्रीराम के गुणों का वर्णन किया गया है। वहाँ चितांश का सार है उससे श्रीराम सर्वदा प्रसन्तचित्त होते हैं। वे कभी भी किसी के साथ कठोर भाषण नहीं करते हैं। वे सर्वदा मधुर और प्रिय वाक्य का व्यवहार करते हैं। नीच जन में भी उनकी समान प्रीति होती है। कभी भी कोई उनका कोई भी उपकार करता है तो वे सर्वदा उसको याद रखते है। कोई उनका अपकार करता है तो भी वे उसे याद नहीं करते हैं। सभी के प्रति उनकी श्रद्धा है। वे वृद्धों के वाक्यों को सुनकर जीवन में पालन करते हैं। उनका महान पराक्रम है परन्तु निष्प्रयोजन उस पराक्रम का प्रदर्शन नहीं करते हैं। अपने धर्म का भी परिपालन सम्यक्‌ता से करते हैं। द्यूतक्रीडा से वे समय व्यतीत नहीं करते हैं। यदि वे वाद में प्रवृत होते हैं। तब उनकी पराजय असंभव है।

वे शुद्धाचित हैं क्योंकि जो कोई पुरुष मन में जो कुछ भी सोचते हैं वे उसको जानने में समर्थ हैं। राज्य परिपालन के कौशल को भी वे सम्यकता से समझते हैं। उनकी मंत्रणा का जब तक कर्म का फल नहीं आता जब तक उसको जानने में समर्थ नहीं है। सर्वदा सत्य का पालन करते हैं। शत्रु के प्रति भी उनका द्वैष नहीं है, अपितु स्नेह ही है। वे सम्पदा के साथ धर्म का निर्वहन करते हैं। इस प्रकार भगवान श्रीराम के माहात्म्य का प्रतिपादन किया है।

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

- स्रोत साहित्य का संक्षिप्त परिचय।
- मोहमुद्गर स्रोत के माध्यम से अद्वैत वेदान्त के सिद्धांत को जाना।
- श्री रामगुणर्कीतन के माध्यम से रामचरित्र को जाना।

पाठांत प्रश्न

1. 'मूढ जहीहि धनागमतृष्णाम्' -श्लोक को पूरा करके व्याख्या कीजिए।
2. 'कामं क्रोधं लोभं मोहम्' -श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
3. 'मा कुरु धनजय यौवनगर्वम्'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
4. 'सुरमन्दिरतरुमूलनिवास'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
5. 'गुरुचरणाम्बुजनिर्भर भक्ता:'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
6. 'मोहमुद्गर स्तोत्र का सार लिखिए।
7. 'शील वृद्धैज्ञ नवृद्धै:'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
8. 'बुद्धिमान मधुराभाषी'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
9. 'कुलोचितमति:'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
10. 'अरोगस्तरुणो'-श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
11. 'धर्मकामार्थतत्त्वज्ञ:'- श्लोक की पूर्ति करके व्याख्या कीजिए।
12. 'श्रीरामगुणवर्णना' पाठ के सार का प्रतिपादन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. मरण समीप हो तो डुकृञ् करणे इत्यादि व्याकरणशास्त्रादि भी रक्षा नहीं कर सकता।
2. मूढ द्वारा धनागमतृष्णा का त्याग करना चाहिए।
3. अर्थ (धन) जब स्वपुत्र आदि के अपहरण से डर पैदा होता है। तब अर्थ (धन) अनर्थ होता है।
4. अपने कर्म से उपार्जित धन से चित्त का विनोद करना चाहिए।

टिप्पणी

5. सर्वत्र यह नीति विहित है कि जब धनिकों में पुत्रादि यह मेरा सर्वस्व हारेगा इत्यादि डर होता है।

6. पत्नी पुत्र आदि सम्बन्ध अनित्य है। परन्तु संसार में उस प्रकार का संबंध नित्य प्रतीत होता है अत: मायावृत्त संसार विचित्र है।

8.2

7. धनजन यौवन का गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि काल क्षण मात्र से धनजन यौवन को हरने में समर्थ है।

8. काम, क्रोध, मोह और लोभ त्याग कर अपनी चिन्ता करनी चाहिए।

9. देव मन्दिर में वृक्ष के नीचे निवास, भूतल पर सोना, मृगचर्म धारण करना, विषय भोग में वितृष्णा जब होती है तब ही जन विराग सुख को प्राप्त होता है।

10. विराग सब को सुखी करता है।

11. शत्रु, पुत्र, बन्धु और मित्र में सन्धिविग्रह का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

12. सर्वत्र समान चित होकर विष्णु प्राप्ति के लिए स्थिर धी रहना चाहिए।

8.3

13. तुम में, मुझ में और अन्य सभी में विष्णु है।

14. सर्वत्र यह मेरा, यह तेरा इत्यादि भेद बुद्धि को पैदा करता है।

15. प्राणायाम, प्रत्याहार, ब्रह्म ही नित्य वस्तु, उससे अन्य अखिल अनित्य है, नित्यानित्यविवेकविचार, जाप्यसमवेतसमाधिविधान ये सभी महान् अवधान के कार्य है।

16. जैसे पद्‌मपत्र में स्थित जल क्षण स्थायी होता है उसी प्रकार जीवन अत्यन्त चञ्चल है।

17. व्याध्याभिमान ग्रस्त दु:खभरित संसार है।

8.4

18. जो दोनों हाथों को ग्रहण करके जन्म मरणादि विकार से विरूद्ध आत्म तत्व का बोध करता है।

19. गुरू चरणों पर निर्भर भक्त जन को संसार से मुक्ति होती है।

20. इन्द्रियों के साथ मन के संयम से निजहृदयस्थ देव का दर्शन होगा।

21. शिष्यों के उपदेश के लिए।

22. जिनका चित्त में विवेक नहीं है वे नरक में पकते हैं।

8.5

23. रामचन्द्र मधुर भाषा बोलते हैं।

24. वे कठोर वचन से उत्तर नहीं देते थे।

25. अपकारों का स्मरण नहीं है।

26. श्रीरामचन्द्र अपनी कृति से अपकार को स्मरण नहीं करते है।

27. श्रीराम एक ही उपकार से संतुष्ट होते हैं।

28. श्री राम शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध एवं सज्जनों के साथ अस्त्राभ्यास काल में वार्तालाप करते हैं।

8.6

29. (3) वृद्धों की

30. श्रीराम प्रजा का अनुरुञ्जन करते हैं। अत: वे प्रजा से अनुरक्त होते है।

31. श्रीराम प्रजा जन का अनुरञ्जन करते है।

32. श्रीराम अपने क्षात्र धर्म को बहुत मानते है।

33. श्री रामचन्द निष्फल कर्म में रत नहीं है।

34. रामचन्द्र वाचस्पति के समान वक्ता थे।

35. रामचन्द्र लोक में पुरूष सार को जानने वाले है।

36. पुरुष सारज्ञपुरुषस्य सारं जानाति य: स पुरुषसारज्ञ:। अर्थात् पुरुष के हृदस्थ भाव को जानते हैं।

8.7

37. जो धर्म अर्थ काम के तत्वों को जानता है वे पुरुषार्थविद् होते हैं।

38. रामचन्द्र लौकिक आचार में कृतकल्प है।

39. रामचन्द्र लोक में सत्पुरूष है।

40. (3) सत्यपरायण

41. (3) श्रिया के साथ

9

शिवराजविजय-बटु संवाद

कवि की भावयित्री प्रतिभा से समुद्भूत कर्म काव्य होता है। काव्य दो प्रकार के होते है- ध्वनिकाव्य और गुणीभूतव्यंग्य काव्य। उनमें पुनः दो भेद किये गये है। दृश्य एवं श्रव्य काव्य। उसमें श्रव्य काव्य पुनः गद्य और पद्य भेद से दो प्रकार को होता है। संस्कृत साहित्य में छन्दोमय पद्यों के बाद में ही गद्यकाव्य का अभ्युदय हुआ। गद्य का प्रथम दर्शन कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में हुआ ऐसा बलदेवोपाध्याय महोदय का आशय है। गद्यकाव्य ही कवि प्रतिमा का परीक्षण स्थल होता है। जैसे सुवर्ण का परीक्षण स्थल निकष होता है। निकष पर रगड़ा हुआ सुवर्ण की रेखा ही सुवर्ण के वैशिष्टय को सूचित करता है। इसी प्रकार गद्य की एक पंक्ति ही कवि की रससिद्धता, वचनवक्रता और चिन्तन पद्धति, को चारुता से सूचित करती है। अतः प्रसिद्ध उक्ति कही गयी है- ''गद्य कवीनां निकषं वदन्ति'' पद्यकाव्य में तो शुरू में ही छन्द दृष्टिपात होता है। परन्तु गद्यकाव्य प्रथम दृष्टिपात पद सन्निवेश में होता है।

बाणभट्ट से प्रारम्भ होकर गद्य काव्य संरचना की परम्परा में विद्यमान कवियों मे अम्बिकादत्त व्यास अद्वितीय और प्रसिद्ध हैं। जयपुर निवासी ये कवि पुराणों के कर्ता व्यास के द्वितीय अवतार माने जाते हैं। इनके द्वारा बहुत से संस्कृत व हिन्दी भाषा के ग्रन्थ रचे गये। उनमें से शिवराजविजय ऐतिहासिक गद्यकाव्य शिवराजविजय का महान स्थान है। यह काव्य महाराष्ट्र के राजा शिवराज को आधार करके लिखा गया। ऐतिहासिक वृतान्त के समिश्रण से इस काव्य को 'आख्यायिका' कह सकते हैं।

अधर्म के मूलविग्रह यवन जब हमारे ऊपर शासन करते थे तब दक्षिण देश में सनातन धर्म के रक्षण में नियुक्त एक वीर थे। वे ही शिवराज है। शिवराज की माता जीजाबाई और पिता शाहजी भोसले थे। इस सनातन परम्परा के संरक्षक शिवराज की विजय यात्रा पर आश्रित इस काव्य का विकास हुआ।

इसके प्रथमविराम के प्रथमनि:श्वास के प्रथमत कुछ परिच्छेद अध्ययन के लिए चुने है। इस पाठ में सूर्योदय, गौरवटु श्यामवटु के स्वरुप, वार्तालाप, योगिराज का समाधि से उठना, इत्यादि विषय क्रमश वर्णित हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे

- हिन्दू परम्परा में भगवान सूर्य की महिमा को समझ पाने में;
- गौरवटु के स्वरूप को जान पाने में;
- श्यामवटु के स्वरूप को जान पाने में;
- उनके वार्तालाप प्रसंग समझ पाने में;
- योगीराज प्रसंग को समझ पाने में;
- पाठ्यांश के अन्वयार्थ संगम को जाने पाने में और;
- पाठ्यांश के पदों के व्याकरण विमर्श और पर्याय शब्दों को जान पाने में।

मूलपाठ 9.1

''विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।''(भागवतम् 10। 1। 24)
''हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधु समत्वेन भयाद् विमुच्यते।''(भागवतम्, 10। 7। 31)

''अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुमण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः, कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधरः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाडीगकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्धसङ्ख्या, असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्री अमुमेव गयति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिहन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषामि'' ति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन् निजपर्णकुटिरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवनपटुर्विप्रवटुः।

''अहो चिररात्राय प्रसुप्तोखहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महान् पुण्यमयः समयोखतिवाहितः, सन्ध्योपासनसमयोऽयमस्मरुचरणानाम्, तत् सपदि अवचिनोमि कुसुमानि।'' इति चिन्तयन् कदलीदलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचयं कर्तुमारेभे।

वटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चासीत्।

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्त्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रिकुल-कूजितपूजितं पयःपूरितं सर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झर-झर्झर-ध्वनित-दिगन्तरः, फल-पटलाऽऽस्वाद-चपलित-चञ्चु- पतङ्गकुलाऽऽ-क्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि-समूह-व्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

यावदेष ब्रह्मचारी वटुरलिपुअमुद्धूय कुसुमकोरकानवचिनोति, तावत् तस्यैव सतीर्थ्योऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणुरूषित इव श्यामः चन्दनचर्चित-भालः कर्पूरागुरु-क्षोदच्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्धपटलै-रुन्निद्रयन्निसव निद्रामन्थराणि कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि मिलिन्दवृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् गौरवटुमेवमवादीत्-

'अलं भो अलम्! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थपितः, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासन्ते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम्, यवनत्रासेन निःशब्दं रुदतीम्, परमसुन्दरीम, कलितमानवदेहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्, मरन्दमधुरा अपः पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया यामत्रमनैषीः, सेयमधुना स्वपिति, उदुद्धय च पुनस्तथैव रेदिष्यति, तत्परिमार्गणीयान्येतस्याः पितारौ गृहं च-'

इति संश्रुत्य उष्णं निःश्वस्य यावत् सोपि किञ्चिद् वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात तयोर्दृष्टिः।

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महान् कन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधै तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङीगृकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति, प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति अन्ये च मार्कण्डेय इति, विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिवटुभ्यामदर्शि।

'अहो! प्रबुद्धो मुनिः! प्रबुद्धो मुनिः! इत एवागच्छति, इत एवागच्छति, सत्कार्योऽयं सत्कार्योऽयम्' इति तौ सम्भ्रन्तौ बभूवतुः।

अथ समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्यनियमसम्पादनाय प्रयाते गौरवटौ, छात्रगणसहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागतसामग्रीषु, 'इत आगम्यताम्, सनाथ्यताभेष आश्रमः' इति सप्रणाममभिगभ्य वदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाहपीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च।

तस्मिन् पूज्यमाने, 'योगिराडुत्थित' इति, अयात इति च आकर्ण्य, कर्णपरम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङागि्न, अङाग्रप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च् वायं वर्णयन्तश्चकिता इव सआताः।

9.2 मूलपाठ

"विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।" (भागवतम् 10।1। 24)

> ''हिंस्र: स्वपापेन विहिंसित: खल:
> साधु समत्वेन भयाद् विमुच्यते।'' (भागवतम्, 10। 7। 31)

अन्वयार्थ- वह विष्णु की माया ऐश्वर्य शालिनी है, जिसने सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा है। दुष्ट हिंसक अपने पाप से मारा गया और सज्जन समत्वभाव के कारण भय से बच गया।

व्याख्या- गद्यकाव्य मे विराम रूप विभाग की परिकल्पना की गई है। ग्रन्थ के प्रथम विराम मे ''समाप्तिकामो मंगलमाचरेत्'' इस शिष्टाचार अनुमित श्रुति को अनुसरण करके ग्रन्थ के निर्विघ्न समाप्ति के लिए तथा शिष्यों को शिक्षा के लिए मंगलाचरण का विधान किया जाता है। इस कारण कवि अम्बिकादत्त व्यास ने भागवत के दो श्लोकों को प्रस्तुत किया है। मंगलाचारण तीन प्रकार का होता है- आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक।

'विष्णोर्माया' इस श्लोकार्ध प्रस्तुति से देवताओं को नमस्कारात्मक मंगल को स्थापित किया है। नमस्कार हि नमस्कार कर्ता के अपकर्ष बोधन का नमस्कार करने से उत्कर्ष बोधन होता है। क्योंकि जगत का उस माया के अधीनता के कथन से जगत में विद्यमान सभी से उत्कृष्ट विष्णु का बोध होता है। इस प्रकार विष्णु के नमस्कार विधान से नमस्कारात्मक मंगल होता है।

विष्णु चराचर जगत को व्याप्त करता है। उस नारायण की जो भगवती भग प्रभृति षड् ऐश्वर्य सम्पन्न माया है वह समस्त संसार को मोहित करती है। मोह ही अविवेक है। मोहित व्यक्ति विवेचन के लिए असमर्थ होता है। जैसे किसी विषय में तन्मय युक्त जन को अन्य किसी विषय का ज्ञान नहीं रहता, उसी प्रकार माया से मोहित जन भी माया निर्मित लौकिक वस्तु जगत को छोड़कर अलौकिक परमेश्वर तत्त्व को नहीं समझ पाता।

वह माया भगवती है। माया शक्ति भगवत से भिन्न नहीं है। जैसे दाहिका शक्ति अग्नि से भिन्न नहीं होती। उसी प्रकार माया की शक्ति भी भगवत विष्णु से भिन्न नहीं है। शक्ति और शक्तिमान् में कोई भेद नहीं होता है। अत: जैसे भगवान षड् ऐश्वर्य सम्पन्न है वैसे ही भगवान की शक्तिरुपा माया भी षड् ऐश्वर्यशाली है। भग का अर्थ भगवान् है। भग शब्द का अर्थ के प्रसंग मे कहा गया -

> **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस: श्रिय:।**
> **ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा ॥**

ये ऐश्वर्यादि षड्गुण भगवान में पूर्णतया सदैव विराजमान होते हैं। भगवान से भिन्न उसकी शक्ति में भी ये षड्गुण विद्यमान रहते हैं। अत: इस शक्ति को ही भगवती कहते हैं। इस भगवान की शक्ति भगवती माया को पुराणो में दुर्गा काली आदि कहा गया है। वह त्रिगुणात्मक है। इन तीनों गुणों में तम अन्यतम है। आवरण का ही नाम तम है। जैसे प्रकाश तम से आवृत होता है उसी प्रकार माया के तमोगुण से ज्योति: स्वरुप परमतत्त्व भी आवृत होता है।

कवि अम्बिकादत्त व्यास ने श्लोक ने अर्द्धांश में वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का विधान किया है। काव्य में हिंसक दुष्कर्म यवन शासकों पर महाराज शिवराज (शिवाजी) की विजय रुप उन्नति को प्रदर्शित किया है। अत: यहा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण है।

श्लोक के अन्तिम भाग में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण को प्रस्तुत किया है। पातक मानव नरक में गिरते है। दुर्जन दुष्कर्मों को करते हुए पापों से काल ग्रसित होते हैं। जैसे कंस आदि पापी अपने पाप से नष्ट हुए। कहा भी गया है-अनार्यजुष्टेन पथा प्रवृतानां शिवं कुतां। साधुजन अपने सत्कर्मो से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। सत्कर्मो से ही धर्म होता है। इस धर्म की रक्षा की जाती है, धर्म भी उन पुरुषों द्वारा रक्षित होता हुआ उन लोगों की रक्षा करता है। जैसा कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव विपत्ति में गिरे हुए भी अपने अर्जित पुण्य से अभ्युदय को प्राप्त हुए। गीता मे कहा भी गया है ''स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। ''इस प्रकार दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा से सहृदय पाठकों के लिए मंगलाचरण किया गया है।

व्याकरणविमर्श -

भगवती- भग: अस्य अस्य अस्तीति विग्रहे भगशब्दात् मतुपि भगवत् इति शब्दो निष्पद्यते। तत: स्त्रियां गीपि सौ भगवती इति रूपम्।

स्वपापेन- स्वं पापं स्वपापम्, तेन स्वपापेनेति कर्मधरयसमास:।

विहिंसित:-विपूर्वकात् हिंस्धतो: क्तप्रत्यये विहिंसितशब्दो निष्पक:। तत: सौ विहिंसित: इति रूपम्।

कोष:- ''विष्णर्नारायण: कृणों वैकुण्ठों विष्टरश्रवा:'' इत्यमर:।
अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत् इत्यमर:।
दरस्त्रासों भीतिर्भी: साध्वसं भयम्'' इत्यमर:।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. किस से जगत मोहित है?
2. कौन अपने पाप से विनष्ट होता है?
3. कौन किस भय से मुक्त होते हैं?
4. विष्णोर्माया इस पद से कैसा मंगलाचरण है?
5. हिंस्र: इस पद से कैसा मंगलाचरण है?

9.3 मूलपाठ

''अरुण एष प्रकाश: पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिन:। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुमण्डलमाखण्डलदिश:, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोक:, कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधर: सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्,

एष एवाडीगकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, ,नेनैव सम्पादिता युगभेदा:, एनेनैव कृता: कल्पभेदा:, एनमेवाश्रित्य भवति परमेष्ठिन: परार्धसङ्ख्या, असावेव चर्करीति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिन:, गायत्री अमुमेव गयति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिहन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषामि'' ति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन् निजपर्णकुटिरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवनपटुर्विप्रवटु:।

अन्वयार्थ:- पूर्व दिशा में भगवान् सूर्य का यह लाल (प्रकाश) है। यह भगवान् (सूर्य) आकाश मण्डल के मणि, नक्षत्र समूह के चक्रवर्ती (सम्राट्) इन्द्र (पूर्व) की दिशा के कुण्डल, ब्रह्माण्ड रूपी गृह के दीपक, कमलकुल के अत्यन्त प्रेमपात्र, चक्रवाक समुदाय के शोक को दूर करने वाले, भ्रमर-समूह के अवलम्ब सम्पूर्ण व्यवहार के सूत्रधर (प्रवर्तक) और दिन के स्वामी हैं। ये ही दिन-रात के जनक है, ये ही वर्ष को बारह भागों में विभाजित करते हैं, छ: ऋतुओं के ये ही कारण हैं, ये ही उत्तर और दक्षिण अयन (सूर्य मार्ग) को अंगीकार करते हैं। इन्होंने ही युगभेद (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग का भेद) सम्पादित किया है, इन्हीं के द्वारा कल्पभेद (चारों युग के सहस्र क्रम को कल्प कहते हैं।) किया गया है, इन्हीं के आश्रय से ब्रह्मा की सबसे बड़ी ओर अन्तिम संख्या (पूर्ण) होती है, ये ही संसार का बार-बार सृजन, भरण-पोषण तथा संहार करते हैं, वेद भी इन्हीं की वन्दना करते हैं, गायत्री इन्हीं का मान करती है, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण इन्हीं की प्रतिदिन उपासना करते हैं। ये (भगवान् सूर्य) श्री रामचन्द्र के कुल के मूल (आदि पूर्वज) धन्य हैं, ये विश्व को प्रणाम करने योग्य हैं- (इस प्रकार सोचकर) उदित होते हुये भगवान् सूर्य को प्रणाम करता हुआ, (एक) कोई गुरुसेवा में पटु ब्राह्मण बालक अपनी पर्णकुटी से निकला।

व्याख्या- यहाँ सूर्य का वर्णन किया जाता है। उस सूर्य का प्रकाश लोहितवर्ण युक्त एवं रक्तवर्ण आभासित है। यह सूर्य आकाश में स्थित नक्षत्रों में रत्न के समान है। यह सूर्य पक्षी समुदाय का राजा है। यह पूर्व दिशा के कर्णाभूषण के समान है। अर्थात् पूर्व दिशा का अलंकार है। ब्रह्माण्ड के दीपक के समान है। वह अपने प्रकाश से सम्पूर्ण पृथ्वी को प्रकाशित करता है सूर्य के प्रकाश से ही कमलवृन्द के पुष्प खिलते हैं। रात्रि में चक्रवाक पक्षियों का अपनी प्रियतमों के साथ वियोग हो जाता है। प्रात: सूर्य के आगमन पर पुन: उनका मिलन होता है। इस वियोग के कारण उत्पन्न दु:ख का नाशक भी सूर्य है। मधुकर भँवरे मधु का आहार करके जीवित रहते है। वे पुष्पों से मधु को स्वीकार करते हैं। सूर्य के उदय होने पर ही पुष्प विकसित होते हैं। इसलिए सम्पूर्ण मधुकर समुदाय का आधार सूर्य है। सभी प्रकार के शुभ कार्यो के अनुष्ठान दिन में किये जाते हैं। उन समस्त कार्यो के प्रवर्तक सूर्य है। क्योंकि सूर्य के उदय होने पर ही दिन कहा जाता है। अत: यह दिन का स्वामी है। सूर्य के प्रभाव से ही दिन और रात्रि होती है। भास्कर अर्थात् सूर्य की गति से ही दिनों की गणना होती है। उसी के प्रभाव से छ: ऋतु, प्रकृति में दिखाई देती हैं। इसकी गति उत्तरायन एवं दक्षिणायन दो प्रकार की होती हैं। सूर्य ही सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग एवं कलियुग का सम्पादक है। दो हजार देवयुगात्मक काल भेद को कल्प कहते है (200 सत्सरात्मक देवयुग-1 कल्पयुग) इस कल्प का परिचालक भी सूर्य है। ब्रह्मा के परार्द्धपर्यन्त संख्या गणना सूर्य पर आश्रित होती है। यह सूर्य ही जगत को पुन: पुन: सर्जन, पालन एवं नाश करता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद है। वेदों में अधिकता से सूर्य की ही स्तुति है। गायत्री मन्त्र का देवता

टिप्पणी

सूर्य ही है। ब्राह्मण प्रतिदिन सूर्य की उपासना करते हैं। सूर्यवंश का यह आदिपुरुष भास्कर सूर्य को प्रणाम करके गुरुसेवानिष्ठ ब्राह्मण पुत्र अपनी पर्णकुटी से बाहर आया।

व्याकरणविमर्शः-

मरीचिमालिनः- मरीचीनां माला मरीचिमाला इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। मरीचिमाला अस्य अस्तीति मरीचिमाली इति ''अत इनिठनौ'' इत्यनेन इनिप्रत्ययः।

खेचरचक्रस्य- खे चरन्ति ये ते खेचराः विहगाः इत्यर्थः। तेषां खेचराणां चक्रं खेचरचक्रम, तस्य इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

ब्रह्मण्डभाण्डस्य-ब्रह्माण्डमेव भाण्डं ब्रह्माण्डभाण्डम्, तस्य इति कर्मधरयसमासः।

पुण्डरीकपटलस्य-पुण्डरीकाणां पटलं पुण्डरीकपटलम्, तस्य इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

रोलम्बकदम्बस्य- रोलम्बानां कदम्बः रोलम्बकदम्बः, तस्य इति षष्ठीतत्पुरुषमासः।

निजपर्णकुटीरात्- पर्णानां कुटीरः पर्णकुटीरः। निजस्य पर्णकुटीरः निजपर्णकुटीरः, तस्मात् निजपर्णकुटीरात् इत्युभयत्र षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

विप्रवटुः -विप्रश्चासौ वटुः इति कर्मधरयसमासः। ब्राह्मणबालकः इत्यर्थः।

जनयति-जनधतोः णिचि लटि तिपि जनयतीति रूपम्। अत्र ''बुधयुधनशजनेङ्प्रुदुस्रुभ्यो णेः'' इत्यनेन परस्मैपदम्।

चर्कर्ति- डुकृञ् करणे इति धतोः यङ्लुकि लटि तिपि चर्कर्ति इति रूपम्।

कुटीरः-ह्रस्वा कुटी इत्यर्थे ''कुटीशमीशूण्डाभ्यो रः'' इत्यनेन रप्रत्यये कुटीरशब्दो निष्पन्नः।

उपतिष्ठन्ते- उपपूर्वकात् स्थाधतोः लटि ''उपाद्धेवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणथिष्वति वक्तव्यम्'' इत्यनेन आत्मनपदे प्रथमबहुवचने झप्रत्यये उपतिष्ठन्ते इति रूपम्।

पाठगत प्रश्न-9.2

6. पूर्व दिशा में किसका प्रकाश है?
7. सूर्य आकाश मण्डल का क्या है?
8. सूर्य किसका चक्रवर्ती है?
9. ब्रह्माण्ड भाण्ड का दीपक कौन है?
10. सूर्य किसका शोक विमोचक है।
11. यह वत्सर वर्ष कितने भागों में विभक्त है?
12. 'उपतिष्ठन्ते' आत्मनेपद कैसे है?

13. 'जनपति' पर परस्मैपद कैसे है।

14. सूर्य किसके कुल का मूल है?

9.4 मूलपाठ

''अहो चिररात्राय प्रसुप्तोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महान् पुण्यमयः समयोऽतिवाहितः, सन्ध्योपासनसमयोऽयमस्मद्गुरुचरणानाम्, तत् सपदि अवचिनोमि कुसुमानि।'' इति चिन्तयन् कदलीदलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचयं कर्तुमारेभे।

वटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चासीत्।

अन्वयार्थः- 'ओह! मैं बहुत देर तक सोता रहा, मैंने निद्रारूपी जाल में फंसकर अत्यन्त पुण्यमय समय बिता दिया, यह हमारे पूज्य गुरु जी के सन्ध्या वन्दन का समय है। इसलिये शीघ्र ही फूल तोड़ता हूँ' (उस विप्रबटु ने) इस प्रकार सोचते हुए एक केले के पत्ते को तोड़कर (उसे) तिनकों से जोड़कर, पुटक (दोना) बनाकर फूल तोड़ना प्रारम्भ कर दिया।

वह बटु (ब्रह्मचारी) सुन्दर आकृति वाला था, गौर वर्ण का था, जटाओं से ब्रह्मचारी प्रतीत होता था, लगभग सोलह वर्ष की अवस्था वाला था, कम्बु (शंख) तुल्य कण्ठ वाला, विस्तृत मस्तक वाला, सुबाहु (सुन्दर भुजाओं वाला) तथा विशाल नेत्रों वाला था।

व्याख्या- उसके बाद वह बालक सोचता है कि वह बहुत काल तक सोता रहा। उसने निद्रा के वशीभूत होकर पुण्यमय काल को व्यतीत कर दिया। अब सन्ध्योपासना एवं गुरुचरण सेवा का समय हो गया है। अतः शीघ्र ही पुष्पों को संग्रह के लिए एक केले के पत्ते को तोड़कर उसे तृण से सिलकर पुष्पचयन का पात्र बनाकर पुष्प चयन करना आरम्भ किया। वह बालक सुन्दर शरीर, 'श्वेतवर्ण, जटाओं से ब्रह्मचारी, सोलह वर्षीय शंख के समान गर्दन वाला, विशाल मस्तक वाला, सुन्दर भुजाओं वाला, विस्तृत नेत्रों वाला था।

व्याकरणविमर्श

स्वप्नजालपरतन्त्रेण- स्वप्न एव जालं स्वप्नजालमिति कर्मधरयसमासः। तस्य परतन्त्रेण स्वप्नजालपरतन्त्रेण इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

कदलीदलम्- कदल्याः दलं कदलीदलम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

तृणशकलैः- तृणानां शकलैः तृणशकलैः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

पुष्पावचयम्- पुष्पाणाम् अवचयः पुष्पावचयः, तं पुष्पावचयम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

कम्बुकण्ठः- कम्बुरिव कण्ठो यस्य स कम्बुकण्ठः इति बहुब्रीहिः।

आयतललाटः- आयतं ललाटं यस्य स आयतललाट इति बहुव्रीहिः।

विशाललोचनः- विशाले लोचने यस्य स विशाललोचनः इति बहुव्रीहिसमासः।

षोडशवर्षदेशीयः-षोडशवर्षशब्दाद् ''ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्य-देशीयरः'' इत्यनेन सूत्रेण देशीयर्-प्रत्यये षोंडशवर्षदेशीयः इति रूपम्।

कोषः- शङ्खः स्यात्कम्बुरस्त्रियाम् इत्यमरः।
ललाटमलिंक गोधिः इत्यमरः।
लोचनं नंयन नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न-9.3

15. गौरवटु द्वारा महान पुण्य का समय कैसे व्यतीत किया?
16. इस समय किसके सन्ध्योपासना का समय है?
17. किसलिये गौरवटु पुष्पों का चयन करता है?
18. गौरवटु कैसा था?

9.5 मूलपाठ

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्त्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रिकुल-कूजितपूजितं पयःपूरितं सर आसीत्।

दक्षिणतश्चैको निर्झर-झर्झर-ध्वनित-दिगन्तरः, फल-पटलाऽऽस्वाद-चपलित-चञ्चु-पतङ्गकुलाऽऽ-क्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि-समूह-व्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

अन्वयार्थ- केले के पत्तों से घिरे हुए होने के कारण कुञ्ज के समान प्रतीत होने वाले उस कुटीर के चारों ओर पुष्पवाटिका थी, पूर्व में परम पवित्र जल वाला, सहस्रों (से अधिक) श्वेत कमल-समूह से पूर्ण तथा पक्षिकुल के कूजन से युक्त जल से भरा हुआ तालाब था। दक्षिण दिशा में झरने की झर-झर ध्वनि से मुखरित दिशाओं वाला, फलों के आस्वाद से चञ्चल चोंच वाले पक्षिकुल के आक्रमण से अधिक झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्ष-समूह से व्याप्त तथा सुन्दर कन्दराओं (गुफाओं) वाला एक पर्वतखण्ड (पहाड़ी) था।

व्याख्या- गौर सिंह जिस कुटिया में रहता था उसके चारों दिशाओं मे फैले हुए मनोहारी पुष्प व पादप थे। उन्हीं से वह कुटिया सुशोभित थी। चारो ओर पुष्पों के उद्यान थे। इसके पूर्व में जल से परिपूर्व सरोवर था जिसके पवित्र जल में हजारों श्वेत कमल शोभित हो रहे थे। पक्षियों के कलरव ध्वनि से सदैव मुखरित था गुञ्जायमान था। उस कुटिया के दक्षिण दिशा की ओर एक पर्वत खण्ड था जिसके वृक्ष पक्षी कुलों से सुशोभित थे। सुन्दर कन्दराओं से सुशोभित उस पर्वतखण्ड से निकलते हुए झरनों की ध्वनि से चारों दिशा, गुञ्जायमान थी।

व्याकरणविमर्शः

कदलीदलकुञ्जायितस्य- कदलीनां दलाति कदलीदलाति इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तैः कुञ्जायित इति तृतीयातत्पुरुषसमासः, तस्य।

परमपवित्रपानीयम्- परमं च तत् पवित्रं चेति कर्मधरयः, तादृशं पानीयं यस्य तत् इति बहुव्रीहिसमासः।

परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितम्- परस्सहस्राणि इति निपातनात् समासः। "पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्" इति सुडागमः। परस्सहस्राणि पुण्डरीकाणि इति कर्मधरयसमासः। तेषां पटलमितिषष्ठीतत्पुरुषसमासः। तेन परिलसितमिति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

पतत्रिकुलकूजितपूजितम्- पतत्रिणां कुलं पतत्रिकुलमिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तस्य कूजितमिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तेन पूजितमिति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

निर्झरझर्झरध्वनिधवनितदिगन्तरः- झर्झररूपः ध्वनिः झर्झरध्वनिः शाकपार्थिवादिवत् समासः। निर्झराणां झर्झरध्वनिरिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तेन ध्वनितानि इति तृतीयातत्पुरुषसमासः। तादृशानि दिगन्तराणि यस्य स इति बहुव्रीहिसमासः।

फलपटलाऽऽस्वादचपलिचञ्चुपतङ्गः इति तृतीया- तत्पुरुषः। तादृशाः चञ्चवः योषां ते फलपटलास्वादचपलितचञ्चवः इति बहुव्रीहिः। तादृशाः पतङ्गा इति कर्मधारयसमासः। तेषां कुलमिति षष्ठीतत्पुरुषः। तस्य आक्रमणम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। तेन आक्रमणेन अधिकविनता: इति तृतीयातत्पुरुषः। अधिकविनताः शाखाः येषां ते अधिकविनताशाखा इति बहुव्रीहिः। तादृशाः शाखिनः इति कर्मधारयः। तेषां समूह इति षष्ठीतत्पुरुषः। तेन व्याप्त इति तृतीयातत्पुरुषः।

सुन्दरकन्दरः- सुन्दराः कन्दराः यस्मिन् स इति बहुव्रीहिसमासः।

कोष- कदली वाणरबुसा रम्भा मोचांशुमफला इत्यमरः।
स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम् इत्यमरः।
वृक्षों महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः इत्यमरः।
दरी तु कन्दरो वा स्त्री इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न-9.4

19. कुटिया कैसी थी?
20. कुटिया के चारों ओर क्या था?
21. कुटिया के पूर्व में तालाब कैसा था?
22. कुटिया के दक्षिण दिशा में क्या था?
23. निर्झरझर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः में समास लिखिए।
24. परमपवित्रपानीयम् में समास लिखिए।

टिप्पणी

9.6 मूलपाठ

यावदेष ब्रह्मचारी वटुरलिपुअमुद्धूय कुसुमकोरकानवचिनोति, तावत् तस्यैव सतीर्थ्योऽपरस्तत्समानवया: कस्तूरिका-रेणुरूषित इव श्याम: चन्दनचर्चित-भाल: कर्पूरागुरु-क्षोदच्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्ड:, सुगन्धपटलै-रुन्लिद्रयन्निव निद्रामन्थराणि कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि मिलिन्दवृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् गौरवटुमेवमवादीत्-

'अलं भो अलम्! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थपित:, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासन्ते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम्, यवनत्रासेन नि:शब्दं रुदतीम्, परमसुन्दरीम, कलितमानवदेहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्, मरन्दमधुरा अप: पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया याम‌त्रमनैषी:, सेयमधुना स्वपिति, उदुद्ध्य चपुनस्तथैव रेदिष्यति, तत्परिमार्गणीयान्येतस्या: पितारौ गृहं च-'

इति संश्रुत्य उष्णं नि:श्वस्य यावत् सोपि किञ्चिद् वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात तयोर्दृष्टि:।

अन्वयार्थ:-

जैसे ही यह ब्रह्मचारी बटु भ्रमर समूह को उड़ाकर फूलों की कलियों को तोड़ने लगा, उसी समय उसी का सहपाठी समान अवस्था वाला एक-दूसरा (ब्रह्मचारी), कस्तूरिका के चूर्ण से सना हुआ (छरित) सा श्याम वर्ण वाला, चन्दन से लिप्त ललाट वाला तथा कपूर और अगुरु के चूर्ण से व्याप्त (शोभित) वक्षस्थल एवं भुजाओं वाला (वह) निद्रा से अलसाये हुये तथा कोरक कदम्बों (कलियों) के अन्तराल में (अन्दर) सोए हुए भ्रमर समूहों को सुगन्ध को अधिकता से जागता हुआ-सा एकाएक (सहसा) समीप में आकर उस गौर बटु को (फूल तोड़ने से) रोकता हुआ इस प्रकार बोला-

"बस, भाई बस! पहले ही मैंने फूल तोड़ लिये हैं, तुम देर तक रात्रि में जगते रहे, इसलिये शीघ्र तुम्हें नहीं जगाया, (इस समय) गुरू जी यहाँ तालाब के किनारे सन्ध्योपासना कर रहे हैं, मैंने सभी (पूजन) सामग्री उनके पास रख दी है। और जिसे, लगभग सात वर्ष वाली, यवनों (मुसलमानों) के भय से नि:शब्द रोती हुई, परम सुन्दरी तथा मानव-शरीर धारण करने वाली सरस्वती के समान कन्या को सान्त्वना प्रदान करते हुए पुष्प रस से मीठे जल को पिलाते हुए तथा कन्द-खण्डों को खिलाते हुए, रात्रि के तीन पहर व्यतीत कर दिये थे, वह (कन्या) इस समय सो रही है, उठकर पुन: वैसे ही रोयेगी, अत: उसके माता-पिता और गार का पता लगाना चाहिए।" यह सुनकर, गर्म साँस लेकर जब तक उस (गौरबटु) ने भी कुछ कहना चाहा तभी अचानक उन दोनों की दृष्टि पर्वत-शिखर पर पड़ी।

व्याख्या- जब गौरसिंह वटु भ्रमर कुल को हटाकर पुष्पों का चयन कर रहा था तब उसके साथ अध्ययन करने वाला व समान श्यामवटु आया। श्यामवटु देखने से अतीव श्यामल था। उसका मस्तक चन्दन लेपित, वक्ष:स्थल कपूर एवं अगुरु के चूर्ण से लिप्त था। वह शीघ्र ही आकर पुष्प चयन के बीच में ही निद्रा से उठाये मधुरकर वृन्द के पास आकर दूर करता हुआ गौर वटु को बोला कि पुष्पचयन का प्रयोजन नहीं है। मेरे द्वारा पहले ही पुष्प चुने जा

चुके हैं। गौरबटु रात्री में बहुत समय तक जगा था अतः प्रातः नहीं उठ सका। गुरु जी तालाब के किनारे सन्ध्यावंदन कर रहे है। उनके सन्ध्यावंदन के सभी द्रव्यों को श्यामवटु ने स्थापित कर दिये थे। उसके बाद कहता है कि यवनों के भय से रोती हुई सात वर्षीय कन्या को सान्त्वना देते हुए, जल पिलाते हुए, मुनियों को भोजन खिलाते हुए तुमने रात्रि के तीन प्रहर व्यतीत कर दिये थे वह कन्या अब सो रही है। उसका रोना उसी प्रकार न हो इसलिए उसके माता-पिता, और गार एवं भवन को खोजना चाहिए। ऐसा सुनकर गौरसिंह जब कहने के लिए उद्यत हुआ तब ही अचानक दोनों की दृष्टि पर्वत की चोटी पर पड़ी।

व्याकरणविमर्श :

कुसुमकोरकान्- कुसुमानां कोरकाः कुसुमकोरकाः, तान् इति षष्ठीतत्पुरुषः।

तत्समानवयाः- तस्य समानः तत्समानः इति षष्ठीतत्पुरुषः। तत्समानं वयः यस्य स इति बहुव्रीहिसमासः।

कस्तूरिकारेणुरुषितः- कस्तूरिकाणां रेणवः कस्तूरिकारेणवः इति षष्ठीतत्पुरुषः। तैः रूषितः इति तृतीयातत्पुरुषः।

चन्दनचर्चितभालः- चन्दनेन चर्चितं चन्दनचर्चितमिति तृतीयातत्पुरुषः। चन्दनचर्चितं भालं यस्य स इति बहुव्रीहिः।

कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरितवक्षोबाहुदण्डः- कर्पूरमिश्रितः अगुरुः कर्पूरागुरुः इति शाकपार्थिवादिवत्समासः। तस्य क्षोदः इति षष्ठीतत्पुरुषः। तेन छुरितम् इति तृतीयातत्पुरुषः। कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरितं वक्षोबाहुदण्डं यस्य स कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरित-वक्षोबाहुदण्डः इति बहुव्रीहिः। वक्षश्च बाहुदण्डौ च वक्षबाहुदण्डमिति समाहारद्वन्द्वः।

मिलिन्दवृन्दानि- मिलिन्दानां वृन्दानि इति षष्ठीतत्पुरुषः।

तडागतटे-तडागस्य तटः तडागतटः, तस्मिकिति षष्ठीतत्पुरुषः।

यवनत्रासेन- यवनेभ्यः त्रासेन यवनत्रासेनेति पञ्चमीतत्पुरुषः।

कलितमानवदेहाम्- मानवानां देहः मानवदेहः इति षष्ठीतत्पुरुषः। कलितो मानवदेहः यया सा, ताम् इति बहुव्रीहिः।

समुपसृत्य- समुपसंघातपूर्वकात् सृधातोः ल्यपि सभुपसृत्य इति।

निवारयन्- निपूर्वकाद् वारिधातोः शतरि पुंसि सौ निवारयन् इति।

अवादीत्- वदेर्लुङि तिपि अवादीत् इति।

अवचितानि- अवपूर्वकात् चिनोतेः कर्मणि क्तप्रत्यये नपुंसके जसि रूपम्।

अजागरीः- जागर्तेः लुङि सिपि अजागरीः इति रूपम्।

उत्थापितः- उत्पूर्वकात् स्थाधर्तोः णिचि कर्मणि क्तप्रत्यये पुंसि सौ उत्थापितः इति रूपम्।

सान्त्वयन्- सान्त्व्-धतोः शतरि पुंसि सुप्रत्यये सान्त्वयन् इति।

कोष - स्यान्निकायः पुंजराशिः इत्यमरः।
सतीर्थ्यास्वेकगुरवः इत्यमरः।
कुलं रोधश्च तीरंच प्रतीरंच तटं त्रिषु इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न-9.5

25. श्यामवटु कैसा था?
26. आचार्य कहाँ सन्ध्यावन्दन करते थे?
27. श्यामवटु ने क्या स्थापित किया?
28. गौरवटु कैसे तीन प्रहर जागे?
29. गौरवटु ने क्या पिलाया?
30. वह कन्या क्यों रो रही थी?
31. गौरवटु और श्यामवटु क्या खोजना चाहते थे।
32. गोरवटु और श्यामवटु कि दृष्टि कहाँ पड़ी।

9.7 मूलपाठ

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महान् कन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति, प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति अन्ये च मार्कण्डेय इति, विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिवटुभ्यामदर्शि।

अन्वयार्थ- उस पर्वत पर एक बहुत बड़ी गुफा थी। उसी में एक महामुनि समाधि में स्थित थे। इन्होंने कब समाधि लगाई, यह कोई नहीं जानता। गाँव के प्रधान तथा गाँवों के लोग बीच-बीच (कभी-कभी) यहाँ आकर उनका पूजन, प्रणाम और स्तवन किया करते थे। उनको कोई कपिल, कोई लोमेश, कोई जैगीषव्य और कोई मार्कण्डेय समझता था। वही इस समय (पर्वत) शिखर से उतरे हुए (उन) दो ब्रह्मचारी बालकों के द्वारा देखा गया।

व्याख्या- युगों युगों से उस पर्वत की गुफा में एक योगिराज मुनिप्रवर समाधि में तल्लीन हैं। उसके वास्तविक स्वरूप को कोई नहीं जानता है। कुछ कपिल, कुछ जैगीषव्य, कुछ लोमेश और कुछ मार्कण्डेय मानते हैं। कपिलमुनि सांख्यशास्त्र के सिद्धान्तों के प्रवर्तक मुनि है। भागवत

वचन से प्रतीत होता है कि वे विष्णु के अंशावतार थे ''सिद्धानां कपिलो मुनिरिति''। जैगीषव्य महाभारत काल के प्रख्यात सिद्ध महर्षि है। वे योग बल से आत्तशक्तियुक्त सर्वलोकचारी थे। महाभारत के वर्णनानुसार लोमेश ऋषि ने अनेक बार पृथिवी की प्रदक्षिणा की थी। भगवान व्यास से आदेशित होकर वे पाण्डवों को वनवासकाल में अनेक बार तीर्थस्थलों पर दिखाई दिये। मुनि के पुत्र मार्कण्डेय भगवान शिव की आराधना करके चिरंजीवी हो गये। ग्रामपति तथा समस्त ग्रामजनों ने पास में जाकर बीच-बीच में उनकी पूजा आदि से निवेदन किया था किन्तु योगिराज ने समाधि भंग नहीं की। चित्तवृतियों के निरोध को योग कहते हैं। योग की चरम अवस्था समाधि है। ध्यान की विशेष अवस्था जिसमे तत्व साक्षात्कार होता है उसे समाधि कहते हैं। उससे बाह्य कोई व्यवहार उसके चित को स्पर्श नहीं करता। अत: पूजा आदि से भी वे समाधि से नहीं उठे। ऐसे वे योगिराज इस समय पर्वत से नीचे उतरते हुए श्याम व गौर वटु को दिखाई दिये।

व्याकरणविमर्श -

महामुनिः- महान् चासौ मुनिः महामुनिः इति कर्मधारयसमासः।

ग्रामणीग्रामीणग्रामाः- ग्रामण्यश्च ग्रामीणश्च ग्रामणीग्रामीणः इतरेतरद्वन्द्वसमासः। तेषां ग्रामाः ग्रामणीग्रामीणग्रामाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

अदर्शि- दृश्धातोः कर्मणि लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्।

अवतरन्- अवपूर्वात् तृधातोः शतरि सौं रूपमिदम्।

कोष - समौ संवसथ ग्रामौ इत्यमरः।

दरी तु कन्दरो वा स्त्री देवखातबिले गुहा। गह्वरम् इत्यमरः।

पाठगतप्रश्न 9.6

33. पर्वत की कन्दराओं में कौन निवास करते थे?

34. महामुनि की कौन पूजा करते थे?

35. महामुनि को क्या मानते थे?

36. गौरसिह व श्यामवटु ने किसको पर्वत की चोटी से उतरते हुए देखा।

7.8 मूलपाठ

'अहो! प्रबुद्धो मुनिः! प्रबुद्धो मुनिः! इत एवागच्छति, इत एवागच्छति, सत्कार्योऽयं सत्कार्योऽयम्' इति तौ सम्भ्रन्तौ बभूवतुः।

अथ समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्यनियमसम्पादनाय प्रयाते गौरवटौ,

टिप्पणी

छात्रगणसहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागतसामग्रीषु, 'इत आगम्यताम्, सनाथ्यताभेष आश्रमः' इति सप्रणाममभिगभ्य वदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाहपीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च।

तस्मिन् पूज्यमाने, 'योगिराडुत्थित' इति, अयात इति च आकर्ण्य, कर्णपरम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङगानि, अङगारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च् वायं वर्णयन्तश्चकिता इव सआताः।

अन्वयार्थः- अहो! मुनि जग गये! मुनि जग गये! इधर ही आ रहे हैं, इधर ही आ रहे हैं, ये सत्कार्य हैं, ये सत्कार्य हैं, इस प्रकार (कहते हुए) वे दोनों बटु संभ्रान्त (भाव व्याकुल) हो गये।

इसके बाद सन्ध्यावन्दनादि क्रिया समाप्त करके गुरु के आ जाने पर, उनकी आज्ञा से नित्य नियम सम्पादित करने के लिए गौरबटु के चले जाने पर, छात्रगण की सहायता से स्वागत-सामग्री के प्रस्तुत हो जाने पर तथा प्रणाम पूर्वक सभी लोगों के 'इधर आयेंगे, इस आश्रम को सनाथ कीजिये' इस प्रकार कहने पर (वे पर्वत से उतरने वाले) योगिराज आकर मुनि के द्वारा निर्दिष्ट काष्ठासन पर उदयाचल पर सूर्य के समान, चढ़कर बैठ गये।

उनके (योगिराज के) पूजन के समय ही ''योगिराज (समाधि से) उठ गये हैं और यहाँ आये हुए है'' (यह समाचार) कर्णपरम्परा से (एक दूसरे से) सुनकर चारों ओर बहुत से लोग स्थित (जमा) हो गये। (उनके) सुघटित शरीर, घनी जटा, विशाल अंगों, अंगार के सदृश (तेजस्वी) नेत्र तथा मधुर और गम्भीर वाणी का वर्णन करते हुए (लोग) चकित से हो गये।

व्याख्या- मुनि जाग गये हैं अतः उसका सत्कार करना चाहिए यह सोचकर गौरवटु एवं श्यामवटु हर्षान्वित हो गये। उसके बाद सन्ध्यावंदन क्रिया को सम्पादित करके गुरुचरण आ गये। उनकी आज्ञा से गौरवटु नित्यनियम सम्पत्ति के लिए गया। तब छात्र गणों के साथ सभी स्वागत सामग्री सजाकर यहां आइये, इस आश्रम को अलंकृत कीजिये, ऐसा आदर सहित प्रणाम करते हुए बोल रहे थे। उसके बाद मुनिश्रेष्ठ, योगिराज आकर मुनि निर्दिष्ट काष्ठ निर्मित चौकी पर उसी प्रकार बैठ गये जैसे उदयाचल आरुढ़ भगवान भास्कर उदयगिरि पर बैठते हैं।

उस मुनिश्रेष्ठ योगिराज की पूजा के बाद योगिराज उठ गये है, और यहां आये हुए है यह वार्ता परस्पर कानों से सुनकर बहुत अधिक लोग आश्रम में आ गये। उस योगीराज का शरीर सुघटित, घनी जटाएं, विशाल अंग-अंगारे के समान लाल नेत्र तथा मधुर व गम्भीर वाणी थी ये सब सुनकर हुए लोग आश्चर्यचकित हो गये।

व्याकरणविमर्श -

समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये- सन्ध्याया वन्दनम् इति सन्ध्यावन्दनमिति षष्ठीतत्पुरुषः। सन्ध्यावदनम् आदि यासां ताः सन्ध्यावन्दनादयः इति बहुव्रीहिसमासः। ताश्चामी क्रियाश्चेति सन्ध्यावन्दनादिक्रियाः इति कर्मधारयः। समापिताः सन्ध्यावन्दनादिक्रियाः येन स समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रियः, तस्मिन् इति बहुव्रीहिः।

नित्यनियमसम्पादनाय- नित्याः नियमाः नित्यनियमाः इति कर्मधरयः। तेषां सम्पादनाय नित्यनियमसम्पादनाय इति षष्ठीतत्पुरुषः।

स्वागतसामग्रीषु- स्वागतार्थाः साम्रग्यः स्वागतसाम्रग्यः, तासु इति शाकपार्थिवादिवत्समासः।

आरुरोह- अङ्पूर्वकाद् रूह्धातोः लिटि तिपि आरुरोह इति।

उपाविशत्- उपपूर्वपूर्वकाद् विशतेः लङि तिपि उपाविशत् इति।

कोषः- भास्वद्विवश्वत्सप्ताहरिदश्वोष्णरश्मयः इत्यमरः।
कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं स्त्री श्रवणं श्रवंः इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न 9.8

37. महामुनि कहां बैठे?

38. महामुनि किसके समान और कहां आरुढ़ हुए?

39. नित्यनियमसम्पादनाय में समास बताइए?

40. महामुनि देखने में कैसे थे?

पाठसार

सूर्य आकाश में स्थित नक्षत्रों के बीच मणि के समान है। वह पूर्व दिशा मे कुण्डल के रूप मे सुशोभित है। वह कमल के वल्लभ और चक्रवाक मिथुन के शोक का नाशक है। सूर्य के उदय एवं अस्त होने से पद्मिनी की मलिनता एवं प्रकाश नियमित होता है। दिन के स्वामी सूर्य ही समस्त व्यवहारों के प्रवर्तक हैं। सूर्य के उदय होने पर दिन और अस्त होने पर पृथ्वी रात्रि को धारण करती है। सूर्य की गति के कारण ही वर्ष के बारह भेद हैं, ऋतुओं युगो एवं कल्पों के भी भेद होते है। वेदों में भी सूर्य की स्तुति की जाती है। गायत्री मन्त्र से सत्ब्राह्मण प्रतिदिन सूर्य की उपासना करते हैं। उसी कुल में भगवान श्रीरामचन्द्र ने जन्म प्राप्त किया। अत एव विश्व के परम पूजनीय सूर्यदेव की वन्दना करके गौरवटु (गौरसिंह) अपनी कुटीर से बाहर आया। जगने में विलम्ब हो जाने के कारण गुरुसेवा में विघ्न से आशांकित होकर वह गौरवटु गुरु के सन्ध्योपसना के लिए पुष्पचयन करने के लिये उद्यत हुआ अत वह दोना बनाकर पुष्प चयन करने लगा। वह गौरवटु सुन्दर शरीर, 'श्वेतवर्ण, जटाओं से ब्रह्मचारी, सोलहवर्षीय शंख के समान गर्दन वाला, विशाल मस्तक वाला, सुन्दर भुजाओं वाला, विस्तृत नेत्रों वाला था।

उसी समय उसका सहपाठी श्यामबटु आकर बोला कि पुष्पचयन मत करो। वह श्यामवटु चन्दन लिप्त मस्तक वाला, कपूर एवं गुरु चूर्ण लिप्त वक्षःस्थल वाला था उसने गौरवटु से कहा कि यवनों से डरी हुए बालिका की सेवा में गौरवटु के रात्रि के तीन प्रहर बीत गये इसलिए प्रातः शीघ्र नहीं उठ पाया। अब उस बालिका के माता-पिता एवं घर की खोज करनी चाहिए। उसी वार्तालाप के समय में उन दोनों की दृष्टि पर्वत के शिखर पर पड़ी।

उस पर्वत की गुफा में बहुत समय से एक मुनि समाधि में मग्न था उसका परिचय कोई नहीं जानता था। उस मुनि की ग्रामवासी पूजा करते थे। किन्तु वह समाधि में ही लीन रहता था। अब वह मुनि समाधि से उठकर पर्वत से उतर रहा था तब उन दोनों कीं दृष्टि उस पर पड़ी। वह तपोवन की ओर आ रहा था। उसके बाद तपोवन के गुरु, छात्रों के साथ महामुनि को स्वागत वाणी से बुलाकर यथा योग्य अर्चना की। वह योगिराज आश्रम में आकर मुनि निर्दिष्ट चौकी पर उसी प्रकार विराजमान हुए जैसे सूर्य उदय होकर उदयगिरि पर विराजमान होते हैं।

वह मुनि समाधि से उठकर आश्रम में आये है यह बात फैल जाने पर बहुत से लोग आश्रम मे आ गये। उस योगिराज का शरीर सुघटित, जटाएं प्रगाढ, अंग विशाल, नेत्र अंगारे के समान, वाणी मनोहर एवं गम्भीर थी। ऐसी प्रशंसा को सुनकर लोग चकित रह गये। इस प्रकार संक्षेप में पाठ का सार प्रस्तुत है।

आपने क्या सीखा

- भगवान सूर्य की महिमा को जाना।
- गौरबटु एवं श्यामबटु के स्वरूप एवं उनकी वार्तालाप को जाना।
- योगीराज प्रसंग को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. 'विष्णोर्माया भगवती'-श्लोक की व्याख्या कीजिए।
2. 'हिंस्रः स्वपापेन' श्लोक की व्याख्या कीजिए।
3. शिवराजविजय काव्य के अनुसार सूर्यादय का वर्णन कीजिए।
4. कदलीदलकुञ्जयितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्त्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रिकुल-कूजितपूजितं पयःपूरितं सर आसीत्। दक्षिणतृचैको निर्झर-झर्झर-ध्वनित-दिगन्तरः, फल-पटलाऽऽस्वाद-चपलित-चञ्चु-पतङ्ग्कुलाऽऽ-क्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि-समूह-व्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत् की व्याख्या कीजिए।
5. तस्मिन् पर्वते आसीदेको महान् कन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति, प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति अन्ये च मार्कण्डेय इति, विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिवटुभ्यामदर्शि की व्याख्या कीजिए।
6. योगिराज के वृतान्त का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. विष्णु की माया भगवती से जगत मोहित है।
2. हिंसक अपने पाप से विनष्ट होते हैं।
3. साधु समत्व भाव से भय से मुक्त होते है।
4. विष्णोर्माया-पद से नमस्कारात्मक मंगलाचरण है।
5. हिंस्र पद से वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण है।

9.2

6. पूर्व दिशा में भगवान मरीचिमाली का प्रकाश है।
7. सूर्य आकाशमण्डल का मणि है।
8. सूर्य खेचरचक्र (पक्षीयों) का चक्रवर्ती है।
9. ब्रह्माण्ड भाण्ड का दीपक सूर्य है।
10. सूर्य कोकलोक (चक्रवाक वियोग) का शोक विमोचक है।
11. सूर्य वर्ष को बारह भाग में विभक्त करता है।
12. 'उपतिष्ठन्ते' यह उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यम् वार्तिक से आत्मनेपद हुआ।
13. जनपति-यह ''बुधयुधनशजनेंप्रुद्रुस्रुभ्यो णेः से आत्मनेपद हुआ।
14. सूर्य रामचन्द्र के कुल मूल हैं।

9.3

15. गौरवटु ने महान पुण्य का समय स्वप्नजाल के अधीन कर व्यतीत किया।
16. गौरवटु के गुरुजनो का प्रातः सन्ध्योपसना का समय है।
17. गुरु के सन्ध्योपसना के लिए गौरवटु पुष्प चुनता है।
18. गौरवटु-मनोरमकाय, धवलवर्ण, जटा ब्रह्मचारी, षोडशवर्षीय शंखग्रीव दीर्घभाल, सुन्दरबाहु विस्तृतलोचन था।

9.4

19. गौरवटु की कुटियाँ कदलीदल से सुशोभित थी।

20. कुटीर के चारों ओर पुष्पवाटिका थी

21. कुटीर के पूर्व में सरोवर था।

22. कुटीर के दक्षिण में सुन्दर कन्दर वाला पर्वतखण्ड था।

23. निर्झरझर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः- झर्झररूपः ध्वनिः झर्झरध्वनिः शाकपार्थिवादिवत् समासः। निर्झराणां झर्झरध्वनिरिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तेन ध्वनितानि इति तृतीयातत्पुरुषसमासः। तादृशानि दिगन्तराणि यस्य स इति बहुव्रीहिसमासः

24. परमपवित्रपानीयम्- परमं च तत् पवित्रं चेति कर्मधारयः, तादृशं पानीयं यस्य तत् इति बहुव्रीहिसमासः।

9.5

25. श्यामवटु देखने में श्यामल था उसका भालप्रदेश चन्दनलेपित, वक्षःस्थल कपूर एवं गुरुचर्ण लिप्त था।

26. आचार्य आश्रम के तालाब के किनारे सन्ध्यावन्दन करते थे।

27. श्यामवटु ने सन्ध्योपसना सामग्री स्थापित की।

28. गौरवटु ने यवन त्रास से डरी कन्या को मधुर पेय पिलाकर, मुनियों को भोजन कराकर तथा उस बालिका को सान्त्वना देकर रात्रि के तीन पहर तक जागते रहे।

29. गौरवटु मन्दर के मधुर रस को पिलाकर स्थित थे।

30. वह कन्या यवन त्रास के कारण रो रही थी।

31. दोनों बालिका के माता-पिता और भवन को खोजना चाहते थे।

32. दोनों की दृष्टि पर्वत शिखर पर पड़ी।

9.6

33. पर्वत की गुफा में एक समाधि लीन महामुनि निवास करते थे।

34. ग्रामीण महामुनि की पूजा करते थे।

35. महामुनि को कुछ लोग कपिल, कुछ लोमेश, कुछ जैगीषव्य और कुछ मार्कण्डेय मानते थे।

36. दोनों ने महामुनि को पर्वत से उतरते देखा।

9.7

37. महामुनि काष्ठ निर्मित चौकी पर बैठे।

38. महामुनि भास्कर के समान चौकी पर बैठे।

39. नित्यनियमसम्पादनाय- नित्याः नियमाः नित्यनियमाः इति कर्मधारयः। तेषां सम्पादनाय नित्यनियमसम्पादनाय इति षष्ठीतत्पुरुषः।

40. महामुनि सुघटितकाय, प्रगाढजटा, विशाल अंग, अंगारनेत्र एवं मनोहरवाणी वाले थे।

10

शिवराजविजय-योगीराज संवाद

योगिराज की चर्चा के बाद बालिका रोदन वृतान्त, भारतवर्ष में यवनो का दुराचार, योगिराज का योगाचरण, और भारत वर्ष की वर्तमान दशा को इस पाठ मे क्रमशः वर्णित किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- बालिका प्राप्ति के वृतान्त को जान पाने में;
- बालिका रोदन वृतान्त को जान पाने में;
- बालिका के अपहरण के वृतान्त को जान पाने में;
- यवनों के दुराचरण को जान पाने में;
- योगिराज के योग प्रसंग को जान पाने में;
- पाठांश के अन्वयार्थ संगम को समझ जान पाने में और;
- पाठांश पदों के व्याकरण विमर्श एवं पयार्य पदों को जान पाने में।

10.1 सम्पूर्ण मूलपाठ

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीरात् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुणरोदनम्।

ततः 'किमिति। कुत इति। केयमिति। कथमिति।' पृच्छापरवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामवटुमादिश्य कथितम्-

'भगवन्! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुषऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दाविव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधधरामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-निःश्वासम् श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्,, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविहं क्रन्दनमश्रौषम्।

तत्क्षणमेव च 'कुत इदम्। किमिदमिति दृश्यतां ज्ञायताम्' इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घ निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्रता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्केक निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो व न प्राप्तः। तां च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदर्ती सक्षोभं रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।

अथ 'कन्यके! मा भैषीः, पुत्रि! त्वां मातुः समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः! खेदं मा वह, भगवति! भुङक्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, ,ते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीभारोपयः, मा स्म कोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः इति सहस्रधा बोधनेने कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, 'बालिके! कथय क्व ते पितरौ। कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता। किं ते कष्टम्। कथमरोदीः। किं वाञ्छसि। किं कुर्मः। इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति।

एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवन-तनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छ्यि क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदसिधेनुकां सन्दर्श्य बिभीषिकयाऽस्याः क्रन्दन-कोलाहलं शमयितुमियेषः तावदकस्मात् कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपाजगाम। दृष्ट्वैव यवन-तनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाश-पलाशि-श्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुना रोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽऽनीतेशति।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच-' विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचाराणाभुपद्रवः।'

ततः स उवाच- 'महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम्। वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनिः। क्व सम्प्रति तीर्थे घण्टानादः। क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः। अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्

टिप्पणी

धनानि लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्त्तनादा:, क्वचिद् रुधिरधरा:, क्वचिदग्निदाह:, क्वचिद् गृहनिपात:' इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परित:।

तदाकर्ण्य दु:खितश्चकितश्च योगिराडुवाच- ''कथमेतत्। ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायात: श्रीमानादित्य-पदलाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायात: श्रीमानदित्य-पदलाञ्छनो वीरविक्रम:। अद्यापि तद्विजयपताका मम चक्षुषोरग्र इव समुद्धूयते, अधुनापि तेषां पटहगोमुखादीनां निनाद: कर्णशष्कुर्ली पूरयतीव, तत् कथमद्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि।'' इति।

तत: सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम्-

''भगवन्! बद्ध-सिद्धासनैर्निरुद्ध-नि:श्वासै: प्रबोधितकुण्डलिनीकै: विजित-दशेन्द्रियैरनाहत-नाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्र-मण्डलं भित्त्वा, तेज:पुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्त: प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युअयैरानन्दमात्र- स्वरूपैध र्यानावस्तितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेग:। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिता: तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतासि नदीनाम्, न सा संस्था नगराणाम्, न सा आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिकं कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति।''

इदमाकर्ण्य किञ्चित् स्मित्वेव परितोऽवलोक्य व योगी जगाद- ''सत्यं न लक्षितो मया समय-वेग:। यौधिष्ठिरे समये कलितसमाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रम-समये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् सांक्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति।''

10.2 मूलपाठ

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीरात् अश्रूयत तस्या एव बालिकाया: सकरुणरोदनम्।

तत: 'किमिति। कुत इति। केयमिति। कथमिति।' पृच्छापरवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामवटुमादिश्य कथितम्-

'भगवन्! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्य: सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि परित: समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दाविव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-नि:श्वासम् श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्,, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविहं क्रन्दनमश्रौषम्।

अन्वयार्थ- तदनन्तर योगिराज की सम्यक्: पूजा करके जैसे (ब्रह्मचारी के गुरु ने) कुछ कहने की इच्छा की वैसे ही कुटी से उस बालिका का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। तब योगिराज के ''यह क्या है? कहाँ (आई है?) यह कौन है? यह कैसे (आई)?'' पूछने पर ब्रह्मचारी के

टिप्पणी

गुरु ने श्यामबटु को बालिका को शान्त करने के लिये आदेश देकर कहना आरम्भ किया-

भगवन्! यदि (आपको इसका वृतान्त जानने की) उत्कण्ठा है (तो सुनिये! कल सायंकालीन कृत्य सम्पादित करके मैं यहीं कुशासन पर बैठा हुआ था, चारों ओर छात्रगण बैठे हुये थे, मन्म-मन्द वायु के स्पर्श से लताएँ धीरे-धीरे हिल रही थीं, निशा नायिका के चन्दन बिन्दु के समान चन्द्रमा (शोभित हो रहा था), चन्द्रिका (चाँदनी) के ब्याज से आकाश अमृत की धरा सी बरसा रहा था, मानो हम लोगों की नीतिवार्ता को सुनने के लिये पक्षिकुल ने मौन धारण कर लिये थे, कुमुदों के खिलने से हर्षतिरेक से भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे, (उसी समय) अस्पष्ट अक्षरों वाला, प्रकम्पित निःश्वास वाला, रूधे हुए कंठ वाला, ध्वनि वाला, चीत्कार तथा दीनता से पूर्ण बहुत ध्वनि देने से सुनाई पडने के कारण जिसके बहुत दूर होने का अनुमान था, (ऐसा) करुण कन्दन मैंने सुना।

व्याख्या- जब योगिराज के साथ ब्रह्मचारिगुरु ने वार्तालाप करने की चेष्टा की तब कुटीर से यवनों द्वारा पीड़ित बालिका के करुणरोदन को सुनकर किसलिए रोदन हो रहा है, क्रन्दन कहां से, यह कौन रो रही है, रोने के क्या कारण है, ये योगिराज ने पूछा। गुरुब्रह्मचारी ने श्यामवटु को बालिका को सान्त्वना देने के लिए आदेश देकर योगिराज को बालिकावृतान्त कहा या सुनाया।

जब ब्रह्मचारीगुरु सांयकालीन सन्ध्योपसना को समाप्त करके चारों ओर छात्रों से घिरा हुआ उपदेश देने के लिए दर्भासन पर बैठा तब मन्द-मन्द पवन के स्पर्श से लताएं चलायमान हो रही थी। स्त्री रुपी नायिका के कपाल बिन्दु के समान चन्द्रमा उदय हो रहा था। चांदनी के व्याज से आकाश अमृतधरा के समान बरस रहा था। पक्षी उसी प्रकार मौन थे जैसे वे अपने ब्रह्मचारीगुरु से नीतिव्याख्यान सुनना चाहते हो। भंवरे कुमुदिनी के विकास से हर्ष या प्रसन्नता को प्राप्त हो रहे थे। उसी समय ब्रह्मचारीगुरु ने अस्पष्टवर्ण वाली काँपती हुए निःश्वास, से दीनतायुक्त दूर से चीत्कार मात्र क्रन्दन को सुना।

व्याकरण विमर्श

- **सम्पादितसायन्तनकृत्ये**- सायन्तनानि कृत्यानि सायन्तन कृत्यानि इति कर्मधारयः। सम्पादितानि सायन्तनकृत्यानि येन स सम्पादितसायन्तनकृत्यः, तस्मिन् इति बहुव्रीहिः।
- **कुशास्तरणम्**-कुशनिर्मितम् आस्तरणं कुशास्तरणम् इति शकपार्थिवादिवत्समासः।
- **अधितिष्ठति**-अधिपूर्वकात् स्थाधातोः शतृप्रत्ये पुंसि ङौ अधितिष्ठति इति रूपम्।
- **समासीनेषु**-सम्पूर्वकाद् आस्धातोः शनचि पुंसि सुपि समासीनेषु इति रूपम्।
- **धीरसमीरस्पर्शेन**-धीरः समीरः धीरसमीरः इति कर्मधारयः। तस्य स्पर्शः, तेन इति षष्ठीतत्पुरुषः।
- **पतङ्गकुलेषु**- पतङ्गकलानि, तेषु इति षष्ठीतत्पुरुषः।
- **कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु**-कैरवाणां विकाशः कैरवविकाशः इति षष्ठीतत्पुरुषः। तज्जनितः हर्षः कैरवविकाशहर्षः इति शाकपार्थिवादिवत्समासः। तस्य प्रकाशः

टिप्पणी

कैरवविकाशहर्षप्रकाश: इति षष्ठीतत्पुरुष:। तेन मुखरा: इति तृतीयातत्पुरुष:, तेषु।

- **अस्पष्टाक्षरम्**- न स्पष्टम् अस्पष्टम् इति नञ्समास:। अस्पष्टम् अक्षरं यस्य तत् अस्पष्टाक्षरम् इति बहुव्रीहि:।
- **कम्पमाननि:श्वासम्**- कम्पमानो नि:श्वासो यस्मिन् तत् कम्पमाननि:श्वासमिति बहुव्रीहि:।
- **अनुमितदविष्ठतम्**-अनुमिता दविष्ठता यस्य तद् अनुमितदविष्ठतम् इति बहुव्रीहि:।
- **अश्रौषम्**-श्रुधातो: लुङि उत्तमपुरुषैकवचने अश्रौषम् इति रूपम्।

कोष -कौतुहलं कौतुकंच कुतुकंच कतुहलम् इत्यमर:।
समन्ततस्तु परित: सर्वतो विष्वग्त्यिपि इत्यमर:।

बल्ली तु व्रततिर्लता इत्यमर:।
चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना इत्यमर:।

पाठगतप्रश्न 10.1

1. ब्रह्मचारीगुरु ने बालिका के सान्त्वना के लिए किस को आदेश दिया?
2. उदय हुआ चन्द्रमा किसके समान था?
3. गगन से क्या बरस रहा था?
4. ब्रह्मचारीगुरु ने कैसा क्रन्दन सुना?
5. कम्पमाननि:श्वासम् में समास बताइए?

10.3 मूलपाठ

तत्क्षणमेव च 'कुत इदम्। किमिदमिति दृश्यतां ज्ञायताम्' इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घ नि:श्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्रता, अश्रुप्रवाहै: स्नाता, सवेपथु: कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्या: सहचरी सहचरो व न प्राप्त:। तां च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्दकोरकाग्रादर्ती सक्षोभं रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।

अन्वयार्थ- उसी समय, "यह (करुण क्रन्दन) कहाँ से! क्या (कारण) है? यह देखकर पता लगाओ" ऐसा आदेश देकर मेरे (द्वारा) छात्रों के भेजने पर क्षणभर बाद ही एक छात्र, भयभीत, वेग से उष्ण और दीर्घ (लम्बी) सांस लेती हुई, व्याघ्र (बाघ) से सूँघी हुई मृगी के समान, आँसुओं की धारा से स्नान को हुई तथा काँपती हुई कन्या को गोद में, रखकर लाया। बहुत देर तक ढूंढ़ने के बाद भी उसका साथी कोई सखी नहीं प्राप्त, हुई। चन्द्रमा की कलाओं से रखी गई समान, नवनीत (मक्खन) से बनाई गई के समान, कमलनाल के समान

गौरी तथा कुन्द कलिका के अग्रभाग के समान दांतो वाली उस कन्या की व्याकुलता से युद्ध, रोते देखकर हम लोग भी अपने आँसू रोक नहीं सके।

व्याख्या- उसी समय में यह रोदन कहा से है, इस रोने का क्या कारण है यह जानने के लिए ब्रह्मचारी गुरु ने अपने शिष्यों को आदेश दिया। उन शिष्यों में से एक शिष्य यवनों के भय से व्याकुल असहाय क्रन्दन करती हुए कन्या को गोद में लेकर आया। वह कन्या सन्ताप के कारण लम्बे श्वास वाली, व्याघ्रद्वारा घायल हरिणी के समान, अश्रुधरा से स्नान की हुई, कम्पायमान थी उन शिष्यों द्वारा खोज करने पर भी उसके कन्या का कोई सहचर या सहचरी प्राप्त नहीं हुआ। उस कन्या के बहुत अधिक क्रन्दन करने व दु:ख को देखकर सभी आश्रमवासी अश्रुपात हो गये।

व्याकरणविमर्श-

व्याघ्राघ्राता- व्याघ्रेण आघ्राता इति तृतीयाततत्पुरुष:

अश्रुप्रवाहै:- अश्रूणां प्रवाह: अश्रुप्रवाह:, तै इति षष्ठीतत्पुरुष:।

सवेपथु:- वेपथुना सह वर्तमाना इति बहुव्रीहि:।

मृणालगौरीम्- मृणाल इवगौरी मृणालगौरी, ताम् इति उपमानकर्मधारय:।

कुन्दकोरकाग्रदतीम्- कुन्दानां कोरकाणि कुन्दकोरकाणि इति षष्ठीतत्पुरुष:। कुन्दकोरकाणाम् अग्राणि कुन्दकोरकाग्रणि इति षष्ठीतत्पुरुष:। कुन्दकोरकाग्राणि इव दन्ता: यस्या: सा कुन्दकोरकाग्रदती, ताम् इति बहुव्रीहि:।

भयभीता- भयेन भीता इति तृतीयातत्पुरुष:।

दृश्यताम्- दृश्धातो: कर्मणि लोटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्।

ज्ञायताम्- ज्ञाधातो: कर्मणि लोटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्।

नि:श्वसती- निर्-पूर्वकात् श्वस्धातो: शतृप्रत्यये ङीपि सौ नि:श्वसती इति रूपम्।

कोष - शार्दुलद्वीपिनौ व्याघ्रे इत्यमर:।
उत्संगचिह्नयोरंक: इत्यमर:।

पाठगतप्रश्न 10.2

6. कैसी बालिका को छात्र गोद में लाया?
7. रोती हुए बालिका को देखकर आश्रमवासी क्या करने में असमर्थ थे?
8. कुन्दकोरकाग्रदतीम् में समास बताइए।

टिप्पणी

10.4 मूलपाठ

अथ 'कन्यके! मा भैषीः, पुत्रि! त्वां मातुः समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः! खेदं मा वह, भगवति! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीभारोपयः, मा स्म कोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः इति सहस्रध बोधनेने कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, 'बालिके! कथय क्व ते पितरौ। कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता। किं ते कष्टम्। कथमरोदीः। किं वाञ्छसि। किं कुर्मः। इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति।

अन्वयार्थ- इसके बाद "पुत्री! डरो मत बच्ची! तुम्हें माता-पिता के पास पहुँचा देंगे, बेटी दुःख मत करो, देवी! कुछ खाओ, दूध पिओ, ये सब तुम्हारे भाई हैं, जो कहोगी वही करेंगे, रोने से अपने प्राणों को सन्देह में मत डालो, शोक-ज्वाला से अपने कोमल शरीर को मत झुलसाओ" इस तरह हजारों प्रकार के समझाने से किसी प्रकार शान्त हुई और थोड़ा-सा दूध पिया। उसके बाद उसे मैने अपनी गोद में बैठाकर। 'बालिके कहो, तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते है? कैसे इस आश्रम में (प्रान्त में) तुम आई? तुम्हें क्या कष्ट है? तुम क्यों रोती थी? क्या चाहती हो? (हम सब) क्या करें?" इस प्रकार पूछने पर भोलेपन के कारण भाषण की चतुरता से अनभिज्ञ, भय के कारण अस्त-व्यस्त शब्दों में बोलने वाली, लज्जा से धीमे स्वरों वाली, शोक से रूंधे हुए गले वाली, भयभीत हुई सी ने किसी प्रकार हमे बताया कि इसी अति समीप के ही गाँव में रहने वाले किसी ब्राह्मण की पुत्री है।

व्याख्या- सभी आश्रमवासी बालिका को सान्त्वना देने के लिए बहुत चेष्टा कर रहे थे। वे उसके माता-पिता को भी लायेंगे यह कह रहे थे। वे उसे भोजन के लिए, जल पिलाने के लिए प्रयत्नशील थे बालिका ने थोड़ा सा दुग्ध पिया।

दुग्ध पीने के उपरान्त ब्रह्मचारी गुरु ने उसका परिचय, कौन हो, कैसे यहाँ आई, दुःख का कारण क्या है इत्यादि प्रश्न पुछे।

वह सरलता से, वचन चातुर्य न होने से, डर के कारण वचनों में शिथिलता होने से, लज्जा से, कण्ठ के अवरुध हो जाने से कोमल स्वर में आश्रम वासियों को कहा कि समीप मे स्थित एक ग्राम के ब्राह्मण की पुत्री है।

व्याकरण विमर्श-

- **मा भैषीः**- "माङि लुङ्" इति सूत्रेण माङ्योगे भीधातोः: लुङि मध्यमपुरुषैकवचने भैषीः इति रूपम्। अत्र "न माङ्योगे" इत्यनेन सूत्रेण अडागमाभावः।
- **शोकज्वालावलीढम्**- शोकरूपा ज्वाला शोकज्वाला इति शाकपर्थिवादिवत्समास। शोकज्वालाभिः अवलीढं शोकज्वालावलीढम् इति तृतीयातत्पुरुषः। अवपूर्वात् लिह्धातोः क्तप्रत्यये अवलीढशब्दो निष्पन्नः।

- **अपरिकलितवाक्पाटवा**- वाचः पाटवं वाक्पाटवम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। न परिकलितम् अपरिकलितम् इति नञ्समासः। अपरिकलितं वाक्पाटवं यस्याः सा अपरिकलितवाक्पाटवा इति बहुव्रीहिः।
- **विशिथिलवचनविन्यासा**- वचनानां विन्यासः वचनविन्यासः इति षष्ठीतत्पुरुषः। विशिथिलः वचनविन्यासः यस्याः सा विशिथिलवचनविन्यासा इति बहुव्रीहिः।

कोष - मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम् इत्यमरः।
दुग्धं क्षीरं पयः समम् इत्यमरः।
मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा इत्यमरः।

पाठगतप्रश्न 10.3

9. अनेक बार कहने पर बालिका ने क्या किया?
10. वह किसकी पुत्री थी?
11. अपरिकलितवाक्पाटवा में समास बताइए।
12. विशिथिलवचनविन्यासा में समास बताइए।

10.5 मूलपाठ

एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवन-तनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छि्द्य क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदसिधेनुकां सन्दर्श्य बिभीषिकयाऽस्याः क्रन्दन-कोलाहलं शमयितुमियेषः तावदकस्मात् कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपाजगाम। दृष्ट्वैव यवन-तनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाश-पलाशि-श्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुना रोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽऽनीते'ति।

अन्वयार्थः- इस सुन्दरी को देखकर एक कोई मुसलमान का लड़का नदी के किनारे माता के हाथ से (इसे) छीनकर रोती हुई लेकर भागा। तब कुछ दूर जाकर, जब (उसने) छुरा दिखाकर भय से इसके क्रन्दन कोलाहल (रोने के शब्द) को शान्त करना चाहा, तभी अकस्मात् काल-कम्बल के समान एक रीछ जंगल के किनारे से आ पहुँचा। उसे देखते ही वह मुसलमान बालक उस (कन्या) को वहीं छोड़कर एक शाल्मली (सेमर) के पेड़ पर चढ़ गया। यह ब्राह्मण-पुत्री पलाश-वृक्षों की श्रेणी (झुरमुट) में प्रवेश करके धुणाक्षरन्याय से इसी ओर आई (और) जब भय के कारण पुनः रोना प्रारम्भ किया, तभी मेरे छात्र के द्वारा (यहाँ) लाई गई।

व्याख्या- वह ब्राह्मण कन्या जब माता के साथ नदी के किनारे भ्रमण कर रही थी तब कोई यवन युवक उसको माता के हाथ से जबरदस्ती अपहरण करके वनमार्ग में ले आया। सहसा मार्ग मे आये भालू के डर से वह यवन युवक शाल्मली वृक्ष पर चढ़ गया। वह बालिका भी

वनमार्ग से पलाशवन से होती हुई भूली भटकी (धुणाक्षरन्यास से) आश्रम के पास आ गई, क्रन्दन करती हुए बालिका को तपोवन के बालक यहाँ ले आये।

कामान्ध वह यवन युवक निर्दय हृदय से रोती हुई बालिका को उसकी माता के हृदय को शून्य करता हुआ अपहरण करने में विचलित नहीं हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि यवनों की जघन्य कोमलता लुप्त हो गई। अत: भारतवर्ष के अभ्युदय के लिए उनका नाश करना चाहिए।

व्याकरण विमर्श

यवनतनय:- यवनस्य तनय यवनतनय: इति षष्ठीतत्पुरुष:।

नदीतटात्- नद्या: तट नदीतट:, तस्मात् इति षष्ठीतत्पुरुष:।

क्रन्दन्तीम्- क्रनद्-धातो: शतरि स्त्रियां डीपि अमि इदं रूपम्।

क्रन्दनकोलाहलम्- क्रनदनोत्थ: कोलाहल: क्रनदनकोलाहल:, तम् इति शाकपार्थिवादिवत्समास:।

पलाशपलाशिश्रेण्याम्- पलाशाश्चामी पलाशिनश्च पलाशपलाशिन: इति कर्मधारय:। तेषां श्रेणी, तस्यामिति षष्ठीतत्पुरुषसमास।

कोष- आत्मजस्तनय: सूनु: सुत: पुत्र स्त्रियां त्वमी। इत्यमर:।
अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थान: पदवी सृति:। इत्यमर:।

पाठगतप्रश्न 10.4

13. यवन युवक ने कैसे बालिका का अपहरण किया?

14. यवन युवक किस प्रकार से बालिका के रोदन को शान्त करना चाहता था?

15. यवन युवक ने भालू को देखकर क्या किया?

16. भालू कैसा था?

10.6 मूलपाठ

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच- विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचाराणाभुपद्रव:।'

तत: स उवाच- 'महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम्। वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनि:। क्व सम्प्रति तीर्थे घण्टानाद:। क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोष:। अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्त्तनादा:, क्वचिद् रुधिरधारा:, क्वचिदग्निदाह:, क्वचिद् गृहनिपात:' इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परित:।

अन्वयार्थ - यह सुनकर क्रोधग्नि की ज्वाला से प्रज्वलित होते हुए से योगिराज बोले- ''विक्रम राज्य में इस प्रकार दुराचारियों का पापमय उपद्रव कैसे?'' तब ये (ब्रह्मचारी के गुरु) बोले-

महात्मन्! अब विक्रम का राज्य कहाँ है? वीर विक्रम को तो भारतभूमि छोड़कर गये हुए सत्रह सौ वर्ष बीत गये। इस समय मन्दिरों में जय-जय की ध्वनि कहाँ? तीर्थो में इस समय घण्टा का नाद कहाँ? मठों में आज वेद घोष कहाँ? आज तो वेद फाड़कर वीथियों (मार्गो) में बिखेरे जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उछालकर आग में झोंका जाता है, पुराणों को पीसकर पानी में फेंका जाता है, भाष्य नष्ट करके भाड़ों में झोंके जाते हैं, ''कहीं पर मन्दिर तोड़े जाते हैं, कही तुलसी के जंगल काटे जाते हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण किया जाता है कहीं रूधिर की धारा, कहीं अग्निदाह है तो कहीं घर गिराये जाते है चारों और यही सुनाई देता है और यही दिखाई देता है।

व्याख्या- ब्रह्मचारीगुरु के वचन सुनकर क्रोध की अग्नि से उद्दीप्त होकर महामुनि ने पूछा कि विक्रमादित्य के शासनकाल में ऐसा दुराचार कैसे हो सकता है। वस्तुतः तो उस समय विक्रमादित्य का शासन नहीं था। विक्रम के राज्यशासन में जब समाधिस्थ हुए थे और आज उठे हो तो सतरह सौ वर्ष व्यतीत हो गए हैं।

अतः ब्रह्मचारीगुरु ने योगिराज को कहा कि इस समय विक्रमादित्य का शासन नहीं है। इस यवन काल में वेद घोष मुखरित भारतभूमि का धर्मीय परिमण्डल लुप्त हो गया। इस समय तो मन्दिरों में जय जय की ध्वनि, तीर्थो पर घण्टानाद, और मठों में वेदघोष लुप्त हो गया। इस समय तो मुसलमान वेदों, स्मृति, पुराणों, भाष्यों और सनातन धर्म के प्रतीको को विनाश कर रहे है। वे मन्दिरों और तुलसी वनों को नष्ट कर रहे है। वे परस्त्रियों और सुवर्ण आदि द्रव्यों का अपहरण करते हैं। सभी दिशाओं में आर्तनाद, शोणित प्रहार, अग्निदाह और भवनविनाश इत्यादि पापकर्म करते हुए यवन दिखाई देते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचारीगुरु द्वारा यवनों के दुराचार का खेदपूर्वक वर्णन किया गया।

व्याकरणविमर्श

कोपज्वालाज्वलितः-कोपस्य ज्वाला कोपज्वाला इति षष्ठीतत्पुरुषः। कोपज्वालया ज्वलितः कोपज्वालाज्वलितः इति तृतीयातत्पुरुषः।

महात्मन्- महान् आत्मा यस्य स महात्मा इति बहुव्रीहिसमास। तस्य सम्बोधने प्रथमैकवचने महात्मन् इति रुपम्।

विक्रमराज्यम्- विक्रमस्य राज्यं विक्रमराज्यमिति षष्ठीतत्पुरुषः।

घण्टानाद :- घण्टायाः नादः घण्टानाद इति षष्ठीतत्पुरुष।

कोष- एतर्हि समप्रतीदानीमधुना साम्प्रंत तथा इत्यमरः।
मठश्छात्रानिलयः इत्यमरः।
क्लीबेऽम्बरीषं भाष्ट्रो ना इत्यमरः।
गृहं गेहोद्वसितं वेश्म सद्य निकेतनम् इत्यमरः।

पाठगतप्रश्न 10.5

17. विक्रम के राज्य को कितने वर्ष हो गये?
18. यवन काल में वेदों की क्या स्थिति है?
19. यवन काल में मन्दिर व तुलसीवन की क्या स्थिति है?
20. यवन काल में स्मृति पुराणों व भाष्यों की क्या स्थिति है?

10.7 मूलपाठ

तदाकर्ण्य दु:खितश्चकितश्च योगिराडुवाच- ''कथमेतत्। ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायात: श्रीमानादित्य-पदलाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायात: श्रीमानदित्य-पदलाञ्छनो वीरविक्रम:। अद्यापि तद्विजयपताका मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयते, अधुनापि तेषां पटहगोमुखादीनां निनाद: कर्णशष्कुर्ली पूरयतीव, तत् कथमद्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि।'' इति।

अन्वयार्थ– योगिराज (ये वचन सुनकर) दुखित और चकित होते हुये बोले- यह कैसे? अभी तो कल ही आदित्य पद विभूषित श्रीमान् वीर विक्रमादित्य पर्वतीय शकों को जीत कर बहुत बड़े जयघोष के साथ अपनी राजधानी (उज्जयिनी) को आये हैं। आज भी उनकी विजयी पताकाएँ मेरे नेत्रों के सामने फहरा सी रही हैं, इस समय भी उनके नगाड़े और तुरही आदि बाजों की ध्वनि मेरे कानों के छिद्र को पूरित-सी कर रही हैं, तो कैसे आज सत्रह सौ वर्ष बीत गये।

व्याख्या:- ब्रह्मचारीगुरु के वचनों को सुनने के बाद दु:खित और विस्मित हुए योगिराज ने कहा कि यह कथन तुम्हारे कथन के साथ हो सकता है। कल ही शक जाति के लोगों का पराजित करके महाजयघोष से वीर विक्रमादित्य अपनी राजधानी उज्जयिनी को आये थे। इस समय भी विक्रमादित्य की विजय ध्वजा योगिराज की आँखों के सामने आभासित हो रही है। इस समय ही विक्रमादित्य के विजयोत्सव का निनाद श्रवणोन्द्रिय में प्रवेश कर रहा है। उसके बाद नहीं पता कि 1700 वर्ष कैसे व्यतीत हो गये।

व्याकरण विमर्श -

दु:खित:- दु:खशब्दाद् इतच्प्रत्यये दु:खित: इति निष्पन्नम्।

आकर्ण्य- आङ्पूर्वकात् कर्णिधातो: ल्यपि आकर्ण्येति रूपम्।

विनिर्जित्य- विपूर्वकात् निर्-पूर्वकाच्च जिधातो: ल्यपि विनिर्जित्येति रूपम्।

श्रीमान्- श्रीरस्यास्तीति विग्रहे श्रीशब्दात् मतुप्प्रत्यये पुंसि सौ श्रीमान् इति रूपम्।

विजयपताका- विजयस्य पताका इतित षष्ठीतत्पुरुष:। अथवा विजयसूचिका पताका इति शाकपर्थिवादिवत्समास:।

समुद्धूयन्ते- सम्पूर्वकात् उत्पूर्वकात् हुधातोः कर्मणि लटि प्रथमपुरुषस्य बहुवचने रूपम्।

कर्णशष्कुलीम्- कर्णस्य शष्कुली कर्णशष्कुली, ताम् इति षष्ठीतत्पुरुषः।

कोष - कलंकांकौ लांछनं च चिह्न लक्ष्म च लक्षणम्। इत्यमरः।
आनकः पटहोऽस्त्री इत्यमरः।

पाठगतप्रश्न 10.6

21. किस को पराजित करके विक्रमादित्य जयघोष से राजधानी आया?

22. विक्रमादित्य का दूसरा नाम क्या है।

10.8 मूलपाठ

ततः सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम्-

''भगवन्! बद्ध-सिद्धासनैर्निरुद्ध-निःश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैः विजित-दशेन्द्रियैरनाहत-नाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्र-मण्डलं भित्त्वा, तेजःपुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युअयैरानन्दमात्र-स्वरूपैर्ध्यानावस्तितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतासि नदीनाम्, न सा संस्था नगराणाम्, न सा आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिकं कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति।''

अन्वयार्थः- योगिराज के ये वचन सुनकर सभी के स्तब्ध और चकित हो जाने पर ब्रह्मचारीगुरु ने प्रणाम करके कहा-

''भगवन्! सिद्धासन बाँधकर, साँस रोककर, कुण्डलिनी जगाकर, दशों इन्द्रियों को जीतकर, अनाहत नाद के तन्तु का अवलम्बन करके आज्ञाचक्र को ध्यान का लक्ष्य बना करके, चन्द्र-मण्डल का भेदन करके, तेजः- पुञ्ज (चन्द्र-चक्रवर्ती महाप्रकाश) का तिरस्कार करके, सहस्राचक्र के अन्दर प्रवेश करके, परमात्मा को साक्षात्कार करके उसी में रमण करने वाले, मृत्यु को जीतने वाले आनन्दमात्र स्वरुप वाले तथा ध्यान में स्थित रहने वाले आप जैसे (महात्माओं) के द्वारा समय का वेग नहीं जाना जाता है। इस समय आप ने जिन पुरुषों को देखा था, अब उनका पचासवाँ (पचासवीं पीढ़ी का) वह भी नहीं दिखाई पड़ता है। आज नदियों की वे धारायें नहीं हैं, नगरों की वह स्थिति नहीं है, पर्वतों की वह आकृति नहीं है, जंगलों की वह सान्द्रता (सघनता) नहीं है और अधिक क्या कहें? भारतवर्ष इस समय दूसरे ही प्रकार का हो गया है।

टिप्पणी

व्याख्या- तब सभी लोग मौन एवं विस्मित थे। वह योगिवर आसन विशेष में बैठकर, प्राणायामादि से श्वासनिरोध करके, कुण्डलिनी को जगाकर, दश इन्द्रियों को जीतकर, अनहद नाद रूपी तन्तु का आश्रय लेकर, आज्ञा चक्र का संस्पर्श करके, चन्द्रमण्डल को भेदकर, तेजपुञ्ज का तिरस्कार करके, सहस्रचक्र में प्रवेश करके, परब्रह्म परमात्मा का अनुभव करके, उसमें ही रमण करते हुए, अमर आनन्दस्वरुप वाले ध्यान में स्थित आप योगिजनों को काल की गति का पता नहीं चलता, यह ब्रह्मचारीगुरु ने नमस्कार करके कहा।

उस समय में योगिराज ने जैसे लोगों को देखा था उस सज्जनों के आधे भाग में भी इस समय नहीं देखे जाते हैं। इस समय योगिराज ने नदियों का प्रवाह नहीं देखा, जनपदों की स्थिति पूर्व के समान नहीं, पर्वतों के आकार भी पूर्ववत् नहीं हैं और वनों की सघनता पूर्णवत नहीं देखी। इस समय भारत वर्ष विक्रमादित्य के शासनकाल से भिन्न ही है।

ब्रह्मचारी की वाणी का आश्रय लेकर कवि ने योगपद्धति का निर्बाध रुप से वर्णन सम्पादित किया। कुण्डलिनी ही गुणत्रय समन्वित शिवशक्ति आत्मिका नादशक्ति है। हठयोग से नाद में स्थित होकर योगी निष्काम दीप के समान निश्चित बैठकर परमात्मा का साक्षात्कार करता है। तब योगी बाह्य जगत की घटनाओं को जानने में असमर्थ होता है। खेचरी मुद्रादि आसन में स्थित योगी समाधिस्थ होते हैं। योगिराज भी उसी प्रकार समाहित होते हुए काल गति को नहीं जान पाते। विक्रमादित्य के बाद भयंकर यवन लोगों की निष्ठुरता से भारत माता की दुर्गति हो गयी। यह ब्रह्मचारी का आशय है।

व्याकरणविमर्श :

बद्धसिद्धासनैः - सिद्धासनमिति कर्मधरयः। बद्धं सिद्धासनं यैस्ते बद्धसिद्धासनाः इति बहुव्रीहिः, तैः बद्धसिद्धासनैः।

अविगणय्य- नञ्-वि-संघात-पूर्वकाद् गणेर्णिचि ल्यपि अविगणय्य इति रूपम्।

निरुद्धनिःश्वासैः- निरुद्धाः निश्वासाः यैः ते निरुद्धनिःश्वासाः इति बहुव्रीहिः।

प्रबोधितकुण्डुलिनीकैः- प्रबोधिता कुण्डलिनी यैः ते प्रबोधितकण्डुलिनीकाः, तैः इति बहुव्रीहिः।

विजितदशेन्द्रियैः- विजितानि दशेन्द्रियाणि यैः ते विजितदशेन्द्रियाः, तैः इति बहुव्रीहिः।

अनाहतनादतन्तुम्- अनाहतश्चासौ नादश्चेति अनाहतनादः इति कर्मधरयः। तस्य तन्तुमिति षष्ठीतत्पुरुषः।

कोष - कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः इत्यमरः।
अद्रिगोत्रगिरिग्रावचलशैलशिलोच्चयाः इत्यमरः।

पाठगतप्रश्न 10.7

23. योगिराज किसका प्रबोध करते हैं?

24. योगिराज ने क्या जीता है?

25. योगिराज समाधि में किसका साक्षात्कार करते हैं?

26. योगिराज कहां रमण करते हैं?

27. योगिराज की दृष्टि क्या वर्तकाल में नहीं थी?

10.9 मूलपाठ

इदमाकर्ण्य किञ्चित् स्मित्वेव परितोऽवलोक्य व योगी जगाद– ''सत्यं न लक्षितो मया समय-वेगः। यौधिष्ठिरे समये कलितसमाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रम-समये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् साङ्ग्प्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति।''

अन्वयार्थ– यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुये से, चारों और देखकर योगिराज बोले– 'सत्य है, मैंने समय वेग को नहीं देखा। युधिष्ठिर के समय में समाधि लगाकर विक्रमादित्य के समय में उठा और पुनः विक्रमादित्य के समय में समाधि लगाकर दुराचारमय समय में उठा हूँ। मैं पुनः जाकर समाधि ही लगाऊँगा, किन्तु तब तक संक्षेप में बताइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है।

व्याख्या– योगिराज समाधि के आश्रय में थे अतः उन्होंने समय के वेग का ज्ञान नहीं है। उन्होंने योगिराज युधिष्ठिर के राज्यशासन काल मे समाधि प्राप्त की थी। उसके बाद वह विक्रमादित्य के समय में समाधि से उठे थे और फिर विक्रम के काल में समाधि में स्थित हुए और अब दुराचारमय यवनों के शासनकाल में उठे है। वह योगी पुनःगुफा में प्रवेश करके समाधि मग्न हो जायेंगे किन्तु वह भारतवर्ष की इस समय की स्थिति को जानना चाहते है। यह योगिराज ने ब्रह्मचारीगुरु को कहा।

व्याकरणविमर्श –

- **कलितसमाधिः** – कलितः समाधिः येन स कलितसमाधिः इति बहुव्रीहिः।
- **यौधिष्ठिरे** – युधिष्ठिरस्य अयम् इति युधिष्ठिरशब्दाद् अणप्रत्ययः यौधिष्ठरः, तस्मिन् यौधिष्ठिरे।
- **समुत्थितः** – सम्पूर्वाद् उत्पूर्वात् स्थाधातोः क्तप्रत्यये सौ रूपम्।
- **कलयिष्यामि**– कल्धातोः णिचि लृटि प्रथमैकवचने इदं रूपम्।

कोष– समन्ततस्तु परितः सर्वतों विष्वगित्यपिः इत्यमरः।

सत्यं तथ्यमृतं सम्यगमूनि त्रिषु तद्वति इत्यमरः।

टिप्पणी

पाठगतप्रश्न-10.8

28. योगिराज विक्रम से पूर्व किसके शासक मे समाधि मग्न हुए?
29. योगिराज कब पुन समाधि में गये और भवनकाल में उठे?
30. योगिराज समाधि में प्रवेश करने से पूर्व क्या जानना चाहते है?

पाठसार

जब योगिराज के साथ वार्तालाप के आरम्भकाल में कुटीर से यवनभय त्रस्त बालिका की सकरुण रोदन की आवाज आयी तब कौन रो रहा है। इत्यादि योगिराज ने पूछा। तब ब्रह्मचारीगुरु ने योगिराज के लिए बालिकावृतान्त का निवेदन किया।

जब ब्रह्मचारीगुरु सांयकालीन सन्ध्योपसना समाप्त करके दर्भ के आसन पर बैठे, छात्रों से घिरे हुए उपदेश के लिए बैठे। तब ब्रह्मचारी गुरु ने अस्फुटवर्ण, काँपती हुई, निश्वास से चीत्कार मात्र दीनतायुक्त क्रन्दन को दूर से सुना। उसके बाद क्रन्दन के हेतु को जानने के लिए छात्रों को आदेश दिया। छात्रों में एक छात्र यवन भयव्याकुल असहाय क्रन्दनरत, एक कन्या को गोद में लेकर आया। वह कन्या सन्ताप से दीर्घ नि:श्वास वाली, व्याध्र आक्रांता हरिणी के समान, अश्रुधरा से स्नान वाली, कम्पायमान थी अनेक प्रयास से भी उसके सहचर या सहचारी का पता नहीं लगा। उसे क्रन्दन रोता देखकर सभी आश्रमवासी भी अश्रुपात करने लगे।

बहुत अनुरोध से उस बालिका ने अल्प दुग्ध पिया। दुग्ध पीने के बाद गुरु ने उससे पूछा। उसने कहा कि वह समीपवर्ती एक ग्राम के ब्राह्मण की कन्या है। माता के साथ नदीतट पर घूमते समय एक यवन बालक उसको माता से बलपूर्वक अपहरण करके वनमार्ग में ले गया। अचानक मार्ग में एक भालू को देखकर वह पवन युवक शालमली वृक्ष पर चढ़ गया। तब बालिका ने इधर-उधर भटककर तपोवन के सान्निध्य को प्राप्त किया। रोती हुए बालिका ने अपना वृतान्त सुनाया।

ब्रह्मचारीगुरु के वचनों को सुनकर क्रोधावितप्त मुनिवर ने विक्रम शासन में ऐसा दुराचार कैसे यह पूछा। तब ब्रह्मचारीगुरु ने योगिराज को बताया कि इस समय विक्रम का शासन नहीं है। इस यवन काल में वेद घोष मुखरित भारतभूमि का धर्मीय परिमण्डल समाप्त हो गया। इस समय मन्दिरो में जय जय नाद, तीर्थ स्थल पर घण्टानाद, मठो मे वेद घोष लुप्त हो गये। इस समय यवनों द्वारा स्मृति शास्त्र, पुराण, भाष्य आदि को नष्ट कर दिया। इस प्रकार ब्रह्मचारीगुरु ने खेदपूर्वक यवनो के दुराचार का वर्णन किया।

वस्तुत योगिराज विक्रमादित्य ने शकविजय काल से समाधिस्थ हुए थे। अत ज्ञात नहीं है कि 1700 वर्ष व्यतीत हो गये है। तब सभी लोग मौन में स्थित एवं विस्मित थे। योगिराज को आसनविशेष में बैठकर, प्राणायामादि से श्वास रोककर, कुण्डलिनी को जगाकर, दश इन्द्रियों को जीतकर ब्रह्मात्मा के आश्रित होकर, चन्द्र मण्डल को तोड़कर, तेज पुंज का तिरस्कार

करके सहस्रधारचक्र में प्रवेश करके परब्रह्म का अनुभव करके उससे रमण करते हुए अमर और आनन्दस्वरुप ब्रह्म में ध्यानमग्न होने से उन्हें कालवेग का ज्ञान नहीं हुआ। ब्रह्मचारीगुरु ने नमस्कार करके कहा कि इस समय भारतवर्ष मे विक्रम से भिन्न काल है।

योगिराज युधिष्ठिर के समय समाधिस्थ होकर विक्रम के समय उठे, पुन विक्रम के समय समाधिस्थ हुए और अब दुराचारी यवनकाल में उठे है। वह योगी पुन: समाधि में प्रवेश करेंगे किन्तु उससे पूर्ण भारत की दशा को सुनना चाहते है। इस प्रकार पाठ का सार प्रस्तुत है।

आपने क्या सीखा

- बालिका प्राप्ति वृतान्त उसके रोदन, अपहरण एवं यवनों के दुराचार को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. ब्रह्मचारीगुरु के मुख से बालिका वृन्तान्त का वर्णन कीजिए।

2. 'भगवन्! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि परित: समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दाविव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-नि:श्वासम् श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्,, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविहं क्रन्दनमश्रौषम्। की व्याख्या कीजिए।

3. अथ 'कन्यके! मा भैषी:, पुत्रि! त्वां मातु: समीपे प्रापयिष्याम:, दुहित:! खेदं मा वह, भगवति! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पय:, एते तव भ्रातर:, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्याम:, मा स्म रोदनै: प्राणान् संशयपदवीभारोपय:, मा स्म कोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षी: इति सहस्रध बोधनेने कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, 'बालिके! कथय क्व ते पितरौ। कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता। किं ते कष्टम्। कथमरोदी:। किं वाञ्छसि। किं कुर्म:। इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसत: कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति। की व्याख्या कीजिए।

4. तत: स उवाच- 'महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम्। वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनि:। क्व सम्प्रति तीर्थे घण्टानाद:। क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोष:। अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्त्तनादा:, क्वचिद् रुधिरधरा:,

क्वचिदग्रिदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः' इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः। की व्याख्या कीजिए।

5. योगिराज की समाधि का वर्णन कीजिए।

6. इदमाकर्ण्य किञ्चित् स्मित्वेव परितोऽवलोक्य व योगी जगाद- ''सत्यं न लक्षितो मया समय-वेगः। यौधिष्ठिरे समये कलितसमाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रम-समये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् सांक्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति।'' की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. बालिका को सान्त्वना के लिए ब्रह्मचारीगुरु ने श्यामवटु को आदेश दिया।
2. यामिनिरुप की कामिनी के कपालबिन्दु के समान।
3. आकाश में ज्योत्सना व्याज से सुधाधारा के समान बरस रही थी।
4. ब्रह्मचारीगुरु ने अस्फुटवर्ण, कांपती निश्वास चीत्कारमात्र दीनतायुक्त क्रन्दन को सुना।
5. कम्पमानो निःश्वासो यस्मिन्तत् कम्पमानानिः निश्वासम् इति-बहुवीहि।

10.2

6. यवनों के भय से व्याकुल असहाय क्रन्दन करती हुई कन्या को गोद ने उठाकर छात्र लाया।
7. रोती हुई बालिका को देखकर आश्रमवासी आँसुओं को नहीं रोक पाये।
8. कुन्दानां कोरकाणि कुन्दकोरकाणि इति षष्ठीतत्पुरुषः। कुन्दकोरकाणाम् अग्राणि कुन्दकोरकाग्रणि इति षष्ठीतत्पुरुषः। कुन्दकोरकाग्राणि इव दन्ताः यस्याः सा कुन्दकोरकाग्रदती, ताम् इति बहुव्रीहिः।

10.3

9. अनेक बार कहने पर बालिका ने थोड़ा सा दुग्ध पिया।
10. समीपवर्ती ग्राम के ब्राह्मण की पुत्री थी।
11. वाचः पाटवं वाक्पाटवम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। न परिकलितम् अपरिकलितम् इति नञ्समासः। अपरिकलितं वाक्पाटवं यस्याः सा अपरिकलितवाक्पाटवा इति बहुव्रीहिः।

12. वचनानां विन्यासः वचनविन्यासः इति षष्ठीतत्पुरुषः। विशिथिलः वचनविन्यासः यस्याः सा विशिथिलवचनविन्यासा इति बहुव्रीहिः।

10.4

13. नदी तट पर माता के साथ घूमती बालिका को बलपूर्वक अपहरण किया।
14. यवन युवक ने छुरिका दिखाकर रोने से रोका।
15. यवन युवक भालू को देखकर शल्मली वृक्ष पर चढ़ गया।
16. भालू काले कम्बल के समान था।

10.5

17. विक्रम का भारतवर्ष को त्यागकर गये 1700 वर्ष हो गये।
18. यवनकाल में वेदों को फाड़कर मार्ग पर फेंक दिया।
19. यवनकाल में मन्दिरों को तोड़ दिया और तुलसीवन को उखाड़ दिया।
20. यवनकाल में स्मृतिशास्त्र को अग्नि में जलाया, पुराणों का चूर्ण करके जल में फेंक दिया और भाष्यों को भाड़ में भून दिया।

10.6

21. शकों को पराजित करके जयघोष से विक्रम राजधानी आया।
22. विक्रमादित्य का श्रीवत्स नाम था।

10.7

23. योगिराज कुण्डलिनी का प्रबोध करते हैं।
24. योगिराज ने दश इन्द्रियों को जीता है।
25. योगिराज समाधि में परब्रह्म का साक्षात्कार करते है।
26. योगिराज परब्रह्म में रमण करते है।
27. सत्पुरुष, नदियों की धारा, लोगों की पुरानी स्थिति, पर्वतों का पूर्ववत् आकार और वनों की सघनता यवन काल में नहीं थी।

10.8

28. योगिराज विक्रम के शासन से पूर्व युधिष्ठिर के काल में समाधि मग्न हुए।
29. योगिराज ने विक्रमशासन काल में पुन समाधि गत हुए और यवनकाल में उठे।
30. योगिराज समाधि में प्रवेश से पूर्व भारतवर्ष की वर्तमान दशा जानना चाहते है।

टिप्पणी

11

शिवराजविजय-यवन दुराचार

इस पाठ में योगिराज ब्रह्मचारीगुरू के मुख से यवन दुराचार के विषय में सुनते हैं। प्रारम्भ में कालकलाप, महामद का भारत आक्रमण महामद का सोमतीर्थ ध्वंस, महामद का राज्यध्वंस, यवन राज्य आरम्भ, दक्षिण प्रदेश में सनातन धर्म का रक्षक शिववीर, इत्यादि का इस पाठ में वर्णन है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- यवनों के दुराचार को जान पाने में;
- कालकलाप को जान पाने में;
- महामद के भारताक्रमण को समझ पाने में;
- महामद के राज्यध्वंस को जान पाने में;
- भारत में यवनों के राज्य आरम्भ को जान पाने में;
- दक्षिण प्रदेश में शिववीर के विषय में जान पाने में और;
- पाठ्यांश पदों के व्याकरण और पर्याय शब्दों को जान पाने में।

11.1 मूलपाठ

तत् संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-सआत-शोको हृदयस्थ-प्रसादसम्भारोद्गिरण-

श्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण ''मा स्म धर्मर्ध्वसमन-घोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय'' इति कण्ठंरुन्ध तो वाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निःश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां परितोऽवलोक्य ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत-

'भगवन्! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुण-दानवोन्दन्तोदीरणैर्न दीर्य्यते, लोहसारमयं हृदयम्, यत् संस्मृत्य यावनान् परस्सहस्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यपि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्यवंश्यांश्चाऽभिभन्यामहे'।

उपक्रमममुमाकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अञ्चितरोमकञ्जुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानं च स्वरं सकलपापमयः सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः' इति, अतएव तत्स्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्जलापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि इति च विचिन्त्य-

'मुने! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयःपूर-परितान्यकूपारतलानि मरूकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक- गण्डक-फेरु-शश-सहस्रव्याप्तान्यरण्यानि जनपदीकरोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य- श्रृङ्गटक- चत्वरोद्यनतडागगोहमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतवर्षे यायजूकैः राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतप-हिमसहानि तपांसि अतापिषत। सम्प्रति म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्य्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्तेः मन्दिराणि मन्दरीक्रियन्ते, सत्यः पात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्य विधुरयसि? शन्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराजवृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते में हृदयम्' इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

अथ स मुनिः- ''धैर्येण प्रसादेन प्रतापेन तेजसा वीर्येण विक्रमेण श्रिया सौख्येन धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारम्परिक-विरोध- विशिथिलीकृतस्नेहबन्ध नेषु राजसु, भामिनी-भ्रुभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव- पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान-वितानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु, ''इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुवेरस्त्वम् ''इति वर्णनामात्रसक्तेषु बुधजनेषु, कश्चन गजिनीस्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारते वर्षे। स च प्रजा विलुण्ठय मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य, परश्शतन् जनांश्च दासीकृत्य शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्।

एवं स ज्ञातास्वादः पौनःपुन्येन द्वादशवारमागत्य भारतमलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरप्रदेशचूडायितं सोमनाथ-तीर्थमपि धूलीचकार। अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते, परं तत्स्मये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महार्ह-वैदुर्य-पद्मराग-माणिक्य-मुक्ताफलादिजटितानि कपाटानि स्तम्भन्, गृहावग्रहणीः, भित्तीः वलभीः विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय शतद्वयमणसुवर्ण- श्रृङ्कलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचिक्य-चकितीकृतावलोचक-लोचन-निचयां महाघण्टां प्रसह्य सङ्गृह्य महादेवमूर्ताविपि गदामुदतूतुलत्।

अथ ''वीर, गृहीतमखिलं वित्तम्, पराजिता आर्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, सञ्चतममलं यशः, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मान् ताडय, मारय, छिनिध, भिन्धि, पातय, किन्तु त्यजेमाम् अकिञ्चित्करीं जडां महादेवप्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गृहाणोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्,

टिप्पणी

मैनां भगवन्मूर्तिं स्प्राक्षीः'' इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु नाहं मूर्तिविक्रकीणामि, किन्तु भिनद्मि इति सङ्गर्ज्य जनताजा हाहाकार-कलकलमाकर्णयन् घोरगदया मर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधनीं प्राविशत्।

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (1097) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टञ्च प्राणांस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीननामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं ध मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वा, प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तदुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गयाऽनीकिन्या भारतवर्षं प्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तरद्वादशतमितेखब्दे (1250) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणमाकल-य्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डल मकण्टकमकीटकिट्ट महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीगचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि।

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राजमकार्षुः दानवा एव च दीनानदीदलन्। अभूत् केवलम् अकबरशाह-नामा यद्यपि गूढशत्रुर्भारतवर्षस्य तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्रो मूर्तिमदिव कलियुगं गृहीतविग्रह इव चाधर्मः आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिलीवल्ल्भतां कलङ्कयति। अस्यैव पताका केकयेषु, मत्स्येषु, मगधेषु, अङ्गेषु बङ्गेषु कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।

दक्षिणदेशो हि पर्वतबहुलोऽस्ति अरण्यानीसङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्रकेसरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिणदेशशासकत्वेन 'शास्तिखान'-नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन-शाणित-पिपासाऽऽकुलकृपाणः, वीरता-सीमान्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सिन्दूर-दान- देदीप्यमान-दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणां, भूषणं भटानां, निधिर्नीतीनाम् कुलभवनं कौशलानां पारावारः परमोत्साहनां कश्चन प्रातःस्मरणीयः स्वधर्माऽऽकुलकृपाणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त- सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर- दान-देदीप्यमान-दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणां, भूषणं भटानां, निधिर्नीतीनाम् कुलभवनं कौशलानां परावारः परमोत्साहानां कश्चन प्रातःस्मरणीयः स्वध र्माऽऽग्रहग्रहग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन्पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धवैरम्। 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनां, सतां त्रैवर्णिकस्य, आर्यकुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च आशा-सन्तान-वितानस्यायमेवऽऽश्रयः। इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य। किमधिकम् विनिवेदयामो योगबलावगतसकलगोप्यतमवृत्तान्तेषु योगिराजेषु इति कथयित्वा विरराम।

11.2 मूलपाठ

तत् संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-सआत-शोको हृदयस्थ-प्रसादसम्भारोद्गिरण-

श्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण ''मा स्म धर्मध्वंसमन-घोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय'' इति कण्ठरुन्ध तो वाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निःश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां परितोऽवलोक्य ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत-

'भगवन्! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुण-दानवोन्दन्तोदीरणैर्न दीर्य्यते, लोहसारमयं हृदयम्, यत् संस्मृत्य यावनान् परस्सहस्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यपि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आय्र्यवंश्यांश्चाऽभिभन्यामहे'।

अन्वयार्थ- यह सुनकर, भारतवर्ष की दशा के स्मरण से उत्पन्न हुये शोक वाले, मानो हृदय में स्थित प्रसन्नता को व्यक्त करने के श्रम से अति मन्द स्वर से ''धर्म-विध्वंस की कथाओं से योगिराज के धैर्य को मत डिगाओ'', इस प्रकार (कहते हुये) गले को रुँधने वाले आँसुओं की चिन्ता न करके, नेत्रों को पोंछकर, गरम साँस लेकर, कातर हुये समान नेत्रों से चारों ओर देखकर ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना आरम्भ किया- ''भगवन्! यह (मेरी) जिह्वा वज से बनी है, जो कि दारुण (भीषण) दानवों (यवनों) के वृतान्त के वर्णन से विदीर्ण (फट) नहीं हो जाती, हृदय लोहे का बना हुआ है, जो यवनों के हजारों दुराचारों का स्मरण करके टुकडे-टुकडे नहीं हो जाता और जलकर राख नहीं हो जाता। हम सबको धिक्कार है, जो आज भी जी रहे हैं, साँस ले रहे हैं, विचरण कर रहे हैं और अपने को आर्यो का वंशज मान रहे हैं''।

व्याख्याः- जब योगिराज ने भारतवर्ष की इस समय की स्थिति को जानने के लिए ब्रह्मचारीगुरु से पूछा। तब ब्रह्मचारीगुरु ने भारतवर्ष की यवनकृत अवस्था के वर्णन करने में अत्यन्त दुःख का अनुभव किया। अवस्था वर्णन काल में ब्रह्मचारीगुरु के हृदय में भारतीय की दशा का स्मरण करने से करुणा हुई। उसके मत में तो योगिराज को भी यह वर्णन धैर्य च्युत का कारण होगा। उसका भारतदशा वर्णन में कंठ आँसुओं से अवरुद्ध हो गया। फिर भी वह किसी प्रकार आँखों से आंसु गिराये बिना, आंखों को साफ करके दीर्घश्वास लिया। उस गुरु ब्रह्मचारी ने सकरुणसदृश्य आँखों से सभी ओर देखकर कहना आरम्भ किया-

ब्रह्मचारीगुरु ने यहाँ सनातन धर्म अवलम्बी आर्यो के विषय में खेद प्रस्तुत किया। उसने कहा कि उसकी जिह्वा वज्र से बनी है। अन्यथा तो भारतीयों पर दुष्ट यवनों के अत्याचार के वर्णन से वह जिह्वा कट जाती। इसी प्रकार आर्यो का हृदय भी वज्र के समान है। जो यवनों के अत्याचार को स्मरण करके भी टूटा नहीं और न ही वह हृदय अग्नि से जला। इस प्रकार आश्रमवासी भी निन्दित हैं क्योंकि इस यवन अत्याचार के समय में भी आर्यवंशी हम साभिमान जीवनधरण, श्वासधरण और संचरण कर रहे है।

व्याकरण विमर्श -

संश्रुत्य-सम्पूर्वात् श्रृणोतेः ''समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'' इति क्त्वाप्रात्यये ततः ''समासेखनञ्पूर्वे क्त्वोल्यप्'' इति ल्यपि रूपम्।

भारतवर्षीयदशासंस्मरणसंजातशोकः- भारतवर्षस्येति विग्रहे भारतवर्षशब्दात् छप्रत्यये छस्य ''आयनेयीनीनियय: फढखछघां प्रत्ययादीनाम्'' इति ईयादेशे भारतवर्षीयेति सिध्यति। भारतवर्षीया चासौ दशा चेति भारतवर्षीयदशा इति कर्मधारयसमासः। भारतवर्षीयदशायाः संस्मरणं भारतवर्षीयदशासंस्मरणमिति षष्ठीतत्पुरुषः। भारतवर्षीयदशासंस्मरणेन संजातः

भारतवर्षीयदशासंस्मरणसंजात: इति तृतीयातत्पुरुष:। भारतवर्षीयदशासंस्मरणसंजात: शोको यस्य स भारतवर्षीयदशासंस्मरणसंजातशोक: इति बहुव्रीहिसमास:।

हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेण–हृदये तिष्ठतीति विग्रहे हृदयोपपदे स्थाधातो: कप्रत्यये हृदयस्थशब्दो निष्पन्न:। हृदयस्थश्चासौ प्रसादसम्भारश्चेति हृदयस्थप्रसादसम्भार: इति कर्मधारयसमास:। तस्य उदिगरणं हृदयस्थप्रसाद-सम्भारोद्गिरणमिति षष्ठीतत्पुरुष:। तस्मिन् श्रम: हृदयस्थप्रसाद-सम्भारोद्गिरणश्रम:, तेन हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेण इति सप्तमीतत्पुरुष:।

अवधीरय- अवपूर्वाद् धृधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने सिपि अवधीरय इति रूपम्।

रुन्धत:- रुध्धातो: शतृप्रत्यये पुंसि शसि रूपम्।

अविगणय्य- विपूर्वात् गणधातोर्णिचि ल्यपि विगणय्य इति रूपम्। न विगणय्य अविगणय्य इति।

प्रमृज्य- प्रपूर्वान्मृजे: क्त्वो ल्यपि प्रमृज्य इति रूपम्।

अवलोक्य- अवपूर्वात् लोकिधातो: क्तवो ल्यपि अवलोक्य।

प्रवक्तुम्- प्रपूर्वाद् वक्ते: तुमुनि प्रवक्तुम् इति रूपम्।

आरभत- आङ्पूर्वाद् रभते: लङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्।

दम्भोलिघटिता- दम्भोलिना घटिता दम्भोलिघटिता इति तृतीयातत्पुरुष:।

दारुणदानवोदन्तोदीरणै:- दारुण: चामी दानवाश्च दारुणदानवा: इति कर्मधारयसमास:। दारुणदानवानाम् उदन्त: दारुणदानवोदन्त: इति षष्ठीतत्पुरुष:। दारुणदानवोदन्तस्य उदीरणानि, तै: दारुणदानवदन्तोदीरणै: इति षष्ठीतत्पुरुष:।

भस्मसात:- भस्मशब्दाद् विभाषा साति कार्त्स्न्ये इति सूत्रेण सातिप्रत्ययेन भस्मासात् इति निष्पन्नम्।

धिगस्मान् इत्यत्र धिक्शब्दयोगा द्वितीया- उभसर्वतसो: कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।। इति वार्तिकेन।

कोष - "पुरोगम: पुरोगामी मन्दगामी तु मन्थर:" इत्यमर:।
"चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मन:" इत्यमर:।
रसज्ञा रसना जिह्वा" इत्यमर:।
"वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्त: स्यात्" इत्यमर:।

पाठगत प्रश्न 11.1

1. आर्यों की जिह्वा कैसी है?
2. आर्यों का हृदय कैसा है?
3. दम्भोलिघटिता में समास बताएँ।

11.3 मूलपाठ

उपक्रमममुमाकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अंचितरोमकञ्जुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानं च स्वरं सकलपापमयः सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः' इति, अतएव तत्स्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्जलापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि इति च विचिन्त्य-

'मुने! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयःपूर-परितान्यकूपारतलानि मरूकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्डक-फेरु-शश-सहस्रव्याप्तान्यरण्यानि जनपदीकरोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य-श्रृङ्टक-चत्वरोद्यनतडागगोहमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतवर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतप-हिमसहानि तपांसि अतापिषत। सम्प्रति म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्तेः मन्दिराणि मन्दरीक्रियन्ते, सत्यः पात्यन्ते, सन्तृच सन्ताप्यन्ते। सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि? शन्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराजवृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते मे हृदयम्' इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

अन्वयार्थ- इस उपक्रम (भूमिका) को सुनकर और मुनि के हल्दी के रंग से रंगे हुए के समान (पीले) उदास चेहरे, आंसू बहाते हुए नयनों, रोमांचित शरीर, कम्पमान औष्ठ तथा लड़खड़ाते हुए स्वर को देखकर (योगीराज) जान गये कि यह सम्पूर्ण वृत्तान्त समस्त (अतिशय) अनर्थो, वंचनाओं, पापों तथा उपद्रवों से भरा है। इसलिए उसके स्मरण मात्र से इनका हृदय खिन्न हो रहा है, अतः मैं इनको व्यर्थ में मलिन नहीं करूंगा और न ही दुःखी करूंगा यह सोचकर -

(योगिराज ने कहना प्रारम्भ किया) ''मुने! सम्पूर्ण कलाओं के निर्माता तथा सभी के संहारक भगवान् महाकाल अत्यन्त विलक्षण हैं। वे ही कभी जलप्रवाह से पूर्ण समुद्रतल को मरूभूमि बना देते हैं। सहस्रों सिंहो, बाघों, भालुओं गैड़ों, श्रृगालों तथा खरगोशों से भरे हुए जंगल को नगर बना देते हैं तथा मन्दिरों, महलों, अट्टालिकाओं, चौराहों, उद्यानों, तालाबों तथा गौशालाओं से युक्त नगरों को जंगल बना देते है। देखिये, कभी-कभी भारतवर्ष में याज्ञिकों ने राजसूयादि यज्ञ किये थे, कभी यहीं वर्षा, आँधी धूप, सर्दी (हिमपात) आदि को सहन करके तपस्यायें की गई थीं। इस समय तो यवनों के द्वारा गायें मारी जा रही हैं, वेद की पुस्तकें फाड़ी जा रही हैं, स्मृतियाँ मर्दी जा रही हैं, मन्दिर घुडसाल बनाये जा रहे हैं सती स्त्रियाँ पतिता बनाई जा रही है और सन्तों को सन्तप्त किया जा रहा है। यह सब कुछ उसी महाकाल का प्रभाव है (तब) आप धीरध्रुरी होते हुए भी क्यों धैर्य खो रहे है? शान्त होकर अतिसंक्षेप से यवन राज्य के वृत्तान्त को कहिए। न जाने क्यों, अनावश्यक होते हुए भी मेरा मन (हृदय) इसे सुनने की इच्छा कर रहा है'' यह कहकर (योगिराज) शान्त हो गये।

व्याख्या- उपक्रम को सुनकर देखकर ब्रह्मचारियों के आचार्य का मुख लाल, नेत्र अश्रुयुक्त, शरीर रोमांचित, कम्पायमान औष्ठ, और अवरूद्ध (कंठ) को देखकर महामुनि ने यवनात्याचार का वृतान्त अत्यन्त दुःखदायक है यह जाना। उसके बाद मुनिवर ने ब्रह्मचारियों के गुरु के प्रति कहा, वस्तुत काल की गति अनुपमेय है। काल के चक्र से सम्पूर्ण संसार नियन्त्रित होता

है। सब कुछ वस्तुत: काल के अधीन है काल की दो प्रकार की मूर्ति है सृजनात्मिका और ध्वंसात्मिका। जैसे ही वह काल इस प्रथ्वी में रम्यता को धारण करता है वैसे ही वह निर्दय सब को धूलिसात करता है। वह क्षणभर से जंगलों को जनपद बना देता है। और अगले ही पल में नगरों को जंगल बना देता है। पहले काल के प्रसाद से भारत वर्ष में वेद स्मृति पुराण आदि के अनुशीलन परम्परा थी। अब काल के वशीभूत वह सब नष्ट हो गया। तट प्रताप क समान काल की कृति क्षणभंगुर होती है। अतएव कालवंशीभूत होने से सनातन धर्म को पीडा होती है। यह सोचकर धर्म धारण करना चाहिए। क्योंकि चक्र के समान दु:ख और सुख होते हैं।

व्याकरणविमर्श-

विमनायमानम्- विगतं मन: यस्य स विमना: इति बहुव्रीहि:। विमना:। इव आचरतीति विमन:शब्दात् क्यचि शनचि पुंसि अमि रूपम्।

हरिद्राद्रवक्षालितम्- हरिद्राया: द्रव: हरिद्रादव: इति षष्ठीतत्पुरुष:। तेन शालितं हरिद्राद्रवक्षालितम् इति तृतीयातत्पुरुष:।

निपतद्वारिबिन्दूनी- निपतन्तो वारिबिन्दवो याभ्यां ते निपतद्वारि-बिन्दूनी इति बहुव्रीहि:। वारिणां बिन्दव: वारिबिन्दव: इति षष्ठीतत्पुरुष:।

अञ्चितरोमकंचुकम्- रोमाणां कञ्चुका: रोमकंचुका: इति षष्ठीतत्पुरुष:। अचिता: रोमकंचुका: यत्र तदिति बहुव्रीहि:।

जिग्लापयिषामि- ग्लै हर्षक्षये इति धातो: पुकि णिचि सनि लटिमिपि रूपम्।

चिखदिषामि- खिदेर्णिचि सनि मिपि रूपम्।

सकलकलाकलापकलन- सकला या कला: सकलकला: इति कर्मधारय:। सकलकलानां कलाप: सकलकलाकलाप: इति षष्ठीतत्पुरुष:। तस्य कलन: सकलकलाकलापकलन: इति षष्ठीतत्पुरुष:।

सकलकलन- सकलानां कलन: इति षष्ठीतत्पुरुष:।

पय:पूरपूरितानि- पयसां पूर: पय:पूर: इति षष्ठीतत्पुरुष:। तेन पूरितानि पय: पूनितानि इति तृतीयातत्पुरुष:।

काननीकरोति- अकाननि काननानि करोति इति काननशब्दाद् अभूततद्भावे च्वौ, कृधातोर्लटि तिपि इति रूपम्।

कोष - ''कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपि'' इत्यमर:।
कालो मृत्यौ महाकाले'' इत्यमर:।
''शृङ्टकचतुष्पथे'' इत्यमर:।
'इज्याशीलो यायजूको यज्वा तु विधिगेष्टवान्'' इत्यमर:।

पाठगतप्रश्न 11.2

4. यवनदुराचार वृतान्त कैसा था?
5. काल कैसा है?
6. काल कैसे अरण्य को जनपद बनाता है?
7. काल कैसे नगरों को अरण्य बनाता है?

11.4 मूलपाठ

अथ स मुनि- 'धैर्येण प्रसादेन प्रतापेन तेजसा वीर्येण विक्रमेण श्रिया सौख्येन धर्मेण विद्यया च सममेव परलोंक सनाथितवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारम्परिक-विरोध-विशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रुभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान- वितानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु, ''इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुवेरस्त्वम् ''इति वर्णनामात्रसक्तेषु बुधजनेषु, कश्चन गजिनीस्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारते वर्षे। स च प्रजा विलुण्ठय मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य, परश्शतन् जनांश्च दासीकृत्य शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्।

अन्वयार्थ- इसके बाद उन मुनि ने कहना आरम्भ किया- ''भगवान्! धेर्य, प्रसन्नता, प्रताप, तेज, बल, विक्रम, शान्ति, लक्ष्मी, सुख, धर्म और विद्या के साथ ही श्रेष्ठ और विक्रमादित्य के परलोक को सनाथित करने पर (स्वर्ग चले जाने पर), धीरे-धीरे- राजाओं के परस्पर विरोध के कारण स्नेह बन्धन के शिथिल (कमजोर) हो जाने पर, वीरों को कामिनियों के कटाक्षों और हाव-भाव के प्रभाव में आने से सम्पूर्ण सम्पत्ति के नष्ट कर देने पर, अमात्यों (मंत्रियों) के एकमात्र स्वार्थ की चिन्ता में परायण हो जाने पर (लग जाने पर), राजाओं के प्रशंसामात्र के प्रेमी हो जाने पर और विद्वानों के 'तुम इन्द्र, तुम वरुण हो, तुम कुबेर हो'' इस प्रकार के वर्णनों में आसक्त हो जाने पर कोई गजनी स्थान का निवासी महामदशाली (महमूद गजनवी नामक) यवन, सेना के सहित भारतवर्ष में प्रवेश किया। वह प्रजा को लूटकर, मन्दिरों को गिराकर, प्रतिमाओं को तोड़कर सैकड़ों लोगों को दास बनाकर सैकड़ो ऊँटों पर रत्नों को लादकर अपने देश ले गया।

व्याख्या- यहां महामद के भारत आक्रमण और सोमनाथ मन्दिर को लूटने का वर्णन है। जब धैर्य, प्रसन्नता, प्रताप, तेज, विक्रम धर्म इत्यादि गुणों का आश्रय विक्रमादित्य स्वर्ग लोक गये तब कोई गजनी नामक स्थान के राजा महामद सेना का लेकर भारतवर्ष आया। वह भारतीयों को मारकर, मन्दिर और प्रतिमाओं को नष्ट करके, बहुत से लोगों को दास बनाकर, बहुत से रत्नों को बल से स्वीकार करके अपनी राजधानी गजनी की ओर गया।

व्याकरण कोष -

सनाथितवति-नाथेन सह वर्तते सनाथ इति सहाथबहुव्रीहिः। सनाथं करोति सनाथयति। ततः

ण्यन्तात् सनाथे: क्तवतुप्रत्यये तत: सप्तम्यां ङो सनाथितवति इति रूपम्।

पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु-पारस्परिको विरोध: कर्मधारयसमास:। तेन विशिथिलीकृत: इति तृतीयातत्पुरुष:। स्नेहस्य बन्धनमिति षष्ठीतत्पुरुष:। पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतं स्नेहबन्धनं येषां ते पारस्परिकविरोधविशिथीलकृतस्नेहबन्धना: इति बहुव्रीहि:, तेषु।

प्रशांसामात्रप्रियेषु-प्रशंसा एव प्रशंसामात्रम् इति नित्यसमास:। प्रशंसामात्रं प्रियं येषां ते प्रशंसामात्रप्रिया: इति बहुव्रीहि:, तेषु।

वर्णनामत्रसक्तेषु-वर्णना एव वर्णनामात्रम् इति नित्यसमास:। तत्र सक्तेषु वर्णनामात्रसक्तेषु इति सप्तमीतत्पुरुष:।

गजिनीस्थाननिवासी-गजिनीनामक स्थान गजिनीस्थानमिति शकपार्थिवादिवत्समास:। तत्र निवासी इति सप्तमीतत्पुरुष:।

कोष - ''शङ्क: स्यात्कम्बुरस्त्रियाम्'' इत्यमर:।

पाठगत प्रश्न 11.3

8. विक्रमादित्य किसके साथ स्वर्ग गये?
9. गजनी स्थान वासी में समास बताइए।
10. राजाओं का परस्पर वैर बढ़ा तब किसने आक्रमण किया?
11. भारतवर्ष पर आक्रमण के बाद महामद ने क्या किया?

11.5 मूलपाठ

एवं स ज्ञातास्वाद: पौन:पुन्येन द्वादशवारमागत्य भारतमलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरप्रदेशचूडायितं सोमनाथ-तीर्थमपि धूलीचकार। अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते, परं तत्स्मये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महाई-वैदुर्य-पप्मराग-माणिक्य-मुक्ताफलादिजटितानि कपाटानि स्तम्भन्, गृहावग्रहणी:, भित्ती: वलभी: विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय शतद्वयमणसुवर्ण-श्रृङ्कलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचिक्य-चकितीकृतावलोचक-लोचन-निचयां महाघण्टां प्रसह्य सङ्गृह्य महादेवमूर्तावपि गदामुदतूतुलत्।

अन्यवार्थ- इस प्रकार स्वाद को जानने वाला (यह यवनराज) बार-बार यहाँ आकर भारतवर्ष को बारह बार लूटा। अपने उन्हीं आक्रमणों में एकबार उसने गुजरात देश के आभूषण के समान सोमनाथ तीर्थ को भी धूलि में मिला दिया।

आज तो उस तीर्थ का नाम भी किसी के द्वारा स्मरण नहीं किया जाता, किन्तु उस समय तो उसका वैभव लोकोत्तर था। वहाँ पर बहुमूल्य वैदूर्य (मूंगा), पद्मराग, हीरे और मोतियों से जड़े किवाड़ों को तथा खम्बों, देहलियों, दीवारों बल्लियों और विटड्कों (कबूतरों के दरबों)

को मथ कर (सम्पूर्ण) रत्नराशि को लेकर, दो सौ मन सोने की जंजीर में लटकने वाले तथा दैदीप्यमान चाकचिक्य से दर्शकों के नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाले महाघंटा को भी बलात् (जबर्दस्ती) प्राप्त करके महादेव की मूर्ति पर भी (उस महमूद) ने गदा उठाई।

व्याख्या- एक बार भारत को लूटने के बाद महामद का लोभ बढ़ गया। अतः उसने बारह बार भारत पर आक्रमण किया। एक बार उसने गुर्जरप्रदेश के सोमनाथ मन्दिर को लूटा। आज उस तीर्थ का वैसा नाम नहीं है परन्तु प्राचीन तीर्थो में प्रसिद्ध था। उस मन्दिर के द्वार, और स्तम्भ बहुमूल्य वैदूर्य पद्‌मराग मणि- माणिक्य आदि रत्नों से निर्मित थे। न केवल यह हीं अपितु वहां जो ग्रह मन्दिर की भित्ति थी वे सब मणिमुक्तादि से युक्त थे। मन्दिर की देहली के अन्दर सैकड़ो पद्‌म परागादि बहुमूल्य रत्नों को स्थापित किया गया था। महामद ने उन सब का विनाश करके ले गया। उस मन्दिर में एक घण्टा था वह दो सौ मन सोने से निर्मित था उसकी उज्जवलता को देखकर सभी चकित थे। उस महाघण्टा को भी स्वीकार करके तथा उसने गदा से महादेव की मूर्ति को नष्ट किया।

व्याकरण विमर्श -

स्वप्नजालपरतन्त्रेण- स्वप्न एव जालं स्वप्नजालमिति कर्मधारयसमासः। तस्य परतन्त्रेण स्वप्न एव जालं स्वप्नजालमिति कर्मधारयसमासः। तस्य परतन्त्रेण स्वप्नजालपरतन्त्रेण इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

ज्ञातास्वाद- ज्ञात आस्वादः येन स ज्ञातास्वादः इति बहुव्रीहिसमासः।

गुर्जरदेशचूडायितम् - गुर्जरदेशस्य चूडायतिं गूर्जरदेशचूडायितम् इति षष्ठीतत्पुरुषः।

वैदूर्यपद्‌मरागमणिक्यमुक्ताफलानि इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः। तैः जटितानि इति तृतीयातत्पुरुषः।

रत्ननिचयम् - रत्नानां निचयः रत्ननिचयः, तमिति षष्ठीतत्पुरुषः।

कोष - ''कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः'' इत्यमरः।
''स्तम्भौ स्थूणाजडीभावौ'' इत्यमरः।
''गोपानसी तु वलभी'' इत्यमरः।
''वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्विलोचनः'' इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न 11.4

12. महामद ने कितनी बार भारत को लूटा?
13. महामद ने किसको धूलीसात किया?
14. महामद ने सोमनाथ के कैसे घण्टों को स्वीकार किया?
15. गुर्जरदेशचुडायितम् में समास बताइए।

11.6 मूलपाठ

अथ ''वीर, गृहीतमखिलं वित्तम्, पराजिता आर्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, सञ्चतममलं यशः, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मान् ताडय, मारय, छिनिध, भिन्धि, पातय, किन्तु त्यजेमाम् अकिञ्चित्करीं जडां महादेवप्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गृहाणोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, मैनां भगवन्मूर्तिं स्प्राक्षीः'' - इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु नाहं मूर्तिविक्रकीणामि, किन्तु भिनद्मि इति सञ्ज्र्य जनताजा हाहाकार-कलकलमाकर्णयन् घोरगदया मर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्ध ुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

अन्वयार्थः- इसके बाद- ''हे वीर! तुमने सब धन ले लिया, आर्य सेना को पराजित कर दिया, हम सब को बन्दी बना लिया, निर्मल यश अर्जित कर लिया, यदि इतने पर भी तुम्हारा क्रोध शान्त नहीं हुआ तो हम सबको पीटो, मारो, चीर डालो, काट डालो (पहाड़ से) नीचे गिरा दो, (समुद्र में) डुबो दो, टुकडे-टुकडे कर डालो, जला दो, किन्तु इस कुछ न करने वाली महादेव की जड़ प्रतिमा को छोड़ दो। यदि ऐसा भी स्वीकार न हो तो इस से दो करोड़ स्वर्ण मुद्रायें और ले लो, रक्षा करो, इस भगवान् शंकर की मूर्ति का स्पर्श मत करो।'' इस प्रकार (मन्दिर के पुजारियों के) बार-बार कहने पर, रोने पर (पैरों) पड़ने पर, (भूमि में) लोटने पर और प्रणाम करने पर ''मैं मूर्ति बेचता नहीं हूँ किन्तु तोड़ता हूँ'' इस प्रकार गरजकर जनता के हाहाकार के कोलाहल को सुनता हुआ (अपनी) भीषण गदा से (महमूद गजनवी ने) मूर्ति को तोड़ दिया। गदा के प्रहार के साथ ही अनेक अरब पद्म मुद्रा के मूल्य के रत्न मूर्ति के मध्य से उछले और चारों ओर फैल गये और यह दग्धमुख (मुंहजला) उन, रत्नों और मूर्ति के टुकड़ों को ऊँट की पीठ पर लाद कर सिन्धु नदी उतर कर अपनी विजय-पताका वाली 'गजनी' राजधानी में प्रवेश किया।

व्याख्या- महादेव के विग्रह में गदा प्रहार से पूर्व में ही वहां स्थित पूजकों ने महामद को प्रार्थना की, कि उसने सब कुछ स्वीकार किया। आर्यसेना पराजित हुई अतः महामद उनको पीटे, मारे, चीरे, पर्वतादि ऊँचाई से नीचे फेंके परन्तु महादेव की मूर्ति को स्पर्श नहीं करे। पूजको ने उसको दो करोड़ स्वर्ण देने की इच्छा की। परन्तु महामद ने कहा मै मूर्ति का विक्रय नहीं करता हूँ। परन्तु उसको तोडूंगा। इस प्रकार कहकर वह लोगों की क्रन्दक ध्वनि की अवज्ञा करके भीषण गदा से महादेव की मूर्ति पर गदा से प्रहार किया। जब महामद ने गदा से महादेव की मूर्ति पर प्रहार किया तब उससे बहुमूल्य रत्न चारों ओर फैल गये। वह पापी उन रत्नों और महादेव की मूर्ति के खण्डों को ऊँट की पीठ पर स्थापित करके अपनी राजधानी गजनी ले गया।

व्याकरण विमर्श

- **आर्यसेनाः**- आर्याणां सेनाः आर्यसेनाः इति षष्ठीतत्पुरुषः।
- **सुवर्णकोटिद्भयम्**- सुवर्णस्य कोटिद्भयं सुवर्णकोटिद्भयम् इति षष्टीतत्पुरुषः।

- **हाहाकारकलकलम्**- हाहाकारं च कलकलं च हाहाकारकलकलम् इति द्भन्द्भसमासः।
- **दग्धमुखः**- दग्धं मुखं यस्य स दग्धमुखः इति बहुव्रीहिसमासः।

कोष - ''शङ्गः स्यात्कम्बुरस्त्रियाम्'' इत्यमरः।
''विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम्'' इत्यमरः।
''द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु'' इत्यमरः।
''ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनाऽनीकिनी चमूः'' इत्यमरः।
''यशः कीर्तिः समज्ञा च'' इत्यमरः।

पाठगतप्रश्न 11.5

16. शिवमूर्ति के स्पर्श को रोकने पर महामद ने क्या कहा?
17. मूर्ति पर गदा प्रहार से क्या हुआ?
18. दग्धमुखः में समास बताइए।

11.7 मूलपाठ

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (1087) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टञ्च प्राणांस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीननामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वा, प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तदुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गियाऽनीकिन्या भारतवर्ष प्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तरद्वादशतमितेऽब्दे (1250) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

अन्वयार्थ- तदनन्तर, कालक्रम से विक्रम संवत् 1087 ई में कष्ट और शोक के साथ महमूद के प्राण त्याग देने पर 'गोरदेश' निवासी कोई शहाबुद्दीन नामक (यवन) पहले गजनी देश पर आक्रमण करके महमूद (गजनबी) के वंशजों की धर्मराज के लोक के पथ का पथिक बनाकर, सभी प्रजाजनों को पशुओं के समान मारकर, उन्हीं के रुधिर से गीली मिट्टी से गोरदेश में बहुत से घर बनाकर, चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश करके शीतल रक्त वाले (युद्ध की इच्छा न रखने वाले भारतीयों को भी) तलवार का निशाना बनाते हुए 1250 ई में दिल्ली को अश्वरोहियों (घुड़सवारों) से घेर लिया।

व्याख्या- 1087 ई. में महामद की मृत्यु के बाद गोरदेशवासी शहाबुद्दीन नामक गजनी राजधानी जाकर महामद वंशीय शासकों को मार दिया। उसके बाद प्रजाजनों को पशुवत् हरण करके अनेक सैन्य सहित भारतवर्ष में प्रवेश किया। वहां लोगो को अपनी तलवार से मारते हुए 1250 विक्रम संवत् में उसने दिल्ली पर अधिकार किया।

टिप्पणी

व्याकरण विमर्श-

शहाबुद्दीननामा- शहाबुद्दीनः नाम यस्य स शहाबुद्दीननामा इति बहुव्रीहिः।

पशुमारम्- पशूपपदे मृधातोः ''उपमाने कर्मणि च'' इत्यनेन सूत्रेण णमुलि पशुमारम् इति रूपम्।

तद्भुधिरार्द्रमृदा- तेषां रुधिराणि तद्भुधिराणि इति षष्ठीतत्पुरुषः। तैरार्द्रमिति तृतीयातत्पुरुषः। तादृशी मृद्, तया इति कर्मधारयः।

शीतलशोणितान्- शीतलानि शोणितानि येषां ते शीतलशोणिताः, तान् इति बहुव्रीहिसमासः।

अश्वयाम्बभूव- तेनातिक्रामतीत्यें अश्वशब्दात् णिचि ततश्च लिटि भूधातोरनुप्रयोग आमि प्रथमपुरुषैकवचने अश्वयाम्बभूव इति रूपम्।

कोष - ''हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्'' इत्यमरः।
''अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि'' इत्यमरः।
''संवत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः'' इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न 11.6

19. महामद कब मरा?
20. महामद की मृत्यु के बाद दिल्ली का राजा बना?
21. शहाबुद्दीन कब दिल्ली का राजा बना?
22. शीतलशोणितान् में समास बताइए।

11.8 मूलपाठ

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणमाकल-य्यानायासेनोभावपिविशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टक मकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीगचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि। स एव प्राधान्येन यावनराज्याङ्कुरारोपकोऽभूत्। तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुद्दीननामा प्रथमभारतसम्राट संजातः।

अन्यवार्थ- तत्पश्चात् दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द के पारस्परिक विरोधज्वर से ग्रस्त, राजनीति को भूले हुए तथा भारतवर्ष के आने वाले दुर्भाग्य को समझकर अनायास ही, दोनों को (पृथ्वीराज और जयचन्द को) मारकर, वाराणसी तक अखण्ड, निष्कण्टक तथा कीट और मल से रहित, महारत्न के समान (इस) महाराज्य को अपने अधिकार में कर लिया। उसने वाराणसी में भी हड्डियों के अनेक पहाड़ बना दिये। चंचल

तरंगों वाली गंगा को भी रक्त से रंग कर लाल (रक्त) वर्ण का कर दिया और हजारों देव-मन्दिरों को धूलि में मिला दिया।

उसने ही मुख्यत: भारतवर्ष में यवन-राज्य का बीजारोपण किया। और उसी का कोई एक 'कुतुबुद्दीन' नामक गुलाम भारतवर्ष का प्रथम सम्राट् हुआ।

व्याख्या- शत्रु छिद्र का आश्रय लेकर प्रवेश करते है। पृथ्वीराज और जयचन्द्र के भेदच्छेद का आश्रय लेकर शहाबुद्दीन यवनराज ने भारत पर आक्रमण किया। उसने सभी भारतीयों को पराजित करके अपने राज्य को निष्कष्टक किया। शाहबुद्दीन ने काशीनगरी में अस्थि पर्वत निर्मित किया। तरंगबहुल भागीरथी गंगा को भी रक्तरंजित किया। हजार से अधिक देवालयों को खण्डित किया। शहाबुद्दीन ने ही प्रधान रूप से भारत वर्ष में यवन शासन का अंकुररोपण किया। शहाबुद्दीन का ही कुतुबुद्दीन नामक अनुचर भारत वर्ष का प्रथम शासक हुआ।

व्याकरण विमर्श -

विस्मृतराजनीतिम्- विस्मृता राजनीति: येन स विस्मृतराजनीति:, तमिति बहुव्रीहिसमास:।

विशस्य- विपूर्वात् शसे: क्त्वोर्ल्यपि विशस्य इति रूपम्।

रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा– तरङ्गाणां भङ्गा: तरङ्गभङ्गा इति षष्ठीतत्पुरुष:। रिङ्गन्त: तरङ्गभङ्गा यस्या: सा रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा इति बहुव्रीहि:।

कोष - ''किट्टं मलेऽस्त्रियाम्'' इत्यमर:।
''कीकसं कुल्यमस्थि च'' इत्यमर:।
''भङ्गस्तरङ्ग ऊमिर्वा स्त्रियां वीचि:'' इत्यमर:।

पाठगत प्रश्न 11.7

23. यवनकाल में दिल्लीश्वर कौन थे?

24. यवनकाल में कान्यकुब्जेश्वर कौन थे?

25. शहाबुद्दीन ने गंगा को कैसा बनाया?

26. यवनशासन का भारत में अंकुरण किसने किया?

27. भारत का प्रथम यवनराज कौन था?

28. रिंगत्तरंगभंगा में समास बताइए।

11.9 मूलपाठ

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राजमकार्षु: दानवा एव च दीनानदीदलन्। अभूत् केवलम् अकबरशाह-नामा यद्यपि गूढशत्रुर्भारतवर्षस्य तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्रो

मूर्तिमदिव कलियुगं गृहीतविग्रह इव चाधर्मः आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिलीवल्लभतां कलङ्कयति। अस्यैव पताका केकयेषु, मत्स्येषु, मगधेषु, अङ्गेषु बङ्गेषु कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।

अन्यवार्थ- उसी से लेकर आज तक राक्षसों ने ही राज्य किया। दानवों ने ही दीनों की हत्या की। केवल अकबर नामक बादशाह यद्यपि भारत वर्ष का गूढ शत्रु था, तथापि वह शांतिप्रिय और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसी का प्रपौत्र मूर्तिमान कलियुग के समान तथा साक्षात् शरीरधारी अधर्म के समान आलमगीर की उपाधि को धारण करने वाला 'औरंगजेब' इस समय दिल्ली के शासन को कलंकित कर रहा है। इसी की पताका पंजाब, राजपूत, मगध, अङ्ग, बङ्ग और कलिङ्ग में फहरा रही है। केवल दक्षिण में इस समय भी इसका पूरा अधिकार नहीं हुआ है।

व्याख्या- कुतुबुद्दीन से आरम्भ होकर इस समय तक यवनराज्य है यह ब्रह्मचारीगुरु ने बताया। दुष्ट यवनशासकों में एक अकबर शाह नामक राजा शान्तिप्रिय था। उसका प्रपोत्र अत्यन्त दुष्ट राजा शासन कर रहा था। उसका ध्वज केकेय, मत्यस्य, मगध, अंग, वंग, कलिग आदि देशों में फैल रहा था। केवल दक्षिण प्रदेश में अवरंगजीब (औरंगजेब) का पूर्ण अधिकार नहीं था।

व्याकरण विमर्श -

- **गूढशत्रु** - गूढश्चासौ शत्रुश्च गुढशत्रुः इति कर्मधारयः।
- **विद्वत्प्रिय** - विद्वांसः प्रिया यस्य स विद्वत्प्रियः इति बहुव्रीहिः।
- **गृहीतविग्रह** - गृहीतो विग्रहो येन स गृहीतविग्रहः इति बहुव्रीहिः।
- **अदीदलन्** - दल विदारणे इति धातोः लुङि झिप्रत्यये अदीदलन् इति रूपम्।
- **दोधूयन्ते** - धूञ् कम्पने इति धातोः यङि प्रथमपुरुषबहुवचने दोधूयन्ते इति रूपम्।।

कोष - ''असुरा दैत्यदैयेदनुजेन्द्रारिपर्वताः'' इत्यमरः।

पाठगत प्रश्न 11.8

29. यवन राजाओं में विद्वत प्रिय कौन था?
30. किसने दिल्ली की वल्लभता को कलंकित किया?
31. कहां-कहां औरंगजेब की पताका थी?

11.10 मूलपाठ

दक्षिणदेशो हि पर्वतबहुलोऽस्ति अरण्यानीसङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्रकेसरिणो

हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिणदेशशासकत्वेन 'शास्तिखान'-नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन-शाणित-पिपासाऽऽकुलकृपाण:, वीरता-सीमान्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सिन्दूर-दान-देदीप्यमान-दोर्दण्ड:, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणां, भूषणं भटानां, निधिर्नीतीनाम् कुलभवनं कौशलानां पारावार: परमोत्साहनां कश्चन प्रातःस्मरणीय: स्वधर्माऽऽकुलकृपाण:, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यमान-दोर्दण्ड:, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणां, भूषणं भटानां, निधि र्नीतीनाम् कुलभवनं कौशलानां परावार: परमोत्साहानां कश्चन प्रात:स्मरणीय: स्वधर्माऽऽग्रहग्रहग्रहिल:, शिव इव धृतावतार: शिववीरश्चास्मिन्पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराध ीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धवैरम्। 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनां, सतां त्रैवर्णिकस्य, आर्यकुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च आशा-सन्तान-वितानस्यायमेवऽऽश्रय:। इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य। किमधिकम् विनिवेदयामो योगबलावगतसकलगोप्यतमवृत्तान्तेषु योगिराजेषु इति कथयित्वा विरराम।

अन्वयार्थ- दक्षिण प्रदेश में पर्वतों की अधिकता है, घने और बड़े जंगलों से व्याप्त है, इस कारण बहुत अधिक प्रयास करने के बाद भी महाराष्ट्र केशरी को (वह) जीत नहीं सका। 'इसी समय उसी का आत्मीय 'शाइस्ता खाँ' दक्षिण प्रदेश के शासक के रूप में भेजा जा रहा है' ऐसा सुना जाता है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के खून की प्यासी तलवार वाले, वीरता रूपी नायिका के माँग को सुन्दर और घना सिन्दूर दान करने से दैदीप्यमान भुजाओं वाले, मराठों के मुकुटमणि, वीरों के भूषण, नीतियों के निधि, निपुणताओं के कुलगृह' परम उत्साह के सागर, प्रात: स्मरणीय, अपने धर्म (सनातन धर्म) के पालन में दृढ़, अवतार धारण किये हुए शिव के समान महाराज शिवाजी पूना नगर के समीप ही 'सिंहदुर्ग' में सेना सहित रह रहे हैं। इस समय विजयपुर के राजा से इनकी शत्रुता बढ़ी हुई है। 'या कार्य सिद्ध होगा अथवा शरीर नष्ट होगा' इस प्रकार उनकी सारगर्भिता महती प्रतिज्ञा की है। पतिव्रता स्त्रियों, सज्जनों, द्विजों, आर्यों, धर्म और भारतवर्ष के एकमात्र आधार ये ही हैं। यहाँ भारत-वर्ष की वर्तमान दशा है। योगबल से रहस्यात्मक वृत्तान्तों को भी जानने वाले योगिराज 'से मैं क्या अधिक निवेदन करूँ'' इतना कहकर मुनि (ब्रह्मचारी के गुरु) चुप हो गये।

व्याख्या- दक्षिण प्रदेश पर्वतबाहुल्य और महारण्य व्याप्त था अतएव औरंगजेब उस पर अधिकार करने में असमर्थ था। औरंगजेब का प्रिय दक्षिण देश के शासक के रुप में 'शास्तिखान (शाईस्तखाँ) नामक था। वहाँ महाराष्ट्र देश का रत्नभूत, म्लेच्छो के रक्त पान की इच्छा सम्पन्न, महाराष्ट्र देशवासी, शेखर रत्नभूत, सैनिकों का अलंकार, राजनीति की निधि, इस प्रकार होता हुआ, प्रात: स्मरणीय सनातन धर्म का दृढपालक, शिव के समान शिववीर (शिवाजी) था। वह सिंहदुर्ग में निवास करता था। उसने विजयपुराधीश की शत्रुता बढाई। ''कार्य वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्'' यह शिववीर का सारगर्भ भीषण संकल्प था। वह ही आर्यो का आश्रय था। इस प्रकार योगिराज को कहकर ब्रह्मचारी रुक गये।

व्याकरण विमर्श -

पर्वतबहुल:- पर्वतैर्बहुल: पर्वतबहुल: इति तृतीयातत्पुरुष:।

अरण्यानीसङ्कुल:- महद् अरण्यम् अरण्यानीति इन्द्रवरुणेति सूत्रेण आनुकि डीपि अरण्यानीशब्द:। अरण्यान्या सङ्कुल: अरण्यानीसङ्कुल: इति तृतीयातत्पुरुषह।

महाराष्ट्रदेशरत्नम्- महाराष्ट्रदेशस्य रत्नम् इति कर्मधारयसमासः।

यवनशोणितपिपासाकुलकृपाणः- यवनानां शोणितं यवनशोणितम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। तस्य पिपासा इति षष्ठीतत्पुरुषः। तया आकुलः इति तृतीयातत्पुरुषः। तादृक् कृपाणो यस्य स इति बहुव्रीहिः।

पाठगत प्रश्न 11.9

32. दक्षिण देश कैसा था?

33. दक्षिण का शासक किसे नियुक्त किया?

34. शिववीर किसका मुकुटमणि था?

35. शिववीर कहां निवास करते थे?

36. शिववीर कैसा था?

पाठसार

जब योगिराज ने भारतवर्ष की इस समय की स्थिति को जानने के लिए ब्रह्मचारी से पूछा। तब ब्रह्मचारी ने भारतवर्ष की यवनकृत अवस्था के वर्णन करने में अत्यन्त दुःख का अनुभव किया। अवस्थावर्णन काल में ब्रह्मचारी के हृदय में भारतीयों की दशा का स्मरण करने से करुणा हुई। उसके मत में तो योगिराज को भी यह वर्णन धैर्य च्युत का कारण होगा। उसका भारत दशा वर्णन में कंठ आँसुओं से अवरुद्ध हो गया। फिर भी उन्होंने किसी प्रकार आँखों से आँसू गिराये बिना, आंखों को साफ करके दीर्घश्वास लिया। उस गुरु ब्रह्मचारी ने सकरुणसदृश्य आंखों से उनकी ओर देखकर कहना आरम्भ किया

ब्रह्मचारीगुरु ने यहां सनातन धर्मवलम्बी आर्यों के विषय में खेद प्रस्तुत किया। उसने कहा कि उसकी जिहा वज्र से बनी है। अन्यथा तो भारतीयों में दुष्ट यवनों के अत्याचार के वर्णन से वह जिह्वा कट जाती। इसी प्रकार आर्यों का दृश्य भी वज्र के समान है। जो यवनों के अत्याचार को स्मरण करके भी टूटा नहीं और न ही वह हृदय अग्नि से जला। इस प्रकार आश्रमवासी भी निन्दित हैं क्योंकि इस यवन अत्याचार के समय में भी आर्यवंशी हम साभिमान जीवन धारण, श्वास धारण और संचरण कर रहे है।

इस उपक्रम को सुनकर देखकर ब्रह्मचारियों के आचार्य का मुख लाल, नेत्र अश्रु युक्त, शरीर रोमांचित, कम्पायमान औष्ठ, और अवरुध कंठ को देखकर महामुनि ने यवनात्याचार का वृतान्त अत्यन्त दुःखदायक है यह जाना। उसके बाद मुनिवर ने ब्रह्मचारियों के गुरु के प्रति कहा, वस्तुत काल की गति अनुपमेय है। काल के चक्र से सम्पूर्ण संसार नियंत्रित होता है। सब कुछ वस्तु जात काल के अधीन है काल की दो प्रकार की मूर्ति है सृजनात्मिका और ध्वंसात्मिका। जैसे ही वह काल इस पृथ्वी में रम्यता को धारण करता है वैसे ही वह निर्दय सब को धूलिसात करता है। वह क्षणभर से जंगलों को जनपद बना देता है और अगले ही

पल में नगरों को जंगल बना देता है। पहले काल के प्रसाद से भारत वर्ष में वेद स्मृति पुराण आदि की अनुशीलन परम्परा थी। अब काल के वशीभूत वह सब नष्ट हो गया। तट प्रताप के समान काल की गति क्षणभंगुर होती है। अतएव कालवशीभूत होने से सनातन धर्म को पीडा होती है। यह सोचकर धर्म धारण करना चाहिए क्योंकि चक्र के समान दु:ख और सुख होते हैं।

महामद के भारत आक्रमण और सोमनाथ मन्दिर को लुटने का वर्णन है। जब धैर्य, प्रसन्नता, प्रताप, तेज, विक्रम धर्म इत्यादि गुणों का आश्रय विक्रमादित्य स्वर्ग लोक गये तब कोई गजनी नामक स्थान के राजा महामद सेना का लेकर भारतवर्ष आया। वह भारतीयों को मारकर, मन्दिर और प्रतिमाओं को नष्ट करके, बहुत से लोगों को दास बनाकर, बहुत से रत्नों को बल से स्वीकार करके अपनी राजधानी गजनी की ओर गया।

एकबार भारत को लुटने के बाद महामद का लोभ बढ गया। अत: उसने बारह बार भारत पर आक्रमण किया। एक बार उसने गुर्जर प्रदेश के सोमनाथ मन्दिर को लूटा। आज उस तीर्थ का वैसा नाम नहीं है परन्तु प्राचीन तीर्थो में प्रसिद्ध था। उस मन्दिर के द्वार, और स्तम्भ बहुमूल्य वैदूर्य पद्मराग मणि- माणिक्य आदि रत्नों से निर्मित थे। न केवल यह ही अपितु वहां जो ग्रह मन्दिर की भित्ति थी वे सब मणिमुक्तादि से युक्त थे। मन्दिर की दहली के अन्दर सैकड़ो पद्म परागादि बहुमूल्य रत्नों को स्थापित किया गया था। महामद ने उस सब का विनाश करके ले गया। उस मन्दिर में एक घण्टा था वह दो सौ मन सोने से निर्मित था उसकी उज्ज्वलता को देखकर सभी चकित थे। उस महाघण्टा को भी स्वीकार करके तथा उसने गदा से महादेव की मूर्ति को नष्ट किया।

महादेव के विग्रह में गदा प्रहार से पूर्व में ही वहां स्थित पूजकों ने महामद को प्रार्थना की, कि उसने सब कुछ स्वीकार किया। आर्य सेना पराजित हुई अत: महामद उनको पीटे, मारे, चीरे, पर्वतादि ऊँचाई से नीचे फेंके परन्तु महादेव की मूर्ति को स्पर्श नहीं करे। पूजकों ने उसको दो करोड़ स्वर्ण देने की इच्छा की। परन्तु महामद ने कहा मैं मूर्ति का विक्रय नहीं करता हूँ। परन्तु उसको तोडूंगा। इस प्रकार कहकर वह लोगों की क्रन्दक ध्वनि की अवज्ञा करके भीषण गदा से महादेव की मूर्ति पर गदा से प्रहार किया। जब महामद ने गदा से महादेव की मूर्ति पर प्रहार किया तब उससे बहुमूल्य रत्न चारों ओर फैल गये। वह पापी उन रत्नों और महादेव की मूर्ति के खण्डों को ऊँट की पीठ पर स्थापित करके अपनी राजधानी गजनी ले गया।

1087 ई- में महामद की मृत्यु के बाद गोरदेशवासी शहाबुद्दीन नामक गजनी राजधानी जाकर महामद वंशीय शासकों को मार दिया। उसके बाद प्रजाजनों को पशुवत् हरण करके अनेक सैन्य सहित भारतवर्ष में प्रवेश किया। लोगों को अपनी तलवार से मारता हुआ 1250 ई- में विक्रम संवत् में दिल्ली पर अधिकार किया।

शत्रु छिद्र का आश्रय लेकर प्रवेश करते है। पृथ्वीराज और जयचन्द्र के भेदच्छेद का आश्रय लेकर शहबुद्दीन यवनराज ने भारत पर आक्रमण किया। उसने सभी भारतीयों को पराजित करके अपने राज्य को निष्कष्टक किया। शहाबुद्दीन ने काशी नगरी में अस्थि पर्वत निर्मित किया। तरंगबहुल भागीरथी गंगा को भी रक्तरञ्जित किया। हजार से अधिक देवालयों को खण्डित किया। शहाबुद्दीन ने ही प्रधान रुप से भारत वर्ष में यवन शासन का अंकुररोपण

किया। शहाबुद्दीन का ही कुतुबुद्दीन नामक अनुचर भारत वर्ष का प्रथम शासक हुआ।

कुतुबुद्दीन से आरम्भ होकर इस समय तक यवनराज्य है यह ब्रह्मचारीगुरु ने बताया। दुष्ट यवनशासकों में एक अकबर शाह नामक राजा शान्तिप्रिय था। उसका प्रपोत्र अत्यन्त दुष्ट राजा शासन कर रहा था। उसका ध्वज केकेय, मत्यस्य, मगध, अंग, वंग, कलिग आदि देशों में फैल रहा था। केवल दक्षिण प्रदेश में अवरंगजीब (औरंगजेब) का पूर्ण अधिकार नहीं था।

दक्षिण प्रदेश पर्वत बाहुल्य और महारण्य व्याप्त था अतएव औरंगजेब उस पर अधिकार करने में असमर्थ था। औरंगजेब का प्रिय दक्षिण देश के शासक के रूप में शास्तिखान (शाईस्तखाँ) नामक था। वहाँ महाराष्ट्र देश का रत्नभूत, म्लेच्छों के रक्त पान की इच्छा सम्पन्न, महाराष्ट्रदेशवासी, शेखररत्नभूत, सैनिकों का अलंकार, राजनीति की निधि, इस प्रकार होता हुआ, प्रातः स्मरणीय सनातन धर्म का दृढ़पालक, शिव के समान शिववीर (शिवाजी) था। वह सिंहदुर्ग में निवास करता था। उसने विजयपुराधीश की शत्रुता बढ़ाई। ''कार्यं वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्'' यह शिववीर का सारगर्भित भीषण संकल्प था। वह ही आर्यों का आश्रय था। इस प्रकार योगिराज को कहकर ब्रह्मचारीगुरु रुक गये।

आपने क्या सीखा

- यवनों के दुराचार को जाना।
- कालकलाप को जाना।
- महामद के आक्रमण राज्यध्वंस को जाना।
- यवनों के राज्यारम्भ को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. सोमनाथ मन्दिर लुटने के वृतान्त का वर्णन कीजिए।
2. महामद के भारत आक्रमण का वर्णन कीजिए।
3. दक्षिण देश का वर्णन कीजिए।
4. अथ ''वीर, गृहीतमखिलं वित्तम्, पराजिता आर्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, सञ्चतममलं यशः, इतोखपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मान् ताडय, मारय, छिनिध, भिन्धि, पातय, किन्तु त्यजेमाम् अकिञ्चित्करीं जडां महादेवप्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गृहाणोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, मैनां भगवन्मूर्ति स्प्राक्षीः'' – इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु नाहं मूर्तिविक्रकीणामि, किन्तु भिनद्मि इति सङ्गर्ज्य जनताजा हाहाकार-कलकलमाकर्णयन् घोरगदया मर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रा मूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्रावियात्। की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. आर्यो की दम्भोलिघटिता जिह्वा थी।

2. आर्यो का वज्रसारमय हृदय था।

3. दम्भोलिना घटिता दम्भोलिघटिता इति तृतीयतत्पुरुष समास।

11.2

4. सम्पूर्ण अनर्थमय, सकल वंचनामय, सम्पूर्ण पापमय, उपद्रवमय, यवन दुराचार था।

5. विलक्षण भगवान सकल कला कलाप कलन-सकलकालन कराल काल था।

6. काल सिंह, व्याघ्र, भालू, गैंडा, खरगोश आदि हजारों पशुओं से व्याप्त अरण्य को जनपद बना देता है।

7. काल मन्दिर प्रासाद आदि से बने नगर को अरण्य बनाता है।

11.3

8. विक्रमादित्य धर्म प्रसाद प्रताप तेज वीर्य विक्रम और शान्ति के साथ स्वर्ग गये।

9. गजिनीनामकं स्थानं इति अजिनीस्थानम् शाकपार्थिवादिसमास तत्र निवासी सप्तमीतत्पुरुष।

10. राजाओं में परस्पर शत्रुता बढी तब महामद ने आक्रमण किया।

11. भारतीयों को मारकर, मन्दिरों और प्रतिमाओं को नष्ट करके लोगों को दास बनाकर बहुत से धन रत्नों को लेकर गजनी की ओर गया।

11.4

12. 12 बार भारत को लुटा।

13. सोमतीर्थ को धूलीसात् किया।

14. द्विशतसुवर्णपरिमित घण्टा को स्वीकार किया।

15. गुर्जरदेशस्य चूडायितं गुर्जरदेशचूडायितम् - षष्ठीतत्पुरुष।

11.5

16. मैं मूर्ति का विक्रेता नहीं हूं किन्तु तोड़ता हूँ।

17. अनेक अर्बुद पद्म मुद्रामूल्य वाले रत्न मूर्ति से निकल कर फैल गये।

18. दग्धं मुखं यस्य स - दुग्धमुखः - बहुव्रीहिसमास।

टिप्पणी

11.6

19. 1087 विक्रम शताब्दी में मरा।
20. शहाबुद्दीन राजा बना।
21. 1250 ई. वि.सं. में।
22. शीतलानि शोणितानि येषां ते शीतलशोणिता तानि इति बहुव्रीहिसमास।

11.7

23. पृथ्वीराज।
24. जयचन्द।
25. शोणितशोणा (रक्तरंजित)।
26. शहाबुद्दीन।
27. कुतुबुद्दीन।
28. रिंगन्तरंगभंगा - तरंगाणां भंगा - तरंगभंगा षष्ठीतत्पुरुष।

11.8

29. अकबरशाह।
30. औरंगजब ने।
31. केकय, मत्स्य, मगध, अंग, बंग और कलिंग में।

11.9

32. पर्वतबहुल व सघन अरण्य वाला था।
33. शास्तिखान (शाईस्त खां)।
34. महाराष्ट्र का।
35. सिंह दुर्ग में
36. सतीना सतां, तीनो वर्णो का, आर्यकुल का, धर्म का, भारतवर्ष का, भाश-सन्तान वितान का आश्रय था।